।। प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरेभ्यो नमः ।।

श्रीमद्‌आचार्यदेव श्रीरत्नशेखरसूरीश्वर-विरचित

दिन-शुद्धि-दीपिका

[श्री यतीन्द्र हिन्दी टीका]

——हिन्दी-टीका-लेखक——

पूज्यपाद आचार्यभगवन्त व्याख्यानवाचस्पति

श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के शिष्यरत्न

ज्योतिष - विषारद्

मुनिश्री जयप्रभविजयजी 'श्रमण'

प्रकाशक—
श्रीमद् राजेन्द्रसूरि जैन दादावाड़ी
पो० जावरा (मध्यप्रदेश) जिला-रतलाम

श्रीवीर निर्वाण संवत् २०३०
विक्रम संवत् २५००
श्रीराजेन्द्रसूरि संवत् ६८
मूल्य ८) रुपये

मुद्रक
श्रीवर्द्धमान प्रिंटिङ्ग प्रेस
निम्बाहेड़ा (राजस्थान)

विश्ववन्द्य परमयोगीन्द्राचार्य प्रातःस्मरणीय परमपूज्य गुरुदेव



प्रभु श्रीमद्विजय
राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज

शुभ-आशीर्वाद !

शास्त्रों में सृजन तथा लेखन उसे अमरता तथा शाश्वतता की ओर ले जाते हैं। यही कारण है कि आज भी जैन दर्शन भारतीय जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अति प्राचीन समय से भारतीय वाङ्मय में जैनाचार्यों की देन इस प्रकार सर्वतोमुखी नहीं रहती तो शायद ही भारतीय दर्शन का यह स्वरूप होता। भारत में भी एक ऐसा संक्रमण-काल आया जो हमारे साहित्य तथा शास्त्रों के सृजन की ओर हमें उदासीन कर विदेशी दासता तथा संकीर्णता में आबद्ध कर गया कि हम अपनी सम्पत्ति की विशालता को ही खो बैठे। आज हमें कोई विदेशी यह कहता है कि यह अतुल वांग्मय सम्पत्ति तुम्हारी है तो ही हमें विश्वास होता है, हमारी दृष्टि विदेशी आँखों से देखने लगी, हम ,स्व को भूलकर विदेशी संस्कृति, साहित्य तथा दर्शन के दास बन गये। इस दासता से मुक्ति दिलाने में जैन साधु तथा आचार्यों का महत्व-पूर्ण योग रहा है।

आज हम जब सर्वतः स्वतन्त्र हैं जबकि मानसिक रूप से परतन्त्र हैं और उस मानसिक परतन्त्रता से मुक्ति दिलाने के लिये भारतीय साहित्य तथा जैन दर्शनागार में से रत्नों की खोज करने वाले विद्वानों की टीम चाहिये। जो नवीन सृजन तथा अतीत की अमूल्य सम्पदा से पुनः उसे उसी गौरव पद पर प्रतिष्ठित करें जो उसे अतीत में प्राप्त था।

आज का युग लेखन तथा प्रथा प्रचार-प्रसार का है अतः किसी विषय को जीवित रखने के लिये उसमें जितना अधिक लिखा

अनुवादादि से विषय को सरल से सरल बनाकर सर्व साधारण के बोध योग्य बनाएँ। आपने दिन–शुद्धि–दीपिका की "श्री यतीन्द्र हिन्दी टीका" कर इस परम्परा में महत्वपूर्ण प्रयाण किया है।

मैंने श्री यतीन्द्र हिन्दी टीका को देखा! अनुवाद में प्राकृत तथा संस्कृत श्लोकों की स्वाभाविकता तथा विषय की प्रामाणिकता दोनों का सामंजस्य मणिकांचन योग की तरह सफल हुए हैं।

इन सबके कारण यह ग्रंथ स्वयं में एक विशेष ग्रन्थ बन गया है।

ज्योतिष शास्त्र जैसे गहन तथा गणित प्रधान विषय में आपका यह सृजनात्मक कार्य ज्योतिष पंडितों के लिये पथ प्रदर्शक है तथा उन्हें भी ज्योतिष के नवीन सृजन तथा समीक्षात्मक लेखन में उत्साहित किये बिना नहीं रहेगा।

अनुवाद में स्वयं की मौलिकता से भाव प्रकट करने की क्षमता तथा शैली की सरलता से ग्रन्थ रोचक होते हुए भी विषय की गम्भीरता सुरक्षित है। यह अनुवाद की सबसे बड़ी सफलता मानी जानी चाहिये। मेरा विचार है कि ज्योतिष के जिज्ञासुओं तथा प्रारम्भिक शिक्षणार्थी इस टीका को अत्यन्त श्रद्धा तथा प्रेम से ग्रहण करेंगे। यह श्री यतीन्द्र हिन्दी टीका सरलता की दृष्टि से अहिन्दी भाषा–भाषियों को भी समझ में आसकता है। अतः इस ग्रंथ का भविष्य उज्ज्वल है।

अन्त में मैं ज्योतिष के विद्वान् श्रीजयप्रभविजयजी महाराज 'श्रमण' से इसी तरह के अन्य ग्रन्थों को रचने की अपेक्षा रखता

हूं तथा विश्वास करता हूं कि दिन - शुद्धि की तरह लग्न - शुद्धि का भी कोई ग्रंथ सरल भाषा में अनुदित करेंगे ।

इति शुभम् !

दशहरा
२०३०
गुड़ाबालोतरा

— पंडित हीरालाल शास्त्री एम. ए.
अध्यापक— राजकीय उच्चत्तर विद्यालय, गुड़ाबालोतरा

सूक्ष्म-बिन्दु-विचार........!

भारतीय ज्योतिष के रचयिताओं के दो लक्ष्य रहे हैं, वे हैं व्यवहारिक एवं पारमार्थिक । प्रथम दृष्टि से इस शास्त्र का रहस्य गणना करना तथा दिक् देश और काल के सम्बन्ध में मानव समाज को परिज्ञान कराना कहा जासकता है । (सिद्धांत और फलित से जाना जाता है) फलित ज्योतिष के मुख्य पाँच भेद हैं— जातक, ताजिक, मुहूर्त, प्रश्न तथा संहिता । अर्थात् ज्योतिष में मुहूर्त का भी विशिष्ठ स्थान है ।

सांसारिक समस्त व्यापार दिक्, देश और काल इन तीनों के सम्बन्ध से परिचालित है । इन तीनों के ज्ञान के बिना व्यवहारिक जीवन की कोई भी क्रिया सम्यक् प्रकार से सम्पादित नहीं की जा सकती । अतः सुचारु रूप से दैनन्दिन कार्यों का संचालन करना ज्योतिष का व्यवहारिक उद्देश्य है ।

यह तो निश्चित है कि प्रत्येक प्राणी के मस्तिष्क पर उस के प्रतिक्षण के विचार और क्रियाएँ अपना संस्कार डालती हैं । संस्कारों की खतौनी बराबर होती रहती है । जब कोई प्रबल संस्कार आता है तब वह पूर्व के निर्बल संस्कार को समाप्त कर देता है । अन्त में कुछ ऐसे सूक्ष्म और स्थिर संस्कार इस शरीर को छोड़ने पर भी परलोक जाते हैं जिनके अनुसार भावी जीवन की पुनः रचना होती है और भौतिक जगत का परिगमन भी वैसा ही होने लगता है । ठीक इसी तरह ज्योतिष के व्यवहारिक अध्यायों में मुहूर्त अर्थात् समय विधान को मर्म प्रधान व्यवस्था

है उसका रहस्य यह कि गगनगामी ग्रह-नक्षत्रों की अमृत, विष व उभयगुण वाली रश्मियों का प्रभाव सदा एकसा नहीं रहता। गति विलक्षणता के कारण किसी समय में ऐसे नक्षत्र या ग्रहों का वातावरण रहता है जो अपने गुण और तत्वों की विशेषता के कारण किसी विशेष कार्य सिद्धि के लिये ही उपयुक्त हो सकता है। अतः विभिन्न कार्यों के लिये मुहूर्त शोधन विज्ञान सम्मत है न कि अन्धश्रद्धा या मात्र विश्वास पर।

समय शब्द भी समय का सबसे छोटा परिणाम था। असंख्य समयों की एक आवलिका तथा असंख्य अवलिकाओं का एक उच्छ्वास, प्राण अथवा निश्वास होता था। प्रारम्भ में यह काल विशेष का वाचक होकर बाद में सामान्य काल के अर्थ में यह प्रयुक्त होने लगा। इसे ज्योतिर्गणित द्वारा तपा लिया जाए अर्थात् पूर्ण पंचाङ्ग शुद्धि लेकर जो समय निकाला जाए उसे मुहूर्त कहते है।

षोडस संस्कार एवं प्रतिष्ठा, ग्रहारम्भ, ग्रहप्रवेश, यात्रा एवं प्रत्येक मांगलिक कार्यों के लिये मुहूर्त का आश्रय लेना अत्यावश्यक है। न केवल ज्योतिष के गणित और फलित बल्कि उनके विभिन्न विषयों पर जैन सिद्धांत के प्रवर्तकों ने नए-नए रूप बड़ी ही गहराई से दिये हैं। इसी मुहूर्त प्रकरण के विषय को लेकर जैनाचार्य श्रीरत्नशेखरसूरीश्वरजी महाराज ने संस्कृत, पाली और मागधी भाषाओं के सम्मिश्रण से 'दिन-शुद्धि-दीपिका' नामक ग्रंथ की रचना की थी। उसी की सौधर्मबृहत्तपोगच्छाधिपति भट्टारक परम पूज्य जैनाचार्य श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के शिष्य ज्योतिष विशारद मुनि श्रीजयप्रभविजयजी महाराज "श्रमण" ने श्री यतीन्द्र हिन्दी टीका के रूप में रचना करके मुहूर्त ज्योतिष को एक अनूठा ग्रंथ दिया है।

प्रस्तुत 'दिन-शुद्धि-दीपिका' के अध्ययन से भारतीय ज्योतिष की मुहूर्त प्रणाली में 'सूक्ष्म बिन्दु' का परिचय मिलता है। मुझे पूर्ण आशा है कि यह ग्रंथ न केवल संदर्भ ग्रंथ के रूप में अपितु सूक्ष्म मुहूर्त शोधन क्रिया के अध्ययन रूप में भी परम उपयोगी सिद्ध होगा।

—**बाबूलाल जोशी**
राज ज्योतिष
रतलाम

कार्यालय नक्षत्र लोक
ज्योतिर्विज्ञान विभाग
रतलाम (म.प्र.)

दिनांक २६ अगस्त १९७३

अपनी ओर से........!

जैन दर्शन जितना सम्पन्न है उतना ही काव्य इतिहास तथा ज्योतिष में भी कुबेर निधि है। जैनाचार्यों की लेखनी आगमों व विविध शास्त्रों के गहन अध्ययन तथा लेखन में निरन्तर सृजन करती रही है। जैन शास्त्रों की मन्दाकिनी की शाश्वत प्रसृविनी अजस्र पीयूषधारा भारतीय प्रांगण में अणु-अणु को आप्लावित करती रही है, और यही कारण है कि आज जैन साहित्य-दर्शन विविध शास्त्र तथा इतिहास में अपना मूर्धन्य स्थान रखता है। जैन शास्त्रों के अगाध रत्नाकर में इतने मौक्तिक भरे पड़े हैं कि उसमें गोते लगाकर गवेषणा करने वालों की कमी है, मुक्ताओं की कमी नहीं है। यदि जैन दर्शन के स्वान्त सुखाय का ही अध्ययन करें तो लोक हिताय हो जाता है। यदि हम नवीन ग्रंथों का सृजन न भी करें और रत्नाकर में गोते लगाकर मोती निकालते का ही कार्य करें तो वे ग्रन्थ जो निमज्जित हैं, अदृश्य हैं तथा परोक्ष है वे आज के वैज्ञानिक तथा शिक्षा के युग में मानव मात्र के कल्याण के लिये संजीवनी रूप में सिद्ध हो सकते हैं। विज्ञान तथा आध्यात्म में समन्वय कराकर नैतिक उत्थान में मेरु स्वरूप बन सकते हैं।

इसी दृष्टिकोण को सम्मुख रखकर मैंने किसी नवीन ग्रंथ की रचना करने की अपेक्षा प्रच्छन्न अमूल्य मौक्तिक जो अतीत ज्ञान सागर में पड़े हैं उन्हें अन्वेषित कर विद्वानों के सम्मुख रखने में ही सौभाग्य माना। रत्नाकर से निकाले हुए ये ग्रन्थ-मुक्ता कितने उपादेय हैं यह निर्णय तो स्वयं विद्वान् पाठक ही करेंगे।

जैन शास्त्र जितने अन्य क्षेत्रों में सम्पन्न हैं, उतने ही आगम, खगोल, भूगोल एवं गणित में भी सम्पन्न हैं। ज्योतिष में कालिक, उत्कालिकागम में भूगोल तथा खगोल का विस्तृत विवेचन है। इनमें जंबू द्वीप प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति तथा द्वीप सागर प्रज्ञप्ति ये सत्य वस्तु प्ररूपक प्रज्ञप्तियां हैं। सूर्य – चन्द्र प्रज्ञप्ति ग्रंथ अति प्राचीन ज्योतिष विषय के ग्रंथ हैं, जिनमें तिथि वार, नक्षत्र, करण, सूर्य चार, चन्द्र चार योग, गुरु, शनि, ग्रहण और ८८ ग्रहों का अधिकार है।

इस ग्रंथ में प्रारम्भिक ज्योतिष ज्ञान कराने के लिये इतनी सुबोध शिक्षण शैली का प्रयोग किया गया है कि दिन शुद्धि विषयक सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा गहन से गहन विषय को भी इतनी सरल शैली में अभिव्यक्त किया गया है कि सर्व साधारण ज्योतिष का ज्ञान रखने पर भी कुछ ही प्रयत्न से दिन – शुद्धि का प्रामाणिक पंडित बन सकता है।

परम पूज्य आचार्यवर्य्य श्री रत्नशेखरसूरिजी कृत 'दिन – शुद्धि – दिपीका' ज्योतिष का प्रामाणिक एवं प्रतिष्ठित ग्रंथ है। आपके ज्योतिष विषय के अन्य ग्रन्थ भी हैं। जिनका उल्लेख बसंतगढ़ के शिलालेख (६५४) में किया गया है।

आज का युग शिक्षा की व्यापकता तथा वैज्ञानिक सत्यता का युग है। ज्योतिष शास्त्र गणित के आधार पर पूर्ण वैज्ञानिक है तथा प्रयोगिक सत्यता की कसौटी पर विज्ञान के विद्यार्थियों को पूर्ण सन्तोष प्रदान कर सकता है, इसी हेतु आज ज्योतिष की ओर विशेष रुचि और गवेषणा की प्रवृत्ति की वृद्धि हो रही है। आज शिक्षा का क्षेत्र किसी एक का एकाधिकार न बनकर सब के लिये गवेषणा करने का समान अवसर प्रदान करता है। अतः शिक्षार्थी

किसी शास्त्र पर किसी एक सम्प्रदाय या जाति के एकाधिकारवाद की रूढ़ि को स्वीकार नहीं करता अतः ज्योतिष विषय के विद्वानों का भी यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वे इस विषय को प्रच्छन्न या गोप्य न रखकर संकीर्णता से व्यापकता की ओर बढ़े तथा इस विषय को सर्व साधारण तक पहुँचाने के लिये शास्त्र को सुबोध तथा सरल कर समाज के सम्मुख प्रस्तुत करे, जिससे इसे उसकी जीवनीय शक्ति में अमरता तथा अन्तर्राष्ट्रीय उपादेयता प्राप्त हो सके।

मैंने ज्योतिष शास्त्र में बढ़ती हुई लोगों की जिज्ञासा को जानकर ही दिन-शुद्धि-दीपिका की श्रीयतीन्द्र हिन्दी टिका का सरल तथा सुबोध शब्दों में लिखने का प्रयत्न किया है, जिससे इस विषय में बढ़ती हुई जिज्ञासाओं को और अधिक अन्वेषण की जागरुकता को संबल मिले।

ज्योतिष के प्रारम्भिक ज्ञान के लिये 'दिन-शुद्धि-दीपिका' बहुत ही सरल एवं उपयोगी ग्रंथ है। मैंने दिन-शुद्धि-दीपिका की श्री यतीन्द्र हिन्दी टीका करते समय ज्योतिष के अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों की सहायता ली है उनका उल्लेख करना मेरा परम कर्तव्य है।

यथा— अभिधान राजेन्द्र कोष, शीघ्र कोष, बाल बोध, नारचन्द्र, मुहूर्त चिंतामणी, प्रश्नसिद्धि तथा सर्वाधिक आरम्भसिद्धि की सहायता ली है। उपर्युक्त ग्रंथों का अध्ययन कर प्रत्येक तर्क की शुद्धि का तुलनात्मक समाधान पुष्ट निर्णय के आधार पर किया है।

सर्वाधिक आभारी हूं मैं श्री दर्शनविजयजी महाराज साहब का जिन्होंने इस ग्रंथ की विश्व प्रभा गुजराती टीका लिखी है।

क्योंकि मैंने यतीन्द्र हिन्दी टीका में सर्वाधिक सहारा इन्हीं की गुजराती टीका का लिया है इसमें विशेष रुचि रखने का कारण है इनकी प्रामाणिक श्रेष्टता । अतः मैं विश्व प्रभा की सहायता लेने के लोभ संवरित नहीं कर सका । यह मेरी अति श्रद्धा कहिये या धृष्टता जिसके लिये मैं क्षम्य समझा जा सकूँगा । उपर्युक्त ज्योतिष ग्रंथों की सहायता विपय की समृद्धि के लिये ली गई है, जिनका मैं बहुत आभारी हूं ।

दिन-शुद्धि-दीपिका यतीन्द्र हिन्दी टीका करते समय मैंने कहीं-कहीं मौलिक विचारों का प्रतिपादन भी किया है, किन्तु ज्योतिष शास्त्रीय मर्यादाओं के संगत में ही । यथा इस ग्रन्थ के उत्तरार्ध में भरणी आदि नक्षत्र सप्त ग्रहों के जन्म नक्षत्र हैं तथा वे अशुभ समझे गये हैं, ऐसा प्रत्यक्ष तात्पर्य भी निकलता है किन्तु अन्यत्र उस योग को वज्र मुशल के रूप में पृथक कर जन्म नक्षत्रों से उसकी भिन्नता भी निर्दिष्ट की गई है । मैंने भी इसी द्वितीय मार्ग का अवलम्बन किया है ।

उसी प्रकार शुक्रास्त, गुर्वास्त में उद्यापन, शान्ति स्नात्र, वृद्ध स्नात्र तथा पदाधिरोहण आदि मांगलिक कार्य करने ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से वर्जित है, फिर भी किये जाते हैं । मैंने भी यह पुष्ट किया है कि रोगादि शान्ति के लिये शान्ति स्नात्र एवं महा स्नात्र तथा दीक्षा शुक्रास्त में भी किये जा सकते हैं, किन्तु गुर्वास्त के समय में शुभ कार्य अवश्य ही वर्जित है ।

तत्पश्चात् भद्रबाहु संहिता ज्योतिष की रचना हुई, जो कि वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं है । उसी के आधार पर भृगु संहिता का जन्म हुआ या भृगु संहिता का प्रभाव भद्रबाहु संहिता पर है ऐसा भी मन्तव्य है । वैसे विक्रम संवत् की द्वितीया शताब्दी के

पूर्वार्द्ध में जैनाचार्यों ने अन्य साहित्य के साथ-साथ गणित, होरा तथा मुहूर्त ज्योतिष को भी बहुत कुछ स्थान दिया है और उसमें मंगल, बुध, शुक्र, राहु, केतू तथा सात वारों को भी स्थान प्रदान किया है।

ऐतिहासिक प्रमाण है कि विक्रम संवत् १३३० से १३६० तक बृहत्गच्छ में श्री जयशेखरसूरिजी के पट्ट में वज्रसेन नाम के आचार्य हुए हैं। ये वक्तृत्व शक्ति तथा विद्वता में इतने चमत्कारिक थे कि मुगल बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने भी इनकी विद्वता तथा वाणी पर मोहित होकर रुणा ग्राम में एक अमूल्य हार तथा बहुत सी अन्य बहुमुल्य वस्तुएँ उपहार स्वरूप समर्पित की थी।

प्रो० पीटर्सन ने भी यही उल्लेख अपनी ऐतिहासिक पुस्तक में किया है। इन सूरीश्वर द्वारा हो विक्रम संवत् १३४२ में लोटाणा गोत्रीय १०००० गृहस्थ जैन धर्म में दीक्षित किये थे ऐसा उल्लेख भी प्राप्त होता है। हरि मुनि के कर्पूर प्रकार में श्री रत्नशेखरसूरिजी के विषय में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है।

श्रीवज्रसेनस्य गुरोस्त्रिषष्टि, सार प्रबंध स्पुट सद् गुणस्य ?
शिष्येण चक्रे हरिणेय मिष्टा, सूक्तावली नेमि चरित्र कर्ता ॥

आचार्यवर्य्य श्री रत्नशेखरसूरिजी का जन्म विक्रम संवन् १३७२ में, सूरि पद १४०० में बिलाड़ा ग्राम में तथा निर्वाण संवत् १४२८ के पश्चात् हुआ था। आपके अध्ययन के विपय में ऐसा उल्लेख मिलता है कि खरतरगच्छाधिपति श्री जिनसिंहसूरिजी के शिष्य श्री जिनप्रभसूरिजी के सानिध्य में हुआ था।

दिन–शुद्धि–दीपिका में श्री रत्नशेखरसूरिजी ने लग्न के विपय को पृथक रखकर मात्र पंचांग शुद्धि से दिन शुद्धि देखने

हेतु लक्ष्य सिद्धि करके दिन शुद्धि दीपिका ग्रंथ का निर्माण किया गया था ।

इस ग्रंथ की सम्पूर्ण सफलता में परम पूज्य प्रातः स्मरणीय गुरुदेव श्री यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज का शुभ आशीर्वाद है जिनकी कृपा से मैं यह ग्रन्थ रूपी पत्र पुष्प उनके कर-कमलों में समर्पित करने योग्य क्षमता प्राप्त कर सका हूं ।

मैं अपने श्रम तथा कार्य को सिद्धि की सार्थकता को जब फलवती समझूँगा कि पाठकगण इस ग्रन्थ का कितना व्यापक उपयोग करते हैं तथा इसे पढ़ने में कितनी रुचि ग्रहण करते हैं । मैं स्वयं इतना अवश्य अनुभव करता हूं कि प्रत्येक गृहस्थ के घर में यह पुस्तक प्रारम्भिक ज्योतिष ज्ञान के लिये बहुत ही उपादेय है । दैनिक, मांगलिक और यात्रादि कार्यों के लिये प्रामाणिक ज्योतिषी पंडित के रूप में प्रत्येक श्रावक का मार्ग दिग्दर्शन अवश्य कर सकेगी ।

आभार—

प्रस्तुत श्री यतीन्द्र हिन्दी टीका के प्रकाशन के समय परम पूज्य शासन प्रभावक वर्तमानाचार्य श्रीमद्विजय विद्याचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज ने शुभाशीर्वाद के रूप में दो शब्द लिखकर देने की कृपा की एवं लेखन कार्य में समय-समय पर मुनिराज श्री देवेन्द्रविजयजी महाराज ने जो मार्गदर्शन दिया वह भुलाया नहीं जा सकता है । अशुद्धि संशोधन में पण्डित श्री हीरालालजी शास्त्री, गुड़ाबालोतरा ने जो समय दिया है वह भी भुलाया नहीं जा सकता । श्री बाबूलालजी जोशी रतलाम ने 'सूक्ष्म - बिन्दु - विचार' द्वारा अपने विचार प्रकट किये हैं एवं प्रेस कापी लिखने में खाचरोद निवासी श्रीशांतिलालजी लोढ़ा के सुपुत्र श्रीरमेशचन्द्र लोढ़ा बी. ए. ने जो अमूल्य

समय दिया है वह स्मरणीय रहेगा ।

प्रकाशन कार्य में द्रव्य के रूप में अगर निम्न लिखित महानुभावों ने अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करने का लाभ नहीं लिया होता तो प्रस्तुत ग्रंथ समय पर प्रकाशित होने में अवश्य ही विलम्ब होता ।

सर्व प्रथम आहोर (राज०) की श्री भूपेन्द्रसूरि साहित्य समिति के मंत्री श्री उदयचन्दजी ओखाजी चोपड़ा ने समिति के द्वारा जो - जो सहयोग दिया वह अविस्मरणीय रहेगा । भीनमाल निवासी दानवीर श्री मूलचन्दजी फूलचन्दजी बाफना, सायला निवासी कबदी श्री डुंगरचन्दजी हजारीमलजी, सियाणा निवासी संघवी श्री जसराज जी हिन्दूजी, भीनमाल निवासी वर्द्धन श्री खीमचन्दजी प्रतापचन्दजी सांथू निवासी शांतिलालजी पूनमचन्दजी आदि-आदि ने जो सहयोग देकर प्रस्तुत श्री दिन-शुद्धि-दीपिका (श्री यतीन्द्र हिन्दी टीका) का प्रकाशन करवाया अतः वह सभी महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं । भविष्य में भी इसी प्रकार साहित्य प्रकाशन में आप सहयोग देवें यही मंगल भावना ।

इस ग्रंथ में दृष्टि दोष के कारण कहीं पर भी सुज्ञमहानुभावों को अशुद्धि लगे तो वह सूचित करें जिससे इसकी द्वितीयावृत्ति में संशोधन हो सके ।

इति शुभम् ।

श्रीमद्राजेन्द्रसूरि जैन दादावाड़ी, जावरा
मार्गशीर्ष शुक्ला ५ शुक्रवार
प्रतिष्ठोत्सव दिवस

—मुनि जयप्रभविजय 'श्रमण'

समर्पण !

जिन

गुरुदेवश्री

की

पावन पुण्य कृपा से

यह संकलन तैयार कर सका

उन्हीं

पूज्यपाद आचार्यदेव भगवन्त

व्याख्यान वाचस्पति

श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी म.

के

कर कमलों में

सादर वन्दन सह अर्पण !

शिष्य

मुनि जयप्रभविजय 'श्रमण'

प्रातःस्मरणीय परमोपकारी गुरुदेव



श्री मद्विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज

विषयानुक्रमणिका

दिन - शुद्धि - दीपिका
(श्री यतीन्द्र हिन्दी टीका)

के

प्रकाशन में आर्थिक रूप से सहयोग देनेवाले महानुभावों

की

स्वर्णिम नामावली

१ श्री भूपेन्द्रसूरि साहित्य समिति, आहोर
मंत्री- श्री उदयचन्दजी ओखाजी चौपड़ा

२ श्री मूलचन्द, जयन्तिलाल, कान्तिलाल, अशोककुमार बेटा पोता
श्री फूलचन्दजी बाफना, भीनमाल

३ श्री घमण्डीरामजी केवलजी गोवाणी, भीनमाल

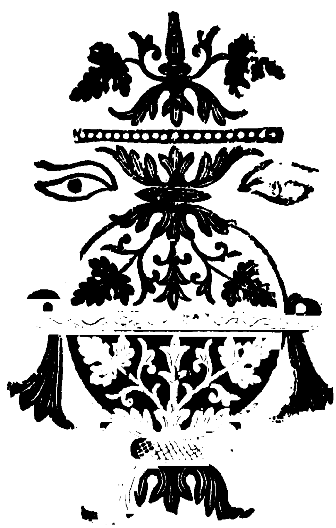
४ श्री कबदी डूंगरचन्द हजारीमलजी
फर्म – चम्पालाल डूंगरचन्द, बिजापुर – मारवाड़ में सायला

५ श्री खीमचन्द बाबुलाल पोपटलाल शांतीलाल बेटा पोता
श्री प्रतापचंदजी, भीनमाल फर्म- हीरा टेक्सटाइल कार्पोरेशन, बम्बई

६ संघवी जसराज शंकरलाल जुहारमल हजारीमल बेटा पोता
श्री हिन्दूजी, सियाणा फर्म- संघवी जसराज, लाड़पत्री

७ श्री पूनमचन्द की स्मृति में हस्ते श्री शांतीलाल पूनमचन्द, सांथू
फर्म- भोलाजी पूनमचन्द, सुरापुर

८ एस. मेघराज एन्ड कम्पनी, बम्बई हस्ते श्री ताराचन्दजी भण्डारी



प्रस्तुत श्री यतीन्द्र-हिन्दी-टीका पुस्तक के लेखक



ज्योतिष विशारद

मुनिराज श्रीजयप्रभविजयजी महाराज

'श्रमण'

।। प्रभु श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरेभ्यो नमः ।।

श्रीमद् आचार्यदेव रत्नशेखरसूरीश्वर-विरचित—

दिन-शुद्धि-दीपिका

[श्री यतीन्द्र हिन्दी टीका]

मङ्गला - चरणम्

सिद्धार्थक्षोणिपालाज्जननमधिगतस्त्रैशलेयः शरण्यः ।
यश्चास्याङ्कः प्रशोभी भवजलधितरिर्जन्मिजन्मापहारी ।।
कन्दर्पाऽखर्वदर्पप्रजयकृतयशश्चन्द्रो यः शोभिताशः ।
पायाद्विघ्नादशेषादतुलशमधरोनः सदा वर्धमानः ।।
यो गंगाजलनिर्मलान् गुणगणान् संधारयन् वणिराड् ।
यं यं देशमलञ्चकार गमनैस्तं तं त्वपायीन्मुदा ।।
सच्छास्त्रामृतवाक्यवर्षणवशाद् मेघव्रतंयोऽधरत् ।
तं सज्ज्ञानसुधानिधिं कृतिनुतं राजेन्द्रसूरिं नुमः ।।

जोईमयं जोइ गुरुं वीरं नमिऊण जोइदीवाउ ।
दिनशुद्धिदीविश्रमिणं पयडत्थं चेव पयडेमि ।। १ ।।

ज्योतिषमय भगवान् महावीर ज्योतिष के गुरु स्वरूप श्री भगवान् महावीर स्वामी को नमस्कार करके ज्योतिष दीपक से प्रकटित अर्थवाली दिन-शुद्धि-दीपिका को प्रकटित करता हूँ । यहाँ

मङ्गलाचरण में ग्रंथकार श्री रत्नशेखरसूरिजी महाराज ने भगवान् को 'जोइमयं' इत्यादि शब्दों से अलंकृत किया है, उसका भाव यह है कि श्री वीर प्रभु ज्योतिमय है, अर्थात् उनके नाम मात्र से ही ज्योतिष की सिद्धि हो जाती है। 'जोइगुरुं' का तात्पर्य है कि भगवान् ज्योतिष चक्र के सामर्थ्यशाली हैं और उसीसे वे पूज्य हैं। ऐसे गुरु को नमस्कार कर दिन-शुद्धि-दीपिका की संरचना कर रहा हूं। 'पयडत्थं' से तात्पर्य है कि दीपिका से प्रत्येक पदार्थ प्रत्यक्ष देख सकते हैं तथा मन्द बुद्धि वाले भी उसे सरलता से समझ सकते हैं। पुनः ग्रंथकार कहते हैं 'जोइदीवाउ' अर्थात् कितनी ही ज्योतिष दीपिकाओं में से इस 'दिन शुद्धि दीपिका' को प्रज्ज्वलित किया गया है। अर्थात् कितने ही ग्रंथों का अवलोकन कर पुनः इसका निर्माण किया गया है। इस प्रकार ग्रंथकार ने मङ्गलाचरण कर ग्रंथ का प्रारम्भ किया।

वार स्वामी

रवि-चंद-भोम-बुह-गुरु-
सुक्कसणिया कमेण दिणनाहा।
चं सु गु सोमा मं स र,
कूरा य बुहो सहायसमो ॥ २ ॥

अर्थ विवेचन— रवि, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि ये सातों दिनों के स्वामी हैं, जिन्हें हम सात वारों की संज्ञा से व्यवहृत करते हैं। ये रवि आदि सातों ग्रह एक-एक दिन का भोग ग्रहण करते हैं, इनमें जिस ग्रह का जो भोग दिवस हो उसे ग्रह के वार यथा सोमवार, मंगलवारादि सम्बोधित किया जाता है। इन वारों को लाने की ज्योतिष शास्त्रानुसार सामान्य रीति यह है कि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से गत मास को ड्योढा कर तथा उसमें गत तिथि का भी योग कर उसमें सात का भाग देना चाहिये,

जितने अंक शेष रहे उन्हें वर्षेशवार★ से इष्ट वार जानना चाहिये ।

यथा-शक संवत् १८४५ के आश्विन शुक्ला दशमी को कौन सा वार था ?

यह ज्ञात करने के लिये—चैत्र शुक्ला प्रतिपदा (१) को रविवार से अधिक ज्येष्ठ सहित भाद्रपद तक सात मास व्यतीत हुए हैं उन्हें ड्योढा कर उसमें गत तिथि की गणना को भी सम्मिलित करने से शुक्रवार आता है । ये वार स्वस्वकार्य क्षेत्र में तत्काल फल देने वाले हैं, तथा अन्य वार के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप कर हानि पहुँचाने वाले हैं । प्रत्येक का ३/४ बल होता है ।

नारचंद्र में वारों का कार्य निम्न प्रकार से उल्लिखित किया गया है—

गुरुर्विवाहे गमने च शुक्रः ।
युद्धे च भौमो नृपदर्शनेऽर्कः ।।
ज्ञाने च सौम्यः सुव्रते च शौरिः ।
सर्वेषु कार्येषु बली शशांकः ।।

लग्न-विवाह में गुरु, यात्रा-गमन में शुक्र, युद्ध में प्रयाण करते समय भौम (मंगल), राजा के दर्शन करने में या राज्यादि कार्य के लिये या किसी से मिलने कार्य सिद्ध कराने में रविवार, ज्ञानादि कार्य हेतु बुध, दीक्षादि कार्य के लिये शनि और सर्व कार्य के लिये चंद्र अर्थात् सोमवार बलवान है । यति वल्लभ में भी कहा गया है—

★ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा वार वर्षेश, मेष संक्रांति का वार मंत्री, कर्क संक्रान्ति का वार शस्येष, शुक्ला प्रतिपदा का वार मासेश तथा सात-सात दिनों में परिवर्तित होने वाले वार दिनेश गिने जाते हैं ।

राज्याभिषेक विवाहे,
सत्क्रियासु च दीक्षणे,
धर्मार्थकामकार्ये च,
शुभा वाराः कुजं विना ॥

राज्याभिषेक, लग्न-विवाह सारे शुभ कामों की क्रिया तथा धार्मिक, आर्थिक (अर्थोपार्जन सम्बन्धी) तथा काम के अर्थात् आनंद-प्रमोदादि के कार्यों में मंगल के अतिरिक्त सारे वार शुभ गिने जाते हैं।

सोम, मंगल, गुरु तथा शुक्रवार में सारे कार्य सिद्ध होते हैं किन्तु रवि, मंगल तथा शनिवार में तो उन्हीं वारों में निर्धारित करने योग्य कार्य ही सिद्ध होते हैं। अन्यत्र भी इसके लिये कहा गया है कि— रवि को राज्यादि कार्य, पुण्य तथा मांगलिक उत्सवादि कार्य मंगलवार को आरंभ-समारंभ वाले क्रूर कार्य तथा शनिवार को दीक्षा, वास्तु, शिला, खात, गृहारम्भ आदि स्थिर तथा क्रूर कार्य किये जाते हैं वे सिद्धि को देने वाले हैं तथा इनके अतिरिक्त के कार्य शेष वारों में करने से सिद्ध होते हैं।

उपरोक्त द्वितीय श्लोक के उत्तरार्ध में कहा गया है कि ये वार ग्रह कैसे-कैसे स्वभाव वाले हैं, तथा इन वारों के उपयुक्त कौन-कौन सा कार्य करना चाहिये। यथा सोम, गुरु तथा शुक्र में सौम्य ग्रह हैं, इन वारों में शान्ति के कार्य करने चाहिये। रवि, मंगल तथा शनि ये क्रूर ग्रह हैं, इनमें क्रूर कार्य करने से सिद्ध होते हैं। बुधवार भी सौम्य है किन्तु बुध नाम का ग्रह तो सहचारी है अतः यह तो सौम्य अथवा क्रूर ग्रह के स्वभावानुसार अनुसरित होता है अर्थात् यह बुध लग्न कुण्डली में सौम्य ग्रह के साथ सौम्य स्वभाव वाला तथा क्रूर ग्रह के साथ क्रूर ग्रह वाला बना रहता है। अतः इसे मध्यम स्वभावी-अनुसरक स्वभावी कहा

जाता है। बुधवार के दिन शांति के तथा बुद्धि चातुर्य के कार्य तत्काल फल को देने वाले होते हैं। सामान्य नियमानुसार इन सातों वारों के कार्य स्व-स्ववार में निर्धारित दिन ही करने चाहिये, प्रतिकूल वारों में नहीं करने चाहिये।

रात्रि मे वार के दोष निर्बल हो जाते हैं, जिससे क्रूर वारों की क्रूरता भी रात्रि में नहीं रहती, निर्बल हो जाती है।

यहां तक कि 'लल्ल' तो कहते हैं—

।विष्ट्य म्-श्रंगारकेचैव, मध्याह्नात् परतः शुभम्।

विष्टि में, मंगल में तो मध्याह्न के पश्चात् भी शुभ है, श्रर्थात् मध्याह्न के पश्चात् ये निर्बल हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य रीति से भी वारों की चरादि संज्ञा है। यथा—

चरः स्थिरस्तथोग्रश्च, मिश्रो लघुरथो मृदुः।
तीक्ष्णश्च कथिता वाराः प्राच्यैः सूर्योदयः क्रमात्॥

प्राचीन शास्त्रकारों ने रवि आदि सातों वारों को अनुक्रम से चर, स्थिर, उग्र, मिश्र, लघु, मृदु तथा तीक्ष्ण कहा है।

अब सातों वारों का आश्रयी काल होरा कहते हैं—

चं स गु मं र सु बु वलय—
कमसो दिणवारमाइउ किच्चा,
सड्ढ घड़ी दो माणा
होराहिव पुण्णफलजणया॥ ३॥

चंद्र, शनि, गुरु, मंगल, रवि, शुक्र तथा बुध के वलयाकार में दिन के वार को मुख्य करके ढाई-ढाई घड़ी की होरा आती है जो स्वयं के वार के साथ आने पर पूर्ण फल प्रदान करती है।

एक-एक होरा ढाई-ढाई घड़ी की होती है । इस प्रकार रात और दिन की ६० घड़ियों में २४ चौबीस होरा आती हैं । उसमें यह क्रम है— प्रथम प्रातःकाल में प्रथम होरा बैठते वार की होती है, उसके पश्चात् अनुक्रम से छट्ठे-छट्ठे वार की होरा आती है । इस प्रकार सोमवार को प्रथम होरा चन्द्र की द्वितीय शनि की, तृतीय गुरु की, चतुर्थ मंगल की, पंचम रवि की, षष्ठ शुक्र की, सप्तम बुध की, अष्टम चन्द्र की, इस प्रकार अनुक्रम से गणना करने पर चौबीसवीं होरा गुरु की आती है । पुनः दूसरे दिन प्रातःकाल मंगलवार के दिन प्रथम होरा मंगल की आती है, इस प्रकार सातों वारों में प्रथम होरा सातों वारों की आती है । ये स्वयं के वार के कार्य में ½ फल प्रदान करती है जिससे प्रत्येक वार स्वयं की होरा में कार्य किये जाने पर पूर्ण फल प्रदान करते हैं । उसी प्रकार सौम्यवारों की होरा के योग में किये हुए कार्य भी सम्पूर्ण शुभ फल प्रदान करते हैं, किन्तु अशुभ ग्रहों की होरा तथा क्रूर ग्रह ये शुभ कार्य में ग्रहण नहीं करना चाहिये, लेकिन यदि वार या होरा इन दोनों में से एक भी यदि श्रेष्ठ हो तो उसमें भी शुभ कार्य कर सकते हैं । होरा के लिए कहा है—

लग्नं पञ्चचतुर्वर्गं, दूष्यते क्रूरहोरया ।
अपि षड्वर्गसंशुद्धं कुलिकेन विहन्यते ।।

ग्रहों का पांच या चार वर्ग वाला भी लग्न क्रूर होरा के कारण दूषित होता है तथा छः वर्ग से शुद्ध लग्न कुलिक के कारण हन्य है ।

दिन होरा यंत्र

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल

रात्रि होरा यंत्र

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल

उद्वेगाऽमृत रोगाश्च, लाभ-शुभौ चलस्तथ ।
कालश्च दिवसे षड्भिः रात्रौ पञ्चभिरेव च ।।

अर्थ— उद्वेग, अमृत, रोग, लाभ, शुभ, और चल तथा काल ये नाम प्रत्येक वार के प्रारम्भ में प्रथम चौघड़िये के होते हैं। तत्पश्चात् दिन में छट्ठे-छट्ठे नाम वाले चौघड़िये आते हैं, अर्थात् रविवार को प्रथम चौघड़िया उद्वेग, द्वितीय चौघडिया चल, तृतीय लाभ, इसी प्रकार अष्टम उद्वेग आता है । उसके बाद रात्रि में प्रथम चौघड़िया उससे पांचवे वार का होता है और फिर रात्रि के हर एक चौघड़िये भी पांचवें पांचवें नाम के आते हैं। यथा—रवि-वार को रात्रि का प्रथम चौघड़िया शुभ है जो दिन के अन्तिम उद्वेग से पांचवा है फिर दि्वतीय अमृत और इसी प्रकार आठवां शुभ आता है । दूसरे दिन सोमवार को प्रथम चौघड़िया उसका स्वयं का अमृत है । इन चौघड़ियों का फल सामान्य रीति से "यथा नाम तथा फलं" फल है । यहां उद्वेगादि 'चौघड़ियों" के नाम से व्यवहृत होते हैं । किन्तु ये चार-चार घड़ी के नहीं होते हैं, अतः वार के प्रारम्भ से सूर्यास्त तक जितनी घड़ी वार हो उसके आठवें भाग को "चौघड़िया" इस संज्ञा से पुकारा जाता है। जिसका दूसरा नाम 'अर्ध प्रहर' भी है । जिस दिन तीस घड़ी का वार हो उस दिन का चौघड़िया अर्थात् अर्ध प्रहर पौने चार घड़ी का होता है, आधुनिक ज्योतिषी गणित के ठीक मूल्यांकन के आधार पर इस चौघड़िये की प्रवृत्ति को ठीक मानते हैं ।

इसके अतिरिक्त एक शुभाशुभ घटी यन्त्र (जैन चौघड़िये) भी उपलब्ध हैं वे भी सूक्ष्म पर्यवेक्षणात्मक बुद्धि से रचे गये हैं, तथा विश्वसनीय हैं । बहुत से गणितज्ञ उनके माध्यम से भी शुभा-शुभ समय निकालते हैं ।

**

दिन के चौघड़िये

रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल

रात्रि के चौघड़िये

रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ

शुभाशुभ घटीयंत्र (जैन चौघड़िया)

आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष तथा पौष मास के दिन की घड़ियाँ ।

रविवार— अ ६, च ८, अ ८, शू २, म २, शू २, च २
सोमवार— अ ४, च ४, अ ६, च १६
मंगलवार— अ २, शू २, अ १०, च ६, शू ६, च ४

बुधवार— शू २, म ४, अ २, शू २, च ४, शू २, अ ४, शू १०
गुरुवार— अ ४, च ६, अ ४, शू ४, च ४, शू ४, अ ४
शुक्रवार— अ २, च ६, अ ६, च ६, अ ८, शू २,
शनिवार— शू ४, च ४, अ ४, शू ८, अ ६, शू ४

आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष व पौष मास की रात्रि की घड़ियाँ

रविवार— शू २, च ४, अ ६, च ६, अ ४, च ४, शू २, च २
सोमवार— च ४, अ ८, च ८, अ २, च ६, शू २
मंगलवार— च ६, अ २, शू २, अ १२, म २, अ ४, शू २
बुधवार— म ४, अ ४, च ८, अ ६, शू ८
गुरुवार— शू ८, अ २, च ६, अ ४, च ६, म २, शू २
शुक्रवार— च ४, अ ४, शू ४, म २, च ६, अ ६, शू ४
शनिवार— च ४, अ ४, च ६, अ ४, शू ४, च ४, अ २, शू २

माह, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, श्रावण तथा भाद्रपद मास के दिन की घड़ियाँ।

रविवार— म २, च २, अ ८, च ६, शू १०, म २
सोमवार— अ ४, च ८, अ ६, च ६, अ ४, शू २
मंगलवार— च ४, शू २, अ ६, च ४, शू २, अ २, शू ४, अ ६
बुधवार— च ४, अ ४, शू २, च ४, म २, अ ४, च ४, अ ४, शू २
गुरुवार— अ ६, च ४, अ ४, शू २, अ १४
शुक्रवार— शू २, अ १६, च ८, अ २, शू २
शनिवार— शू ४, च ४, शू ४, अ ४, शू ४, च ६, शू ४

माह, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, श्रावण तथा भाद्रपद के रात्रि की घड़ियाँ।

रविवार— शू ४, म ४, च २, शू २, अ ४, शू २, च ६, शू ६
सोमवार— च २, अ ६, च ६, अ ८, च ८

मंगलवार— अ ६, शू २, अ २, च ४, म २, शू ४, अ ६, शू ४
बुधवार— शू ४, अ ६, शू ४, च ६, शू ४, अ ६
गुरुवार— च ४, म ४, अ २, च ८, अ ४, शू ४, अ ४
शुक्रवार— शू २, च ४, अ ६, शू ४, अ ६, म २, शू ६
शनिवार— शू २, च ४, अ ६, च ४, अ ६, च २, शू ६

ज्येष्ठ तथा अषाढ़ मास के दिन की शुभाशुभ घड़ियां ।

रविवार— शू ४, अ ८, च ६, अ ६, च ४, शू २
सोमवार— च ८, अ ४, शू २, च ४, अ ६, म ६
मंगलवार— अ ४, च ४, शू २, अ ६, च ६, म २, च ४, अ २
बुधवार— शू २, च ४, अ ८, च ६, अ ८, शू २
गुरुवार— अ २, शू ४, च ६, अ ६, शू २, च ४, अ ६
शुक्रवार— शू २, अ १६, च ८, अ २, शू २
शनिवार— शू ४, च ४, शू ४, अ ४, शू ४, च ६, शू ४

ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मास की रात्रि की शुभाशुभ घड़ियां

रविवार— अ ४, शू ४, च ४, अ ६, च ८, शू ४
सोमवार— शू ४, च ८, अ ४, च ४, शू २, च ४, शू ४
मंगलवार— च ६, अ ६, च ४, अ २, शू २, च ४, अ ४, शू २
बुधवार— अ ८, च २, शू ४, अ ४, शू ६, अ ६
गुरुवार— म ४, अ ४, शू २, च ४, शू २, अ ६, च ६, शू २
शुक्रवार— शू २, च ४, अ ६, शू ४, अ ६, म २, शू ६
शनिवार— शू २, च ४, अ ४, च ४, अ ६, च ४, अ २, शू ४

इन शुभाशुभ घटी यंत्र में लग्न, मुहूर्त, चौघड़िये, होरा, कुलिक, उपकुलिक, कालवेला अर्ध प्रहर, सुवेला, आदि की आवश्यक शुद्धि का समावेश होता है । इस यंत्र के घड़ियों का प्रारम्भ सूर्योदय से होता है । उसमें— म-महेन्द्र, अ-अमृत की घड़ियां शुभ है

तथा च-चक्कर, शू-शून्य की घड़ियां अशुभ हैं, अर्थात् महेन्द्र शुभ अमृत शुभ चक्कर विलम्भ करनेवाला तथा शून्य विघ्न करनेवाला होता है। इस सम्बन्ध में विशेष ज्ञान के लिये शिवचक्र में देखा जा सकता है।

वार का प्रारंभ—

विच्छिग्र-कुम्भाइ तिए,
निसिमुहि विस-धणुहि कक्कि-तुलि मज्झे।
मक-मिहुण-कन्न-सिहे,
निसि अंते संकमइ वारो॥

सूर्य के एक राशि से दूसरी राशि में परिवर्तित होने की दशा को संक्रान्ति कहते हैं। ये संक्रान्तियाँ बारह हैं तथा राशियां भी बारह हैं। जब सूर्य वृश्चिक, कुम्भ, मीन, तथा मेष पर हो तब रात्रि के आदि भाग से वार गिना जाता है। सूर्य, वृष, कर्क, तुला और धन राशि में हो तब मध्यरात्रि से वार की गणना होती है अपि च, मिथुन, सिंह, कन्या तथा मकर संक्रान्ति में सूर्य हो तो वार रात्रि के अंतभाग से संक्रमित होता है, इस समय के स्पष्टीकरण के लिये दिनमान तथा रात्रिमान की आवश्यकता रहती है।

दिनमान ज्ञात करने की स्थूल रीति—

मकर से लगाकर मिथुन तक छः संक्रान्तियों में अनुक्रम से दिनमान वृद्धि को प्राप्त करता है। उसमें मकर संक्रान्ति में प्रथम दिन दिनमान २६ घड़ी १२ पल, कुम्भ में २६ घड़ी ४८ पल, मीन में २८ घड़ी १४ पल, मेष में ३० घड़ी, वृष में ३१ घड़ी ४६ पल, तथा मिथुन संक्रान्ति में ३३ घड़ी एवं १२ पल का दिनमान होता

है । क ं संक्रान्ति में प्रथम दिन ३३ घड़ी तथा ४८ पल का उत्कृष्ट दिनमान होता है । उसके बाद कर्क से धन तक छः संक्रान्तियों में दिनमान घटता जाता है जिससे सिंह संक्रान्ति में ३३ घड़ी १२ पल कन्या में ३१ घड़ो और ४६ पल, तुला में ३० घड़ो, वृश्चिक में २८ घड़ी १४ पल धन संक्रान्ति के प्रथम दिन २६ घड़ी ४८ पल दिनमान होता है और उसके तीस दिन जाने पर मकर संक्रान्ति में पुनः २६ घड़ी और १२ पल का दिनमान होता है । इस दिन-मान में हमेशा कितनी वृद्धि तथा हानि होती है ? इसके लिये मास में बढ़े हुए या घटे हुए पल में तीस का भाग देने से हमेशा के दिन का प्रमाण आजाता है ।

१-१२ २-५२ ३-३२ ३-३२ २-५२ १-१२

एकार्क पक्षद्विशराः त्रिदन्ताः, त्रिदन्तपक्षद्विशराः कुसूर्याः ।
मृगादिषट्केऽहनि वृद्धिरेवं, कर्कादिषट्केऽपचितिपलाद्याः ।।

मकर संक्रान्ति में प्रत्येक दिन १ पल १२ विपल, कुम्भ में २ पल ५२ विपल, मीन में ३ पल ३२ विपल, मेष में ३ पल ३२ विपल, वृष में २ पल ५२ विपल तथा मिथुन में १ पल १२ विपल की वृद्धि होती है और उसके बाद की छहों संक्रान्तियों में प्रत्येक दिन इन छः संक्रान्तियों में दर्शाई हुई पल तथा विपलों की अनुक्रम से हानि होती है । एक अहोरात्रि ६० घड़ी की होती है । उसमें से दिनमान की घड़ी और पल बाद करते बाकी रही घड़ी और पल जितना रात्रिमान होता है । (देखिये दिनमान का यंत्र)

इस गाथा में दर्शाई हुई वार की प्रवृत्ति अभी कहीं दृष्टि-गोचर नहीं होती, उसी प्रकार अन्य भी एक वार के भोग्य घड़ियों का माप मिलता है ।

राम रस नन्द बाणा, वेदाऽष्टौ सप्त दश हताः कार्याः ।
मन्दादीनां दिनतः, क्रमेण भोग्यस्य नाड्यः स्युः ।।

दिनमान का यंत्र

संक्रान्तियें	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुम्भ	मीन
प्रथम दिनमान घटीपल	३०-०	३१-४६	३३-१२	३३-४८	३३-१२	३१-४६	३०	२८-१४	२६-४८	२६-१२	२६-४८	२८-४
हानि वृद्धि दिनमान	वृद्धि	वृद्धि	वृद्धि	हानि	हानि	हानि	हानि	हानि	हानि	वृद्धि	वृद्धि	वृद्धि
प्रतिदिन हानि-वृद्धि के पल	३-३२	२-५२	१-१२	१-१२	२-५२	३-३२	३-३२	२-५२	१-१२	१-१२	२-५२	३-३२
प्रतिमास वृद्धि-हानि के पल	१०६	८६	३६	३	८६	१०६	१०६	८६	३६	३६	८६	१०६
संक्रांति के कुल पूर्व पल	१८००	१९०६	१९९२	२०२८	१९९२	१९०६	१८००	१६९४	१६०८	१५७२	१६०८	१६९४
मास का योग	चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	अषाढ़	श्रावण	भाद्रपद	आश्विन	कार्तिक	मार्गशीर्ष	पौष	माह	फाल्गुन
ऋतु	बसंत	ग्रीष्म	ग्रीष्म	वर्षा	वर्षा	शरद	शरद	हेमंत	हेमन्त	शिशिर	शिशिर	बसन्त
अयन	उत्तर	उत्तर	उत्तर	दक्षिण्	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	उत्तर	उत्तर	उत्तर

शनिवार के प्रातः से प्रारम्भ होकर प्रत्येक वार की भोग्य घड़ियां अनुक्रम से ३०-६०-६०-५०-४०-८० तथा ६० है, अर्थात् शनिवार के प्रातः से शुक्रवार की रात्रि के अन्त में ये घड़ियां पूरी होती हैं। इस गणनानुसार शनिवार की रात्रि में रविवार बैठने से अर्थात् आजाने से शनिवार सुप्त गिना जाता है। अतः शनिवार की रात्रि शुभ गिनी गई है।

श्री उदयप्रभसूरि का वार प्रवृत्ति के विषय में मत—

वारादिरुदयादूर्ध्वं, पलैर्मेषादिगे रवौ।
तुलादिगे त्वधस्त्रिशत्, तद्युमानान्तरार्धजैः॥

दिनमान की घड़ी पल और तीस के मध्य जितना अंतर हो उसे आधा करने पर आये हुए घड़ी और पल से वार का प्रारम्भ होता है। किन्तु मेषादि छः राशियों में सूर्योदय हो तो सूर्योदय पश्चात् और तुलादि छः राशियों में सूर्य हो तो सूर्योदय के पूर्व उतनी ही घड़ियां वार की शुरूआत होती है। जैसे कि कर्क संक्रान्ति में ३३ घड़ी ४८ पल का दिनमान हो तो ३० के साथ घटाने पर ३ घड़ी ४८ पल शेष रहते हैं, उनका आधा करने पर सूर्योदय के पश्चात् १ घड़ी ५४ पल जाते कर्क संक्रान्ति के प्रथम दिन वार प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार मकर संक्रान्ति के प्रथम दिन सूर्योदय के पूर्व १ घड़ी ५४ पल बाकी रहते वार की शुरूआत होती है।

वार के आश्रय से सुवेला—

चउघडिअ सुवेला एग दो छच्च सूरे,
पण इग अड सोमे अट्ठ चऊ सत्त भोमे।
छ तिअ अड बुहम्मि पंच दो सत्त जीवे,
छ अडिग चउ सुक्के तिन्नि सत्तट्ठ पंच॥

रवि को प्रथम, द्वितीय तथा छट्ठा चौघड़िया, सोमवार को पांचवां, पहला और आठवां चौघड़िया, मंगलवार को आठवां, चौथा तथा सातवां चौघड़िया, बुधवार को छट्ठा, तीसरा और आठवाँ चौघड़िया, गुरुवार को पांचवां, दूसरा तथा सातवां चौघड़िया, शुक्रवार को छट्ठा, आठवां, पहला और चौथा चौघड़िया, शनिवार को तीसरा, सातवां और आठवां चौघड़िया तथा पांचवां चौघड़िया श्रेष्ठ सुवेला गिना जाता है ।

कुलिकादि चार सुवेला—

रवि-बुह-सुक्का-सत्त उ,
हायंता कुलिअ कंट उवकुलिआ,
अड ति छ इग चउ सग,
दो सूराइसु कालवेलाओ ।

रविवार, बुधवार और शुक्रवार के सातवें चौघड़िये से एक-एक कम करने से प्रत्येक वार के कुलिक कंटक और उपकुलिक योग होते हैं । ये कुयोग भी दिन के अष्टमांश को आश्रित कर कहे गये हैं ।

रवि आदि सातों वारों का अनुक्रम से आठवां, तीसरा, छट्ठा, प्रथम, चौथा सातवां और द्वितीय चौघड़िया कालवेला कहा जाता है । यह योग लाने के लिये अन्य पद्धति भी है, स्वयं उस वार से शनिवार जितना हो उस वार का उतना ही दिनाष्टमांश कुलिक होता है । कुलिक में शुभ कार्य करने का सर्वथा निषेध है । इसलिये व्यवहार प्रकाश में कहा गया है—

छिन्नं भिन्नं नष्टं, प्रहजुष्टं पन्नगादिभिर्दृष्टम् ।
नाशमुपयाति नियतं, जातं कर्माऽन्यदपि तत्र ॥

कुलिक योग में छिन्न, भिन्न भूतादि ग्रह ग्रसित या सर्पादि से दंशित कोई भी प्राणी या पदार्थ अवश्य नष्ट होता है तथा उसमें किये हुए अन्य कार्य भो नष्ट होते हैं ।

दिनाष्टमांश में कुलिक होता है, इस कथन से श्रीमान् नरचंद्रसूरीश्वर सम्मत है किन्तु श्री उदयप्रभसूरीश्वर उपरोक्त कहे दिनाष्टमांश में प्रथम अर्धभाग वर्जित कर दूसरे अर्धभाग के मुहूर्त में कुलिक योग होने का मत प्रकट करते हैं, स्वयं उस वार से शनिवार जितने में होता है उसकी दुगुनी संख्या वाला दिवस का मुहूर्त कुलिक योग वाला होता है और रात्रि में उससे एक-एक कम (ओछी) संख्या वाला मुहूर्त कुलिक योग होता है । इस रीति से रविवार से शनिवार सातवां वार होने से रविवार के दिन में चौदहवां और रात्रि में तेरहवाँ मुहूर्त सोमवार के दिन में बारहवां और रात्रि में ग्यारहवां, इस प्रकार अनुक्रम से शनिवार को दिन में दूसरा और रात्रि में पहला मुहूर्त कुलिक होता है । पन्द्रह दिन के और पन्द्रह रात्रि के इस प्रकार कुल तीस मुहूर्त हैं । उसका प्रमाण भी दिनमान और रात्रिमान के पन्द्रहवें भाग का होने से उत्कृष्ट दिनमान में दो घड़ी से अधिक और जघन्य दिनमान में दो घड़ी से कम (ओछा) आता है ।

आगम में त्रीश मुहूर्त के नाम इस प्रकार हैं । १ रुद्र, २ श्रेयान्, ३ मित्र, ४ वायु, ५ सुप्रतीत, ६ अभिचंद्र, ७ माहेन्द्र, ८ बल, ९ ब्रह्मा, १० बहुसत्य, ११ ईशान, १२ त्वष्टा, १३ भवितात्मा, १४ वैश्रमण, १५ वारण, १६ आनंद, १७ विजय, १८ विश्वसेन, १९ प्रजापति, २० उपशम, २१ गंधर्व, २२ अग्निवेश, २३ सत्य वृषभ, २४ आतपवान्, २५ अर्थवान्, २६ ऋणवान्, २७ भौम, २८ वृषभ, २९ सर्वार्थसिद्धि, ३० राक्षस । पुराण ग्रंथों में भी इसी प्रकार से इसी भाँति नामों में कुछ परिवर्तन के साथ मुहूर्त के नाम उल्लिखित हैं और उनमें कहा भी गया है कि दिन के क्षणों

में श्वेत (श्रेयान्) ३ मैत्र, ५ सावित्र (सुप्रतीत) ६ वैराज (अभिचंद्र) ८ अभिजित (बल) १० बल (बहु सत्य) और ११ विजय (इशान) मुहूर्त शुभ है ।

ज्योतिष ग्रंथों में नक्षत्र के नामों के अनुसार मुहूर्त के नाम भी कल्पित हैं । दिन के पंद्रह क्षणों के नाम— १ आर्द्रा, २ अश्लेषा ३ अनुराधा, ४ मघा, ५ धनिष्ठा, ६ पूर्वाषाढ़ा, ७ उत्तराषाढ़ा, ८ अभिजित् (अभीच), ९ रोहणी, १० ज्येष्ठा, ११ विशाखा, १२ मूल, १३ शततारा, १४ उत्तराफाल्गुनी और १५ पूर्वाफाल्गुनी है । रात्रि के पन्द्रह क्षणों के नाम— १ आर्द्रा, २ पू० भा०, ३ उ० भा० ४ रेवती, ५ अश्विनी, ६ भरणी, ७ कृतिका, ८ रोहिणी, ९ मृग-शिर, १० पुनर्वसु ११ पुष्य, १२ श्रवण, १३ हस्त, १४ चित्रा और १५ स्वाति है ।

तीस मुहूर्त के स्वामी के नाम— शिव, भुजंग, मित्र, पितृ, वसु, जल, विश्व, विरंची, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, निशाचर, वरुण, अर्यमा, योनि, रुद्र, अज, अहिबुंध, पुषा, दस्त्र, अंतक, अग्नि, धाता, इन्दु, अदिति, गुरु, हरि, रवि, त्वष्टा और अनल हैं । इन मुहूर्त में दिन का आठवां मुहूर्त अभिच, दक्षिण दिशा बिना सर्व दिशा में गमन हेतु दीक्षा और प्रतिष्ठादि सर्व कार्यों में सर्वसिद्धि को देने वाला है ।

इन मुहूर्तों में कौन-कौन से मुहूर्त कुलिक है, इसके लिये कहा गया है—

सोमे ब्राह्मः कुजे पैत्रः, सुराचार्ये च राक्षसः ।
शुक्रे ब्राह्मः शनौ रौद्रो, मुहूर्ताः कुलिकाह्वयाः ।।

सोमवार, मंगलवार, गुरुवार, शुक्रवार और शनिवार इन दिनों में अनुक्रम से ब्रह्मा, पैत्र, राक्षस, ब्रह्मा तथा रुद्र का मुहूर्त कुलिक होता है । कुलिक के विषय में कहा गया है, कुलिक छः

वर्गों में शुद्ध लग्न को हनन करता है।

कंटक योग बुधवार को दिन में सातवें चौघड़िये में होता है और उसके बाद प्रत्येक वार को एक-एक कम अंक वाले चोघ-ड़िये में कंटक योग होता है। इस प्रकार बुधवार को सातवां, गुरुवार को छट्ठा, शुक्रवार को पाँचवा, शनिवार को चौथा, रविवार को तीसरा, सोमवार को दूसरा और मंगलवार को पहला दिनाष्टमांश कंटक योग होता है।

इन तीनों कुलिक, उपकुलिक तथा कंटक योग इस प्रकार क्रम से आते हैं। जिस वार को जो चौघड़िया कुलिक हो उससे पूर्व के पाँचवे वार का चौघड़िया उपकुलिक तथा उससे पूर्व के पाँचवे वार का चौघड़िया कंटक होता है। ये तीनों कुयोग शुभ कार्यों में वर्जित है। अब कालवेला के बारे में बताते हैं।

अनुक्रम से रविवार को आठवाँ, सोमवार को तीसरा, मंगल वार को छट्ठा, बुधवार को पहला, गुरुवार को चौथा, शुक्रवार को सातवाँ तथा शनिवार को दूसरा चौघड़िया कालवेला है। प्रत्येक वार को तीन से गुणा करने पर उसमें से तीन बाद करने से कालवेला का चौघड़िया आजाता है, यथा शनिवार सातवाँ है, इसे तीन से गुणा करने पर इक्कीस आते हैं, उसमें से तीन बाद करने पर १८ शेष रहते हैं। अब चौघड़िये आठ हैं अतः आठ से भाग देने पर पूर्णाङ्क (भाज्यफल) में दो और शेष भी दो रहते हैं तो ये शेष रहे दो, शनिवार को दूसरा चौघड़िया कालवेला है एवं कालवेला शुभ कार्यों में वर्जित है।

अर्ध प्रहर तथा उसकी खास वर्ज्य घड़ियाँ—

ता चउजुअ अद्धपहरा,
तेसिं सोलडदुतीसदुएगचऊ।

चउसट्ठी मज्झपला,
हेया पुव्वाउ दिसी छट्ठी ।

कालवेला में चार मिलाने पर वर्ज्य अर्ध प्रहर आते हैं । सातों वारों में जो जो चौघड़िये कालवेला के हैं उनसे पांचवाँ-पांचवाँ चौघड़िया वर्ज्य अर्ध प्रहर होता है । जिससे कालवेला में चार मिलाते वर्ज्य चौघड़िये आते हैं । उसी प्रकार वर्ज्य अर्ध प्रहर में चार मिलाते कालवेला भी आती है । यथा रविवार को आठवाँ चौघड़िया कालवेला है, उसमें चार मिलाते, बारह होने पर आठ का भाग देते शेष रहे चार से आशय है चौथा चौघड़िया रविवार को वर्ज्य अर्ध प्रहर है ।

दिन के शुभाशुभ चौघड़िये

रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
सुवेला	सुवेला	कंटक	कालवेला	उपकुलिक	सुवेला	कुलिक
सुवेला	कंटक	वर्ज्य	उपकुलिक	सुवेला	कुलिक	कालवेला
कंटक	कालवेला	उपकुलिक	सुवेला	कुलिक	वर्ज्य	सुवेला
वर्ज्य	उपकुलिक	सुवेला	कुलिक	कालवेला	सुवेला	कंटक
उपकुलिक	सुवेला	कुलिक	वर्ज्य	सुवेला	कंटक	सुवेला
सुवेला	कुलिक	कालवेला	सुवेला	कंटक	सुवेला	वर्ज्य-उपकुलिक
कुलिक	वर्ज्य	सुवेला	कंटक	सुवेला	कालवेला	सुवेला
कालवेला	सुवेला	सुवेला	सुवेला	वर्ज्य	उपकुलिक सुवेला	सुवेला

पूर्व, अग्नि, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्व, उत्तर और ईशान ये आठ दिशाएँ हैं। इन दिशाओं में वारों के अनुसार इस प्रकार यात्रा वर्ज्य है।

रविवार को चौथे अर्धप्रहर के मध्य की सोलह पल में पूर्व दिशा की यात्रा वर्ज्य है।

सोमवार को सातवें अर्धप्रहर के मध्य की आठ पल में वायव्य कोण की यात्रा वर्ज्य है।

मंगलवार को दूसरे अर्धप्रहर के मध्य की बत्तीस पल में दक्षिण दिशा की यात्रा वर्ज्य है।

बुधवार को पांचवें अर्धप्रहर के मध्य की दो पल में ईशान कोण में यात्रा वर्ज्य है।

गुरुवार को आठवें अर्धप्रहर के मध्य की एक पल में पश्चिम दिशा की यात्रा वर्ज्य है।

शुक्रवार को तीसरे अर्धप्रहर के मध्य की चार पल में अग्नि कोण में यात्रा वर्ज्य है।

शनिवार को छट्ठे अर्धप्रहर के मध्य की चौंसठ पल में उत्तर दिशा की यात्रा वर्ज्य है।

पल आदि के लिये निम्न प्रमाण से कोष्टक है।

साठ विपल (एक गुरु अक्षर बोलने का समय) का एक पल।

साठ पल (काम क्रिड़ा छंद बोलते समय) व्यतीत होने वाला काल) की एक घड़ी।

दो घड़ी का एक मुहूर्त।

साठ घड़ी या तीस मुहूर्त का एक दिन।

तीस दिन का एक मास ।

दो मास को एक ऋतु ।

तीन ऋतुओं का एक अयन ।

दो अयन का एक वर्ष ।

साठ विलिप्ता की एक लिप्ता, साठ लिप्ताओं का एक अंश, तीस अंश की एक राशि, बारह राशि का एक भगण तथा सूर्य के एक भगणचक्र से एक सौर वर्ष होता है । इस भगण में परिभ्रमण करते सूर्य को एक वर्ष व्यतीत होता है ।

मुहूर्त चिंतामणी के अनुसार कुछ विष घड़ियां जो वर्ज्य हैं—

नखा द्वयं द्वादश दिक् च शैला, बाणाश्च तत्वानि यथाक्रमेण ।

सूर्यादिवारेषु परं चतस्त्रो, नाड्यो विषं स्यात् खलु वर्जनीयम् ।।

रवि आदि सात वारों में २०–२–१२-१०–७-५–२५ घड़ी के बाद की चार घड़ियां विष होने से वर्ज्य है ।

नौ ग्रहों का ग्रह गोचर निम्न प्रकार से है –

रवि एक मास में एक राशि पर रहता है तथा एक-एक दिन में राशि का एक-एक अंश, इस प्रकार तीस दिन में सम्पूर्ण राशि को भोगकर अन्य राशि में संक्रमित होता है । उसी प्रकार चन्द्र भी १३५ घड़ी में, मंगल ४५ दिन में, बुध ३० दिन में, गुरु तेरह मास में, शुक्र एक मास में, शनि २।। वर्ष में तथा राहु व केतू १।। वर्ष में एक-एक राशि का उपभोग करता है । ये हरेक ग्रह अनुक्रम से मेषादि बारह राशियों में भ्रमण करते हैं । किन्तु राहु और केतू वाम गति से बारह राशियों में भ्रमण करते हैं । चन्द्र के अतिरिक्त आठों ग्रहों को रात्रि का एक-एक त्रिशांश भोगने में १-१।।–१-१३-१-३०–१८ और १८ दिन लगते हैं तथा चन्द्र को

साढ़े चार घड़ी लगती है। उसी प्रकार राशि का नवांश भोगने के लिये रवि को तीन दिन बीस घड़ी, चन्द्र को पन्द्रह घड़ी, मंगल को पाँच दिन, बुध को तीन दिन बीस घड़ी, गुरु को तैंतालिस दिन बीस घड़ी, शुक्र को सात दिन बीस घड़ी, शनि को सौ दिन, राहू को साठ दिन तथा केतू को साठ दिन लगते हैं।

राशि के आधे भाग को होरा, तीसरे भाग को द्रेष्काण नाम से सम्बोधित किया जाता है और उससे अधिक भाग को जो स्वीकार्य हो उसे उतना ही अंश कहा जाता है। यथा राशि का नवमाँ भाग नवमांश, बारहवाँ भाग द्वादशांश तथा तीसवाँ भाग त्रिशांश कहा जाता है। ये ग्रह पूर्व में उदय होते हैं तथा पश्चिम में अस्त होते हैं, किन्तु बुध और शुक्र पूर्व में भी अस्त होता है तथा पश्चिम में उदय भी होता है। उदय तथा अस्त का प्रमाण इस प्रकार है।

सूर्य के १२ त्रीशांश मध्य चंद्र, १७ त्रीशांश में भौम, १३ त्रीशांश मध्य बुध, ११ त्रीशांश मध्य गुरु, ६ त्रिशांश मध्य शुक्र व १४ त्रिशांश मध्य शनि अस्त होता है। सूर्य के तेंतीस अंश बाहर होते ग्रहों का उदय होता है। अस्तंगत मंगलादि ग्रह चार मास सौलह दिन, बत्तीस दिन नौ दिन तथा बयालीस दिन अस्त रहकर उदित होते हैं। चन्द्र दो दिन अस्त रहकर तीसरे दिन उदित होता है एवं बुध और शुक्र पूर्व में अस्त होने पर छत्तीस तथा सतत्तर दिन पश्चात् उदित होते हैं। पुनः उद्गम के दिन से लगाकर चन्द्र अट्ठाइस दिन, मंगल छः सौ साठ दिन, बुध छत्तीस दिन, गुरु तीन सौ बहत्तर दिन, शुक्र दो सौ इक्कावन दिन तथा शनि तीन सौ बयालीस दिन तक अस्त नहीं होता है।

सूर्य राशि से बारह राशियों में परिभ्रमण करते मंगलादि पांचों ग्रह कौन से भाव को प्राप्त होते हैं ? इसके लिये 'प्रश्नशतक' की वृत्ति में उद्धरण—

सूर्यभुक्ता उदीयन्ते, शीघ्रा अर्के द्वितीयगे ।
समं तृतीयगे यान्ति, मन्दा भानौ चतुर्थगे ।।
वक्राः पंचम-षष्ठेऽर्के तेऽतिवक्राः नगाष्टगे ।
नवमे दशमे मार्गाः, सरला लाभ रिष्यगे ।।

सूर्य से भुक्त होने पर सारे ग्रह उदय होते हैं । सूर्य के दूसरी राशि में जाने पर वे शीघ्र गति वाले, सूर्य के तीसरी राशि में जाने पर वे समगति वाले, सूर्य के चौथी राशि में जाने पर वे मंदगति वाले होते हैं, सूर्य पांचवें-छट्ठे हो तो वक्र होता है । सूर्य सातमें-आठमें होते ही अतिवक्र होता है । सूर्य नवमें-दशमें गमन करते ही मार्गगामी होता है तथा सूर्य ग्यारहवीं-वारहवीं राशि पर जाते ही सरल होता है । यह रीति मंगल, गुरु और शनि को आश्रयी होते हैं । अन्य बुध तथा शुक्र तो सूर्य के पास ही अतिचारी होते हैं । जब ग्रह सीधी गति से वाम गति वाले हो जाते हैं तो वे वक्री कहे जाते हैं तथा मंगल आदि वक्री होने पर अनुक्रम से ६५ - २१ · ११२ - ५२ तथा १३४ दिन वक्र गति वाले रहते हैं ।

ग्रह नित्य की सामान्य गति से अधिक शीघ्रता से राशि का भोग करे तव वे अतिचार गमन कहे जाते हैं । अतिचार दिन कितने हैं उसको 'लल्ल' का श्लोक स्पष्ट करता है—

पक्षं दशाहं त्रिपक्षी, दशाहं मासषट्त्रयी ।
अतिचारः कुजादीना-मेष चारस्त्वितोऽपरः ।।

मंगल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि के अतिचार के दिन अनुक्रम से १५–१०–४५–१० तथा १८० हैं, उसके बाद के दिन चार गति वाले कहे जाते हैं ।

ग्रहों का फल इस प्रकार से है—

पक्षं दशाहं मासं च, दशाहं मास पंचकम् ।
वक्रेऽतिचारे भौमाद्याः, पूर्वराशिफलप्रदाः ।।

वक्री या अतिचारी मंगल आदि १५-१०-३०-१० और १५० दिन तक पूर्व राशि (वक्री या अतिचारी होने की राशि) का फल देते हैं । मुहूर्त चिंतामणी में वक्री, अतिचारी गुरु के २८ दिन वर्ज्य कहे गये हैं । किन्तु प्रधान गोचर बल या लग्न हो अथवा गुरु त्रिकोण धन, स्त्री या लाभ राशि में जाता हो तो गुरु शुभ है, मंगल आदि ग्रह अनुक्रम से ७४५-६२-१४४-५२४-२४० दिन मार्ग-गति करते हैं ।

इन ग्रहों में से सूर्य तथा भौम राशि के आदि भाग में, गुरु तथा शुक्र राशि के मध्य भाग में, चन्द्र तथा शनि राशि के अंतभाग में तथा बुध पूर्ण राशि में फलदायक है । इस प्रकार स्थूल ग्रह गति जाननी चाहिये ।

अब ग्रह के नाम कहे जा रहे हैं । चन्द्र, बुध, गुरु तथा शुक्र सौम्य ग्रह हैं तथा रवि कृष्णपक्ष की चवदस से शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तक कृशचन्द्र, मंगल क्रूर ग्रहों के साथ रहा बुध, शनि और राहू क्रूर ग्रह हैं । नरपति जयचर्या के अनुसार—

राहु केतु सदा वक्रौ, सदा शीघ्रौ विधूष्णगू ।
क्रूरा वक्रा महाक्रूरा; सौम्या वक्रा महाशुभाः ।
शुक्रेन्द्र योषितौ मन्द-बुधौ क्लीवौ परे नराः ।।

राहू और केतू सदा निरन्तर वक्री ग्रह हैं । सूर्य चन्द्र निरन्तर अतिचारी ग्रह हैं तथा क्रूर ग्रह जब वक्री हो जाते हैं तब वे महा क्रूर हो जाते हैं, उसी प्रकार सौम्य ग्रह वक्री हो जाय तब महासौम्य हो जाते हैं । शुक्र और चन्द्र स्त्री ग्रह हैं । बुध तथा शनि नपुंसक है एवं रवि, मंगल तथा गुरु पुरुष ग्रह हैं ।

लग्न कुण्डली में स्वयं से दूसरे, तीसरे, चौथे, दशवें, ग्यारहवें तथा बारहवें स्थान में रहा हुआ ग्रह तत्काल मित्र है तथा बाकी के स्थान में रहा हुआ ग्रह तत्काल शत्रु कहा जाता है। मित्र ग्रह तत्काल मित्र हो जाय तो वे बहुत श्रेष्ठ हैं तथा शत्रु ग्रह तत्काल शत्रु हो जाय तो अधिक अशुभ है।

शनि और बुध, रवि और चन्द्र के पुत्र हैं।

गुर्वर्कार्कीन्दवः कुल्याः, उपकुल्यः कुजः सितः।
तमश्चाथ बुधो मिश्र-स्तत्र नक्षत्रवत् फलम् ॥

सूर्य, चन्द्र, गुरु और शनि कुल्य है, मंगल और शुक्र उपकुल्य है तथा बुध और राहू कुल्योपकुल्य है, इस प्रकार सारे वारों का स्थिरबल, चरबल एवं मध्यबल रूपी फल कुल्यादि नक्षत्रों के द्वारा जानना चाहिये।

१ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा के दिन जिस ग्रह का वार हो वह ग्रह वर्षाधिपति कहा जाता है।

२ मेष संक्रान्ति के वार का ग्रह मंत्री कहा जाता है।

३ कर्क संक्रान्ति के वार का ग्रह शस्येश कहा जाता है।

४ प्रत्येक मास की शुक्ला प्रतिपदा के वार का ग्रह मासेश गिना जाता है।

५ नित्य वार के ग्रह को दिनेश कहते हैं।

६ होरा का पति होरेश कहा जाता है।

७ राशियों के पति ग्रह उस-उस (तद्-तद्) राशि के स्वामी कहे जाते हैं।

८ रवि की राशि में अमुक अंशों में गये ग्रह अस्त कहे जाते हैं।

६ रवि से अमुक अंश दूर गये ग्रह उदय कहे जाते हैं ।

१० वाम गति वाला ग्रह वक्री कहा जाता है, राहू तथा केतू सदा वक्री है ।

११ नित्य की चाल से अधिक तेज चाल में चलने वाला ग्रह अतिचारी कहा जाता है । सूर्य तथा चंद्र अतिचारी ग्रह है ।

१२ समगतिशील ग्रह मार्गी कहे जाते हैं ।

१३ उदय होने के पश्चात् तथा अस्त होने से पूर्व सात दिन तक ग्रह बाल तथा वृद्ध कहा जाता है ।

१४ बहुत दिनों से उदय हुआ तथा वृद्धत्व को प्राप्त नहीं हुआ तथा विशाल बिंबवाला ग्रह विपुल कहा जाता है ।

१५ सूर्य राशि से बहुत दूर होकर आकाश में दिखाई दे अर्थात् स्पष्ट किरण वाला ग्रह स्निग्ध कहा जाता है ।

१६ नक्षत्र के एक ही पाद में एकत्रित ग्रह व तारा युद्धस्थ ग्रह कहे जाते हैं ।

१७ युद्ध के पश्चात् शुक्र के अतिरिक्त अन्य उत्तरगामी ग्रह जयी कहा जाता है ।

१८ युद्ध के पश्चात् दक्षिणगामी ग्रह हारा हुआ पीड़ित ग्रह कहा जाता है ।

१६ राहू पास रहे हुए रवि से क्रूरता से विजित ग्रह क्रूराक्रांत कहा जाता है ।

२० **प्रविविक्षुः प्रविष्ठो वा, सूर्यंशशा विरश्मिकः ।**

सूर्य राशि में प्रवेश करने वाला या उसमें गया ग्रह विरस्मिक होता है ।

२१ क्रूराक्रान्तः क्रूरयुतः, क्रूरदृष्टस्तु यो ग्रहः ।
विशस्मितां प्रपन्नश्च, स विनष्टो बुधैः स्मृतः ।।

पद्मप्रभसूरि के अनुसार क्रूर से विजित, क्रूर के साथ राशि के नवांश में रहा हुआ, क्रूर से सम्पूर्ण दृष्टि से दिखाया हुआ तथा सूर्य की राशि में प्रपन्न ग्रह विनिष्ट हो जाता है।

२२ इष्ट दिन में गोचर सद्यः सफल कहा जाता है ।

२३ इष्ट दिन में गोचर किन्तु अनुकूल वेध से अशुभ सद्य अफल माना जाता है ।

२४ जन्म कुण्डली में किसी ग्रह से उपचय के ३–६–१०–११ स्थान में रहे ग्रह पूर्व ग्रह के तान या परस्पर कार्य में पोषण करने वाले गिने जाते हैं ।

२५ लग्नस्थ ग्रह स्वराशि से चौथे तथा दशमें स्थान में रहे ग्रहों का योग प्राप्त करते हो तो परस्पर कारक कहे जाते हैं।

२६ केन्द्र में रहे स्वस्थ उच्च तथा त्रिकोणस्थ ग्रह परस्पर कारक हैं ।

२७ इष्ट दिन में सूर्य के उदय और अस्त स्थान से उत्तर की तरफ उदित होकर अस्त होने वाले ग्रह उत्तरचर हैं ।

२८ सूर्य के भ्रमण मण्डल में ही चरित होने वाले ग्रह अन्तश्चर हैं ।

२९ सूर्योदय स्थान से दक्षिण की तरफ उदित होकर दक्षिण में ही अस्त होने वाले ग्रह दक्षिणचर कहे जाते हैं ।

३० शीघ्र गतिवाला ग्रह मन्द गतिवाले ग्रह के इकत्तीस अंश में मिले और उसके पश्चात् वह उसमें पीछे रह जाय तब तक वह शीघ्र गतिवाला ग्रह 'मुथुशिल' कहा जाता है ।

३१ मंदगति वाले ग्रह् के एकतीस अंश में मिलकर आगे जाकर तेज राशि को भोगने वाला शीघ्र गतिवाला ग्रह मुशरिफ कहा जाता है ।

३२ इकत्तीशांश में थोड़े दिन भोगने वाला ग्रह् शीघ्रगामी होता है । 'लल्ल' ग्रहों को इस प्रकार ११ अवस्थाएं बताते हैं ।

३३ स्वयं की राशि में स्थित ग्रह् स्वस्थ कहा जाता है ।

३४ उच्चस्थान में रहने वाला ग्रह् दिप्त कहा जाता है ।

३५ मध्यघर में रहने वाला ग्रह् मुदित कहा जाता है ।

३६ स्वयं के वर्ग में रहने वाला ग्रह् शांत कहा जाता है ।

३७ प्रकट किरणों वाला ग्रह् शक्त कहा जाता है ।

३८ नीच स्थान का उल्लंघन कर स्वोच्च स्थान सन्मुख रहा ग्रह प्रवृद्धवीर्य कहा जाता है ।

३९ दुष्ट स्थान में रहे हुए स्वयं के अंश में रहे सौम्य ग्रह अधिवीर्य कहे जाते हैं ।

४० सूर्य से हनित ग्रह् विकल कहा जाता है ।

४१ शत्रु स्थान में रहने वाला ग्रह् खल कहा जाता है ।

४२ अन्य ग्रह् के द्वारा युद्ध में जीता हुआ ग्रह पीड़ित है ।

४३ स्वयं की नीच राशि में स्थित ग्रह् दीन कहा जाता है ।

४४ उसी प्रकार स्ववर्गी, परवर्गी, अन्यवर्गी, हर्षी, स्वस्थ स्वराशिग, ललाटस्थ एवं सन्मुख ग्रह भी विभिन्न-विभिन्न प्रकारसे है ।

ग्रह चक्र

नाम	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु		
त्रिशांश भोग दिन	दिन १	घड़ी४।।	दिन१।।	दिन १	दिन१३	दिन १	दिन३०	दिन१८	दिन१८	$\frac{१}{३०}$	१
द्वादशांश भोग दिन	२-३०	घड़ी११।	३-४५	२-३०	३२-३०	२-३०	७५-०	४५-०	४५-०	$\frac{१}{१२}$	२
नवमांश भोग दिन घड़ी	३-२०	०-१५	५-०	३-२०	४३-२०	३-२०	१००-०	६०-०	६०-०	$\frac{१}{९}$	३
द्रेष्काण भोग दिन	१०	घड़ी४५	१५	१०	१३०	१०	३००	१८०	१८०	$\frac{१}{३}$	४
होरा भोग मास	०।।	घड़ी६७।।	०।।।	०।।	६।।	०।।	१५	९	९	$\frac{१}{२}$	५
राशि भोग मास	१	घड़ी१३५	१।।	१	१३	१	३०	१८	१८	१	६
भगण भोग वर्ष	१	दिन२७	१।।	१	१३	१	३०	१८	१८	....	७
अस्त त्रिशांश	....	१२	१७	१३	११	९	१४	....	....	....	८
अस्त काल दिन	०।।	२	१२०	१६	३२	९	४२ (पूर्व में बुध ३६ शुक्र ७७)				९

उदय काल दिन	०॥	२८	६६०	३६	३७२	२५१	३४२	...	....	१०
वक्री दिन	....	....	६५	२१	११२	५२	१३४	...	....	क ११
उदय के बाद वक्री	०००	०००	२६४	३०	१२८	२७२	१०१	(मतांतर मं.७३५ गु.११७		
प्रतिचार दिन	....	....	१५	१०	४५	१०	१८०	...	...	१२
मार्ग दिन	....	....	७४५	६२	१४४	५२४	२४०	...	....	१३
विमार्गी फल दिन	....	....	१५	१०	३०(२८)	१०	१५	....	....	१४
वर्ण	लाल	शुभ्र	लाल शुभ्र	हरा	पीत	श्वेत	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	१५
आकृति १	चतुष्कोण	स्थूल	चोकोर	गोल	गोल	(पं)खंड	दीर्घ	दीर्घ	दीर्घ	क १६
आकृति २	ह्रस्व	ह्रस्व	ह्रस्व	मध्यम	दीर्घ	ह्रस्व	दीर्घ	दीर्घ	दीर्घ	ख १६
स्वभाव	क्रूर	सौ०क्रूर	क्रूर	सौ०क्रूर	सौम्य	सौम्य	क्रूर	क्रूर	...	१७
लिंग	पुरुष	स्त्री	पुरुष	न०पु० स्त्री०न०	पुरुष	स्त्री०	न०पु० स्त्री०न०	पु०(न०)	पु०(न०)	क ख १८

परस्पर मैत्री	सो०मं० गु०	र० मं० गु०	रवि.सो० गु०	शुक्र.शनि रा	र०सो० मं०	बुध.श० रा०	बुध शुक्र रा	गु.शु.श.	....	१९
मित्र ग्रह	सो०मं० गु०	रवि बुध	र०सो० गु०	रवि शुक्र	र०सो० मं०	बुध.श०	बुध शुक्र	स्थान से ११-१२-१०-२-३-४	स्थान में रहे ग्रह स्पष्ट हैं।	२०
मध्यम ग्रह	बुध	मं०गु० शु० श०	शु० श०	मं०गु० श०	शनि	मं० गु०	गुरु			२१
शत्रु ग्रह	शुक्र शनि	+	बुध	चन्द्र	बुध शुक्र	र० सो०	र०सो.मं.			२२
परस्पर बल	७	६	२	३	४	५	१			२३
योग	कुल्य	कुल्य	उपकुल्य	मिश्र	कुल्य	उपकुल्य	कुल्य	मिश्र	....	२३
कालबल	अयन	मुहूर्त	दिन	ऋतु	मास	पक्ष	वर्ष	...	....	२४
ऋतुबल	वर्षा	शरद्	ग्रीष्म	हेमन्त	शिशिर	बसन्त	शिशिर	...	...	२५
राशिबल	पुरुष	स्त्रिराशि	पु० राशि	पु० राशि	पु० राशि	स्त्रीराशि	पु० राशि	...	...	२६
राशि अंश फल	आदिमें	अन्तिम	आदिमें	आ०	मध्य में	मध्य में	अन्त में	....	....	२७
कालबल	मध्य	पराह्न	मध्य	प्रातः	प्रातः	पराह्न	संध्या	संध्या	संध्या	२८

स्वगृह	सिंह	कर्क	वृष-मेष	क०मि०	ध० मी०	वृष-तु०	म० कु०	कन्या	मीन	२९
उच्चघर	मेष	वृषभ	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला	मिथुन	धन	३०
नीचघर	तुला	वृश्चिक	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष	धन	मिथुन	३१
परमांश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०	१५	१५	३२
मूलत्रिकोण	सिंह	वृषभ	मेष	कन्या	धन	तुला	कुम्भ	कुम्भ	सिंह	३३
भाग–भागा	आ०२०	नं० ३	आ०१२	आ०१५	आ०१०	आ०१५	आ०१०	...	....	३४
अयनबल	उत्तर	उत्तर	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	....	....	३५
पक्षबल	कृष्ण	शुक्ल	कृष्ण	शुक्ल	शुक्ल	शुक्ल	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	३६
दिन-रात्रिबल	दिन	रात्रि	रात्रि	अहोरा०	दिन	दिन	रात्रि	...	....	३७
लग्न दिशा बल	१०	४	१०	१	१	४	७	....	....	३८
लग्न दिशा बल	स्थापना से उत्क्रम में									३९
१ हर्ष स्थान	९	३	६	१	११	५	१२	...	....	४०

२ हर्षस्थान	मेष	वृष	मकर	कन्या	कर्क	मोन	तुला	मिथुन	धन	४१
३ हर्षस्थान	दिवस	रात्रि	दिवस	रात्रि	दिवस	रात्रि	रात्रि	...	...	४२
४ हर्षस्थान	१०+१ ४+७	१+४ ७+१०	इस प्रकार पुरुष ग्रहों को रवि से तथा स्त्री ग्रहों का सोम से ज्ञात करना चाहिये ।							४३
पसन्द स्थान	१०	१०	१०	१	१०	७	१-३-११	....	...	४४
पूर्ण दृष्टि	७	७	४-७-८	७	५-७-९	७	३-७-१०	५-७-९-१२	....	४५
पादोन दृष्टि (पोनी)	४-८	४-८	+	४-८	४-८	४-८	४-८	४-८	....	४६
अर्ध दृष्टि	५-९	५-९	५-९	५-९	+	५-९	५-९	५-९	...	४७
एक पाद दृष्टि (पा)	३/१०	३/१०	३/१०	३/१०	३/१०	३/१०	+	३/१०	...	४८
गोचर शुद्धि	३-६-१०-११	२-३-५-६-७-९-१०-११	३-६-१०-११	२-३-५-७-९-१०-११	२-५-७-९-१०-११	२-३-७-९-१०-११	३-६-१०-११	३-६	३-६	४९
ललाट ग्रहस्थान	१	५-६	१०	४	२-३	११-१२	७	८-९	...	५०

याय्यादि	या यी	या यी	या यी	स्थाई	स्थाई	या यो	स्थाई	....	....	५१
जन्म नक्षत्र	वि०	कृ०	पु०षा०	श्र०	पु०फा०	ज्ये०	रे०	भ०	अ०	५२
कार्य बल	नृपदर्शन	सर्व	युद्ध	ज्ञान	विवाह	गमन	दिक्षा	....	....	५३
लग्न में फल	व्याल	....	रसातल	....	...	...	क्षय	तम	अन्तक	५४
दृष्टि स्वभाव	उर्ध्व	सम	उर्ध्व	तिर्यंग	सम	तिर्यक्	अधो	अधो	अधो	५५
सर्व दिग् बल	पू०	प०	द०	वा०	उ०	अ०	इ०	नै०	नै०	५६
दिग् बल	दक्षिण	उत्तर	दक्षिण	पूर्व	पूर्व	उत्तर	पश्चिम	....	....	५७
दिग् मुख	पूर्व	पश्चिम	द०	उ०	उ०	पूर्व	पश्चिम	द०	द०	५८
कुण्डली बल दिगोश	पूर्व	वायु	दक्षिण	उत्तर	ईशान	अग्नि	पश्चिम	नैऋत्य	....	५९
वेद	....	....	साम	अथर्व	ऋजु	यजू	....	....	...	६०
लोक	नृप	नृप	नाग	स्वर्ग	स्वर्ग	नाग	नाग	नाग	नाग	६१
जाति	क्ष०	वै०	क्ष०	शू०	ब्रा०	ब्रा०	अंत्यज	अंत्यज	अ०	६२

जाति	राजा	तपस्वी	सोनी	ब्राह्मण	वणिक्	वैश्य	भील	वृषभ	वृषभ	६३
अधिकार	राजा	राजा	नेता	कुमार	प्रधान	मंत्री	दास	...	...	६४
प्राणीवर्ग	चतुष्पद	सरीसृप	चतुष्पद	पक्षी	द्विपाद	द्विपाद	पक्षी	सरिसृप	सरिसृप	६५
स्थान १	पशु भू	जल	दग्ध	काष्ठ	मंदिर	जल	अग्नि	अग्नि	अग्नि	६६
भ्रमण स्थान	वनचर	जलचर	वनचर	ग्राम्यचर	ग्राम्यचर	जलचर	वनचर	वनचर	वनचर	६७
प्रीति स्थान	देव	...	अग्नि	कीट	निधि	शैया	मलिन	...	...	६८
स्थान २	नीम	जल	कंटकी	अशुद्धम्	चैत्य	जल	गर्त	गर्त	....	प्रश्नवृत्ति
देहांग	आत्मा	मन	सत्व	वाक्बुद्धि	ज्ञानसुख	मदन	दुःख	...	....	७०
देहधातु	अस्थि	रुधिर	मार्जार	त्वक्	मेदा	वीर्य	शिरा	....	....	७१
गुण	सत्व	सत्व	तमस	रजस्	सत्व	रजस्	तमस्	...	....	७२
तत्व	अग्नि	जल	अग्नि	पृथ्वी	आकाश	जल	वायु	वायु	....	७३
मूलादि	मूल	धातु जी.	धातु	जीव धा.	जीव	मूल	धातु	धातु	....	प्रश्नवृत्ति ७४

वय (योगपृच्छा)	अर्धायु	मध्यम	तरुण	बालक	अर्धायु	मध्यम	वृद्ध	वृद्ध	वृद्ध	७५
स्थिति	जीर्ण	जीर्ण	नव्य	दग्ध	विचित्र	दृढ	उत्तम	....	...	७६
सूत्रायु ज्ञान	ध्वज	धूम	सिंह	श्वान	वृष	खर	गज	काक	०	ख
माता	अदिति	अत्रि०	पृथ्वी	रोहि०	फाल्गुन	महा	छाया	सिंहिका	अश्लेषा	ग
पिता	अब्धि	अब्धि	...	चन्द्र	चित्रसि	भृगु	रवि	तम	धूम	घ
युद्ध जाति	दण्ड	दाम	दंड	भेद	साम	साम	भेद	भेद	....	७७
धातु १	तांबा	मणि	स्वर्ण	कांस्य	रौप्य	मुक्त	शीशा	...	....	७८
धातु २ (भुवन०)	मोती	रौप्य	शीशा	स्वर्ण	सहेमरत्न	रौप्य	लोह	अस्थि	....	७९
वस्त्र	स्थूलदंत	नवीन	दग्ध	छिद्रित	नवीन-जीर्ण	स्थिरता वाला	जीर्ण	....	....	८०
पित्तादि रोग ज्ञान	पित्त	कफ	पित्त	सम	सम	कफ	वात	वात	वात	८१
,, ,,	पित्त	कफ	उष्णता	त्रिदोष	दम	श्लेष्म	वायु	।	।	८२
घात योग प्रश्न	अग्नि	जल	अस्त्र	ज्वर	अजीर्ण	तृषा	क्षुधा	(मंगल-२-सन्निपात)		८३

रस (प्रश्न०)	कटु	क्षाराम्ल	कटु	कषाय	कषाय मधुर	क्षाराम्ल	तिक्त	तिक्त	तिक्त	८४
अष्टोत्तरी दशा वर्ष	आ० पु० पु० अ	म० पू०फा० उ०फा०	हस्त चित्रा स्वाति वि.	अ. ज्ये. मूल	ध. श. पू.भा.	कृ. रो. मृ.	पु षा. उ.षा. आभ. श्र.	उ.भा. रे. अ. भ.	...	८५
(ज्यो० चं० ३/४)	६	१५	८	१७	१९	२१	१०	१२		
विंशोत्तरी दशा वर्ष ज्यो० चं० ३/२	कृतिका उ०फा० उ०षा० (१) ६	रोहि. हस्त श्रवण (२)१०	मृग चित्रा धनि. (३)७	अश्ले. ज्येष्ठा रेवती (७)१८	पुन. विशा. पू. भा. (५)१६	पू.फा. पू.षा. भरणी (६)१९	पुष्य अनु० उ.भा. (६)१७	आर्द्रा स्वाति शत (४)७	मघा मूल आश्व. (८)२०	८६
मास दशाक्रम	१	२	३	४	६	८	५	७	....	८७
मास दशाकाल दिन	२०	५०	२८	५६	५८	७०	३६	४२	...	८८
मास दशांत	०-२०	२-१०	३/८	५/४	८/८	१२/०	६/१०	९/२०	....	८९

मास दशा फल	चित्त नाश	धर्म लाभ	रोग मृत्यु	संपदा	सुख	अभिष्ट	मन्दकाल	बन्धन	....	९०
उत्तरोत्तर बल	७	६	२	३	४	५	१	....	...	क ख ९१
वसा	३॥	५	१॥	२	३	२	१॥	१॥	....	
ग्रहेश जिन / नेष्ट ग्रह शान्ति	पद्म प्रभ	चन्द्रप्रभ	वासुपूज्य	विमल नाथ	आदि नाथ	सुविधि नाथ	मुनिसुव्रत	नेमिनाथ	मल्लि नाथ पार्श्व नाथ	९२
वर्ग	अ	य–श	क	ट	त	च	प	क्ष	क्ष	९३

तिथिद्वार में आचार्य सदोष तिथि वर्जित करने की संक्षिप्त विधि कहते हैं। किन्तु उसमें मास तथा वर्ष की शुद्धि अवश्य देखनी पड़ती है।

चतुर्थ आरा के तीन वर्ष और साढ़े आठ मास बाकी रहते वीर प्रभु दीपावली के दिन निर्वाण पद को प्राप्त हुए थे। वीर निर्वाण के बाद ४७० वर्ष पश्चात् विक्रम संवत् प्रारम्भ हुआ है। विक्रम संवत् के प्रारम्भ से एक सौ पैंतीस वर्ष और पांच मास जाने पर शक् संवत् प्रारम्भ हुआ है। प्रद्युम्नसूरि कहते हैं—

छवाससएहिं सम्मं, पंचहिं वासेहिं पंचमासेहिं ।

सिद्धिगयस्स राया, "सगुत्ति" नामेण विक्खाओ ॥ १ ॥

(॥ ४९६ ॥)

महावीर प्रभु के मोक्ष जाने के पश्चात् ६०५ वर्ष तथा ५ मास होने पर शक नाम का विख्यात राजा हुआ था।

आधुनिक लौकिक ज्योतिष शास्त्र शक संवत् की गणना से ही प्रारम्भ होता है किन्तु सामान्य प्रवृत्ति में विक्रम संवत् के वर्ष लिये जाते हैं। पूर्वकाल में वर्ष प्रारम्भ श्रावण कृष्णा प्रतिपदा (गुजराती आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा) से होता था। अभी भी पूर्व देश में चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से वर्ष प्रारम्भ होता है। कितनेक ही स्थानों में आषाढ़ शुक्ला द्वितीया से, कितने ही स्थानों में कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा से भी वर्ष प्रारम्भ होता है। किन्तु वर्ष का प्रारम्भ तो चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से ही गिना जाता है।

नारचन्द्र के अनुसार—

सिंहस्थिते देवगुरौ च कन्या, विवाहिताः पंच करोति भर्ता ।

विवाह-क्षौरं व्रतबन्ध-दीक्षा, यात्रा प्रतिष्ठा च विवर्जनीया ॥

शोको विवाहे मरणं व्रते स्यात्, क्षौरे दरिद्रं विफला च यात्रा।
मौर्ख्यं च दीक्ष्ये विघ्नं प्रतिष्ठिते, सिंस्थिते सर्वविवर्जनीयम् ।।

रविक्षेत्रगते जीवे, जीवक्षेत्रगते रवौ।
दीक्षामुपस्थापनां वा, प्रतिष्ठां च न कारयेत् ।।

सिंह का गुरु हो तो पांच कन्याओं का भर्ता होना पड़ता है, अर्थात् उसकी चार पत्नियाँ मृत्यु को प्राप्त हो जाती हैं, अतः सिंहस्थ गुरु में विवाह, मुण्डन, व्रतबंधन, दीक्षा, प्रवास तथा प्रतिष्ठा के कार्य वर्जित हैं। सिंहस्थ गुरु विवाह में शोक, व्रत में मृत्यु, मुण्डन में दरिद्रता, यात्रा में निष्फलता, दीक्षा में मूढ़ता तथा प्रतिष्ठा में विघ्न देने वाला होता है।

उसी प्रकार रवि के क्षेत्र सिंह राशि में गुरु हो तथा गुरु का क्षेत्र धन तथा मीन राशि में रवि हो तो भी दीक्षा उपासना तथा प्रतिष्ठा वर्जित है। उसी प्रकार सिंहस्थ गुरु में उद्यापन (उजमणा) नया व्रत ग्रहणादि भी वर्जित है। सप्तर्षि के अनुसार भी सिंहस्थ गुरु में विवाह वर्जित है। किन्तु गंगा के उत्तर की तरफ और गोदावारी के मध्य प्रदेश में ही सिंहस्थ गुरु का त्याग करना चाहिये। शौनक के अनुसार सिंहस्थ गुरु मघा नक्षत्र में हो तब तक ही अशुभ है।

पाराशर के अनुसार— सिंहस्थ गुरु सिंह राशि के प्रथम पांच नवांश का उपभोग करे तब तक ही अशुभ है तथा उसके बाद शुभ है।

मुहूर्तचिंतामणिकार— सिंहस्थ गुरु हो तो पंचम सिंह नवमांश ही सर्वथा इष्ट है, अतः उसका त्याग करके दीक्षा, प्रतिष्ठा, विवाहादि का मुहूर्त लेना चाहिये।

मेष में जब गुरु हो तब सिंहस्थ गुरु का दोष नष्ट हो जाता है । मुहूर्त चिंतामणी में भी इसका स्पष्ट विधान है । कितने ही आचार्य सिंहस्थ गुरु की निर्दोषता के लिये कहते हैं—

सिंहट्ठिअ जइ जीवो, महभुत्तं होइ अह रवि मेसे ।
तो कुणइ निव्विसंकं, पा।णग्ग,णाइ कल्लाणं ।।१।।

सिंहस्थ गुरु यदि मघा नक्षत्र भुक्त करले अथवा मेष राशि में रवि हो तो निःशंक होकर पाणिग्रहण या मांगलिक कार्य करने चाहिये ।

विवाह पटल में—

वाक्पतौ मकरराशिमुपेते, पाणिपीडन विधिर्न विधेयः ।
तत्र दूषण मुशन्ति मुनीन्द्राः, केवलं परमनीचनवांशे ।।१।।

गुरु मकर राशि में आवे तब विवाह नहीं करना चाहिये, किन्तु कितने ही मुनीन्द्र मकर के नीच नवांश में ही दोष मानते हैं ।

बृहज्जातक, नारचंद्रादि में मकर के पाँचवे त्रिशांश को परम नीच माना गया है । अतः मकर के पंचम त्रिशांश रहा गुरु सर्वथा वर्ज्य है । परन्तु यहां तो ज्योतिषियों ने पांचों त्रिशांशों को श्रेष्ठ मानने का मत व्यक्त किया है । लुप्त संवत्सर दोष भी उल्लेखित किया गया है । मुहूर्तचिन्तामणि में कहा गया है:-

गोऽजान्त्यकुम्भे तरलेऽतिचारगो, नो पूर्वराशिं गुरुरेति वक्रितः ।
तदा विलुप्ताब्द ईहार्तिनिंदितः, शुभेषु रेवासुरनिम्नगान्तरे ।।१।।

गुरु यदि चार राशियों में अतिचार करे तो लुप्त संवत्-सर का दोष नहीं है तथा यह दोष रेवा और गंगा के मध्य प्रदेश में वर्ज्य है और आरम्भ सिद्धि की टीका में दूषण रूप लोपगत दोष इस प्रकार से वर्णित है—

अभिजिद्-वारुणाऽदित्य—रेवती संगते मति ।
तदा लोपगते जीवे, विवा ादि विवर्जयेत ॥ १ ॥

अभिजित, शतभिषा, पुनर्वसु और रेवती नक्षत्र से युक्त गुरु लोपगत कहा जाता है । उस समय विवाहादि शुभ कार्य वर्जित है ।

कौन-कौन से मास शुभ हैं इस विषय में श्री हरिभद्रसूरि का मत—

मिगसिराइ मासट्ठ, चित्त पोसाहिए वि मुत्तु सुहा ।

चैत्र, पौष और अधिक मास के अतिरिक्त मार्गशीर्षादि आठ मास शुभ है ।

उदयप्रभसूरि का मत—

रवौ मकरकुम्भस्थे, मेषादि त्रयगेऽपि च ।

सूर्य जब मकर कुम्भ, मेष, वृष और मिथुन का हो तो विवाह, दीक्षा या प्रतिष्ठा का मुहूर्त लेना शुभ है । उसी प्रकार—

माघ-फाल्गुनयो राध-ज्येष्ठयोश्चाऽपि मासयोः ।

माघ फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ में लग्न शुभ है तथा हीन जातियों के लिये कार्तिक तथा मार्गशीर्ष भी ठीक है । इसके लिये व्यवहार प्रकाश में कहा गया है— देवझूलनी एकादशी के पश्चात् गुरु रवि का शुद्ध हो तथा क्रूर ग्रह रहित नक्षत्र में चन्द्र बलवान हो तो शुभ कार्य हो सकते हैं । उसी प्रकार आषाढ़ शुक्ला दशमी तक का प्रथम तृतीय भाग मिथुन संक्रान्ति वाला हो तो शुभ है । इस प्रकार त्रिविक्रम कहते हैं । ज्येष्ठ मास भी शुभ है किन्तु ज्येष्ठ पुत्र और पुत्री अर्थात् वर-कन्या दोनों अपने-अपने पिता के ज्येष्ठ हो तो विवाह नहीं करना चाहिये, यदि वर या

कन्या दोनों में एक ज्येष्ठ हो तो अशुभ नहीं है । हर्ष प्रकाश में कहा है—

हकज्ज वज्जे सव्वेहिंपि जिट्ठस्स जिट्ठं ति ।

सारे शुभ कार्यों में ज्येष्ठ अपत्य को ज्येष्ठ मास वर्जित करना चाहिये ।

इसी प्रकार मीनार्क तथा धनार्क भी शुभ कार्य में वर्जित हैं । विद्याधरी विलास में यह पोष, चैत्र, धन और मीन का अपवाद इस प्रकार से वर्णित किया गया है ।

झषो न निन्द्यो यदि फाल्गुने स्यात्, अजस्तु वैशाखगतो न निन्द्यः ।
मध्वाश्रितो द्वावपि वर्जनीयौ, मृगस्तु पोषेऽपि गतो न निन्द्यः ॥१॥

फाल्गुन में मीन का सूर्य हो, वैशाख में मेष का सूर्य हो पौष में मकर का सूर्य हो तो वह निन्द्य नहीं है. शुभ है । मात्र चैत्र मास में मोन या मेष संक्रान्ति हो तो उसका सर्वथा त्याग करना चाहिये । इसके ऊपर से ही धनार्क और चैत्र मास सर्वथा अशुभ होने का ज्ञात हो सकता है, बहुत से विद्वान आश्लेषा के द्वितीय तथा तृतीय चरण का परिवर्तन कर इस प्रकार भी कहते हैं— चैत्र मास में मेष का सूर्य भी निन्द्य नहीं है । अधिक मास भी शुभ कार्य में वर्जित है, इससे क्षयमास का भी निषेध समझना चाहिये । कहा भी है—

यस्मिन्मासे न संक्रान्तिः, संक्रान्ति द्वयमेव च ।
मलमासः स विज्ञेयः, सर्वकार्येषु वर्जितः ॥ १ ॥

जिस मास में सूर्य संक्रांति नहीं हुई हो, या दो बार सूर्य संक्रान्ति हुई हो, वह सब कार्यों में वर्जनोय मलमास कहा जाता है । काल निर्णय में इस प्रकार लिखा है—

असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्यात्,
द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित् ।
क्षयः कार्तिकादित्रये नाऽन्यतः स्यात्,
ततो वर्षमध्येऽधिमास द्वयं स्यात् ॥ १ ॥

जिस मास में सूर्य संक्रान्ति नहीं हो वह अधिक मास कहा जाता है, तथा एक मास में दो संक्रान्तियां हों तो वह एक क्षय मास कहा जाता है । किन्तु क्षय मास कभी-कभी ही आता है । कार्तिकादि तीन मासों में ही क्षय होता है अन्य में नहीं, और जिस वर्ष में क्षय मास हो उसी वर्ष में अन्य दो मासों की वृद्धि हो जाती है । जिस प्रकार सूर्य को स्पर्श करने वाली तिथि प्रमाण है, उसी प्रकार संक्रान्ति वाला मास भी प्रमाण है । क्षय मास वाले वर्ष में दो अधिक मास अवश्य आते हैं उसमें कौन सा मास वृद्धि मास गिनना चाहिये, इस विषय में कालनिर्णय ग्रन्थ में इस प्रकार प्रमाण है—

मासद्वयेऽब्दमध्ये तु, संक्रान्ति र्न यदा भवेत् ।
प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यात्, अधिमासस्तथोत्तरः ॥ १ ॥

एक वर्ष में (क्षय मास होने पर) पृथक-पृथक दो मास में संक्रान्ति नहीं होती है । अतः दो वृद्धि मास हो जाते हैं । प्रथम वृद्धि प्राप्त मास प्राकृत शुभ कार्य करने योग्य तथा द्वितोय वृद्धि प्राप्त मास अधिक मास गिना जाता है ।

प्राचीन आर्य ज्योतिषानुसार बीस वर्ष में आठ अधिक मास आते थे और उसमें पौष तथा आषाढ़ की वृद्धि होती थी, किन्तु आधुनिक ज्योतिष की गणित के अनुसार उन्नीस वर्ष में आठ अधिक मास आते हैं तथा माह एवं फाल्गुन के अतिरिक्त हरेक मास बढ़ता है ।

अधिक मास की तरह क्षय मास अधिक नहीं आते हैं। वे तो कभी-कभी आते हैं, १८८ वर्ष में अधिक मास ७२ आते हैं जबकि क्षय मास आने के पश्चात् १४१ वर्ष व्यतीत होने पर नया क्षय मास आता है। फिर पुनः १९ वर्ष में दूसरा क्षय मास आता है। इस प्रकार विक्रम संवत् १८९८ में क्षय मास था और अब २०४० में क्षय मास आयगा। इन अधिक मास और क्षय मास में शुभ कार्य वर्जित करने चाहिये। नरचन्द्रसूरि मास शुद्धि में कहते हैं—

हरिशयनेऽधिकमासे, गुरुशुक्रास्ते न लग्नमन्वेष्यम् ।
लग्नेशांशाधिपतयो, नीचाऽस्तगमे च न शुभं स्यात् ॥१॥

हरिशयन में (चौमासे में) अधिक मास में गुरु और शुक्र के अस्त काल में तथा लग्नाधिपति या नवांशपति नीच स्थान में हो या अस्त हो गया हो तब लग्न नहीं लेना चाहिये, क्योंकि उस में किये हुए कार्य अशुभ होते हैं।

कार्तिकादि प्रत्येक मास में चन्द्र की गति से शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष होते हैं, एक-एक पक्ष में पन्द्रह-पन्द्रह दिन का समावेश होता है।

श्रीरत्नशेखरसूरि का तिथि की शुद्धि के विषय में मत—

नन्दा भद्दा य जया, रित्ता पुण्णा य तिहि सनामफला ।
पडिवइ छट्ठि इगारसि, पमुहा उ कमेण नायव्वा ॥ ८ ॥

प्रत्येक पक्ष की पन्द्रह तिथियों के नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा ये पांच नाम हैं, इनका अनुक्रम इस प्रकार है—

प्रतिपदा, षष्ठी, एवं एकादशी ये तीन तिथियां नन्दा हैं, और इनमें आनन्द के उत्सव चित्र, वास्तु, नृत्यादि कार्य शुभ हैं।

द्वितीया, सप्तमी, और द्वादशी ये तीन तिथियाँ भद्रा है, इनमें विवाह प्रयाण, शांतिक, पौष्टिकादि भद्र कार्य किये जा सकते हैं। तृतीया, अष्टमी, तथा त्रयोदशी ये तीनों तिथियां जया हैं इनमें वाद-विवाद साहित्यिक, युद्धादि जय फल वाले कार्य करने चाहिये। चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी ये तीनों तिथियां रिक्ता हैं, इनमें वध, बंध, अग्नि, विषादि कार्य किये जाते हैं, जो घृणित हैं। पंचमी, दशमी और पूर्णिमा ये तीनों तिथियां पूर्णा हैं, इनमें दीक्षा, यात्रा, विवाहादि शुभ कार्य किये जाने चाहिये। इस प्रकार इन तिथियों का उत्तम मध्यम और अधम तीन विभाग किये जाते हैं। श्री उदयप्रभसूरि कहते हैं—

"हीना मध्योत्तमा शुक्ला, कृष्णा तु व्यत्यया तिथिः।

शुक्ल पक्ष की नन्दादि नाम वाली पाँच-पाँच तिथियाँ अनुक्रम से हीन, मध्यम और उत्तम है और कृष्ण में इसकी विलोम अर्थात् उत्तम, मध्यम और हीन। इसके अतिरिक्त कुछ आचार्य मास के तीन विभाग कर उत्तम, मध्यम और हीन दश-दश दिन के विभाग में कहते हैं। इस प्रकार विभिन्न-विभिन्न मत हैं

वर्ज्य तिथियों का प्रमाण—

छट्ठी रित्तट्ठमी बारसी अ अमावसा गयतिही उ।
वुड्ढ तिहिकूरदद्धा, वज्जिज्ज सुहेसु कम्मेसु ॥६॥

षष्ठी, रिक्ता (चौथ, नवमी, चौदश), अष्टमी, द्वादशी, अमावश्या, क्षय तिथि, वृद्धि तिथि, क्रूर तिथि और दग्धा तिथि ये शुभ कार्य में वर्जनीय है। शुक्ल या कृष्ण दोनों पक्षों की ये तिथियाँ वर्ज्य है। उदयप्रभसूरि नवमी को किसी-किसी शुभ कार्य में स्वीकार करते हैं किन्तु प्रयाण या प्रवेश सर्वथा निषिद्ध है। लल्ल ने चौदस को यात्रा के लिये वर्ज्य कहा है। ये तिथियाँ पक्ष छिद्र कही जाती है। किन्तु अशुभ तिथियाँ अशुभ कार्यों के लिये ठीक गिनी गई है। लल्ल के अनुसार—

"स्युर्यन्त्र मन्त्र रक्षा दीक्षा-क्षुद्रेषु कर्मसु स्नाने ।।
रिक्ता दर्शाष्टम्यः शस्ताः"

यन्त्र, मंत्र, तंत्र, रक्षा, दीक्षा क्षुद्र कार्य तथा स्नान में रिक्ता तिथि, अमावस्या तथा अष्टमी शुभ है ।

मुहूर्त चिन्तामणीकार हरेक तिथि की निम्न चार घड़ियों को वर्ज्य करता है—

तिथीं-षु-नागा-ऽद्रि-गिरी-षु-वारिधि—
गजा-ऽद्रि-दिक्-पावक-विश्व-वासवाः ।।
मुनि-भसंख्या प्रथमातिथेः श्रीमान्,
परं विषं स्याद् घटिका चतुष्टयम् ।। १ ।।

शुक्ल पक्ष या कृष्ण पक्ष वाली प्रतिपदा जो प्रमाण में साठ घड़ी वाली हो, उससे हरेक तिथियों की अनुक्रम में—

१५-५-८-७-७-५-४-८-७-१०-३-१३-१४-७-८ घड़ी पश्चात् चार-चार विष घटिकाएं हैं । क्षय तिथि में कार्य क्षय होता है और वृद्धि तिथि में कार्य करने से उत्पात होता है-अतः क्षय तिथि तथा वृद्धि तिथि का सर्वदा शुभ कार्य में त्याग करना चाहिये । सारङ्ग में भी कहा है—

यथाऽग्निरम्बुना लग्नं, तथा वृद्धि-क्षये तिथेः ।

जिस प्रकार अग्नि जल के सम्पर्क में आते ही नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार तिथि के क्षय तथा वृद्धि के संयोग से लग्न भी नष्ट हो जाता है । उसी प्रकार क्रूर तिथि तथा दग्ध तिथि भी वर्जनीय है । और भी त्याज्य तिथियों के विषय में नरचन्द्रसूरि कहते हैं—

त्यज संक्रमवासरं पुनः, सह पूर्वेण च पश्चिमेन च ।

संक्रान्ति का दिन, उससे पूर्व का तथा पश्चात् का दिन इस प्रकार तीन दिन त्याज्य है। किन्तु बहुत से आचार्यों का यह मत है कि अत्यन्तावश्यक कार्य में तीन दिन का त्याग न हो सके तो संक्रांति के समय से पहली और पिछली सौलह्-सौलह् घड़ियों का त्याग कर लेना चाहिये।

ग्रहण के विषय में त्याज्य तिथियों का प्रमाण इस प्रकार से मिलता है। अंगीरस के अनुसार—

सर्वग्रस्तेषु सप्ताहं, पञ्चाहं स्याद् दलग्रहे।
त्रिद्वयेकार्धांगुलग्रासे, दिनत्रयं विवर्जयेत् ॥ १ ॥

ग्रहण के खग्रास होने पर ग्रहण का दिन और पश्चात् के सात दिन वर्जित करने चाहिये। अर्ध ग्रास में वह दिन और बाद में पांच दिन और तीन, दो, एक और अर्ध इन अंगुल के प्रमाण के ग्रास में तीन दिन वर्जित करने चाहिये। ये दिन ग्रहण दग्ध दिवस कहे जाते हैं।

और भी जन्म तिथि का त्याग एवं उस तिथि से तीस दिन वाले जन्म मास का त्याग करना चाहिये। श्री देवज्ञवल्लभ कहते हैं—

राहो दृष्टे शुभं कर्म, वर्जयेद् दिवसाष्टकम्।
त्यक्त्वा वेतालसंसिद्धि, पापदम्भमयं तथा ॥ १ ॥

भूतसाधन, पाप, और दम्भ के अतिरिक्त के शुभ कार्य राहु दर्शन के पश्चात् आठ दिन तक नहीं करने चाहिये। केतु के उदयदिन भी शुभ कार्य सफल नहीं होते हैं। उदयप्रभसूरि पूर्वाह्न को शुभ कहते हैं। मध्याह्न और रात्रि के काल को अशुभ कहते हैं। गदाधर के अनुसार मुहूर्त के मध्यभाग से पहले की और बाद की दस-दस पल वर्ज्य है। उसी प्रकार माता-पिता की मृत्यु-तिथि

माता रजस्वला हो उतने दिन, जन्म और मृत्यु के सूतक दिन, दुश्चिह्न तथा मनोभंग भी लौकिक प्रवृत्ति में वर्जित है ।

श्री हरिभद्राचार्य के अनुसार—

रयरभ्रमदभच्छन्नं, पयंडपवणं तहा समुग्घायं ।

सुरधणुपरिवेस दिसादाहाइ अं दिणं दुट्ठम् ।। १ ।।

धूल-धूसरित गगन मंडल, चारों दिशाएँ मेघमाला के घटाटोप से आच्छादित, प्रचण्ड झंझावात से दिशाएँ साँ-साँय सी करती हो, दिशाओं में प्रचण्ड भीम मेघ गर्जन से भयभीत सा वातावरण, इन्द्रधनुष से युक्त गगन मण्डल, सूर्य और चन्द्र के चारों ओर परिधि सी खींची हो, सारी दिशाएँ उष्णता की वर्षा सी करती हो, इस प्रकार के संयोगों में यात्रादि शुभ कार्य वर्जित होते हैं, क्योंकि ये दिन दुष्ट हैं ।

श्री सारङ्ग कहते हैं—

निर्घातो-ल्का-महीकम्प-ग्रहभेदादिदर्शने ।

आपञ्चवासरादूढा, नाशमाप्नोति कन्यका ।।१।।

निर्घात् उल्का, भूकम्प तथा ग्रहभेद दृष्टिगोचर हो और उसके पांच दिन पश्चात् विवाहित कन्या हो तो वह मृत्यु को प्राप्त हो जाती है अतः अशुभ है । इस लक्षण से दिक्पात, विद्युत्पात, ग्राम्यनाश, सियारों के हू हू, हू अशुभ शब्द, दण्ड, परिधियाँ तथा धूमकेतू का दर्शन आदि अशुभ होते हैं । मुहूर्तचिन्तामणि में भा कहा गया है—

मेसाइ चउसु चउरो,

तिही कमेणं च पुण्ण सव्वेसु ।

एवं परउ सकूरराति,

असुहा तिही वज्जा ॥ १० ॥

मेषादि चार राशि में क्रूर ग्रह हो तो अनुक्रम से नंदादि चार तिथियाँ पूर्णा सहित वर्जित हैं। इसी प्रकार आगे भी दोनों राशि चतुष्क में पूर्णा सहित अनुक्रम से नन्दादि चार-चार तिथियां वर्जित जाननी चाहिये। कुछ विद्वानों का मत है कि उस राशि के नाम वाले के लिये ही यह तिथि वर्ज्य है, अन्य आचार्य ऐसा मत भी प्रकट करते हैं। इन बारह राशि की क्रूर तिथियों का ही अनुक्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ भाग (१५ घड़ी) त्याग करना चाहिये, अर्थात् मेष, सिंह और धन राशि में क्रूर ग्रह हो तो १-६-११ और पूर्णा में से जो क्रूर तिथि हो उसकी प्रथम की पन्द्रह घड़ी त्याज्य है एवं वृष कन्या तथा मकर राशि में २-७-१२ और पूर्णा की अन्य पन्द्रह घड़ी वर्जित करनी चाहिये। सूर्यदग्धा तिथि—

छग चउ अट्ठमि छट्ठी,

दसमट्ठमि बार दसमि बीया उ।

बारसि चउत्थि बीआ,

मेसाइसु सूरदड्ढ दिरणा ॥ ११ ॥

मेषादि बारह राशि में सूर्य हो तो अनुक्रम से—६-४-८-६-१०-८-१२-१०-२-१२-४-२ तिथियां सूर्यदग्धा कही जाती हैं! अर्थात् सूर्य मेष में हो तो छठ तिथि सूर्य दग्ध है, वृष में चौथ मिथुन में अष्टमी, कर्क में छठ, सिंह में दशमी कन्या में अष्टमी, तुला में द्वादशी, वृश्चिक में दशमी, धन में द्वितीया, मकर में द्वादशी, कुम्भ में चौथ, मीन में द्वितीया दग्धा तिथि है।

हर्षप्रकाश में चन्द्र दग्धा तिथियां इस प्रकार से हैं—

कुंभधणे अजमिहुणे, तुलसीहे मयर मीण विसकक्के ।
विच्छियकन्नासु कमा, बीआइसमतिहीओ ससि दड्ढा ॥१॥

कुम्भ और धन का चन्द्रमा हो तो द्वितीया, मेष और मिथुन के चन्द्रमा में चौथ, तुला और सिंह के चन्द्रमा में छठ, मकर और मीन के चन्द्रमा में अष्टमी, वृष तथा कर्क के चन्द्रमा में दशमी, कन्या और वृश्चिक में द्वादशी तिथि चन्द्र दग्ध है ।

दग्धा तिथि में जन्मा हुआ प्रायः अल्पायु होता है, इस तिथि में क्षौर, नवीन वस्त्र पहनना, नवीन गृह प्रवेश, शस्त्र ग्रहण, यात्रा, खेती विवाहादि अन्य भी शुभ कार्य करने से कार्य सिद्धि नहीं होती । लल्ल कहते हैं— नक्षत्र के जितने तारा हैं उतनी ही तिथि उस नक्षत्र के योग में नक्षत्र दग्ध तिथि कही जाती है । मुहूर्तचिंतामणीकार का मत है— आठ विषम तिथियाँ कुल्य हैं । अष्टमी, द्वादशी और चतुर्दशी उपकुल्य है एवं द्वितीया, षष्ठी और दशमी कुल्योकुल्य है । यह राजयात्रा में विशेष उपयोगी है ।

तिथि चक्र

नाम	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	०))
संज्ञा	नंदा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा	नंदा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा	नंदा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा	पूर्णा
शुक्ल में	हीन	हीन	हीन	हीन	हीन	मध्य	मध्य	मध्य	मध्य	मध्य	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ	+
कृष्ण में	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ	मध्य	मध्य	मध्य	मध्य	मध्य	हीन	हीन	हीन	हीन	+	हीन
पक्ष छिद्र				वर्ज्य		वर्ज्य		वर्ज्य	वर्ज्य			वर्ज्य		वर्ज्य		वर्ज्य
वर्ज्य घड़ी				८		९		१४	२५			१०		५		
कार्य (करने के)	उत्सव चित्र वास्तु	लग्न यात्रा शांतिक	वाद युद्ध	वध अग्नि विष	दीक्षा यात्रा लग्न	आनंद चित्र वास्तु	लग्न यात्रा शांतिक	वाद युद्ध	वध अग्नि विष	दीक्षा यात्रा लग्न	उत्सव चित्र वास्तु	लग्न यात्रा शांतिक	वाद युद्ध	वध अग्नि विष	दीक्षा यात्रा लग्न	+
वर्ज्य चतुष्घटी प्रारंभ	१५	५	८	७	७	५	४	८	७	१०	३	१३	१४	८	७	७

क्रूर तिथियां	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	मे. क.	सिंह	कन्या	तुला	वृ०	सिं.वृ.	धन	मकर	कुम्भ	मीन	ध.मी.
क्रूर वर्ज्यपाद	१	२	३	४	१–४	१	२	३	४	१–४	१	२	३	४	१–४
सूर्य दग्धा		धन मीन		वृष कुम्भ		मेष कर्क		मिथु० कन्या		सिंह वींछी		तुला मकर			
चन्द्र दग्धा		कुम्भ धन		मेष मिथुन		तुला सिंह		मकर मीन		वृष कर्क		कन्या वींछी			
नक्षत्र दग्धा	भ्रा० चित्रा स्वाति	पू० उ० रे०	शिव. भ. मृ ति ज्ये० भि.श्र.	पुन० वि० नु०	रोग श्वे० म. ह	कृ०		ध०		शत०	मूल				
कुल्यादि	कुल्य	मिश्र	कुल्य		कुल्य	मिश्र	कुल्य	उप०	कुल्य	मिश्र	कुल्य	उप०	कुल्य	उप०	कुल्य
शुदिना करण	किंस्तु रबव	बाल काल	तैति. गर	वणि० विष्टि	बव ग्रा०	को० त०	गर० वणि०	विष्टि व०	बा० को०	तै० गर	व० वि०	बव बा०	को० त०	गर० व०	विष्टि बव

वृद्धि के करण	बा०	तै०	व०	ब०	कौ०	ग०	वि०	बा०	तै०	व०	ब०	कौ०	ग०	वि०	चतु०
	का०	ग०	वि०	बा०	त०	व०	ब०	कौ०	ग०	वि०	बा०	तै०	व०	शकुनि	नाग.
विष्टि			कृ०	शु०			कृ०	शु०		कृ०	शु०			कृ०	शु०
			रात्रि	रात्रि			दिन	दिन		रात्रि	रात्रि			दिन	दिन
सन्मुख			प्र० ८	प्र० ५			प्र० ३	प्र० २		प्र० ६	प्र० ९			प्र० १	प्र० ४
भद्रा			ईशान	पश्चिम			दक्षिण	अग्नि		वाय.	उत्तर			पूर्व	नै०
			घड़ी	घड़ी			घड़ी	घड़ी		घड़ी	घड़ी			घड़ी	घड़ी
जयविष्टि			२१ पश्चात	२७ पश्चात			१३ पश्चात	५ पश्चात		५ पश्चात	१३ पश्चात			२७ पश्चात	२१ पश्चात

अब करणद्वार के विषय में कहा जारहा है—

सउणि चउप्पय नागा,
किंत्थुग्घा किण्ह चउद्दसि निसाओ ।
थिरकरण तीस घडिआ,
परओ चलकरण एयाइं ॥ १२ ॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को रात्रि से तीस घड़ी वाले शकुनि चतुष्पद नाग और किंस्तुघ्न नाम के चार स्थिरकरण आते हैं और उसके बाद चरकरण आते हैं करण हमेशा दो होते हैं । इस प्रकार एक मास में तीस तिथियों के साठ करण आते हैं । यह इस मध्य में कृष्णा चौदश की रात्रि से प्रारम्भ हुए तीस-तीस घड़ी के प्रमाण वाले शकुनि आदि चार स्थिरकरण हैं, ये चार करण उसी समय अर्थात् स्थिर समय में आने से स्थिर कहे जाते हैं, अर्थात् कृष्णा चौदश की रात्रि को शकुनि, अमावस्या के दिन चतुष्पद, अमावस्या की रात्रि को नाग तथा शुक्ला प्रतिपदा के दिन किंस्तुघ्न करण होता है । इसके अतिरिक्त बव आदि सात चर करण हैं ।

चरकरण जानने का नियम इस प्रकार से है कि कृष्णपक्ष की इष्ट तिथि को दुगुनी करने से तथा शुक्ल पक्ष की तिथि को एक कम करके दुगुनि करने से आई हुई संख्या में सात का भाग देने से भागफल में सप्तक तथा शेष में दिन के बवादि करण आते हैं और उससे दूसरा करण उसी तिथि की रात्रि को होता है । जैसे शुक्ला द्वितीया में से एक घटाने पर और दुगुना करने पर दो का अंक आता है उससे शुक्ला द्वितीया के दिन दूसरा बालव और रात्रि में तीसरा कोलव करण होता है । इसी प्रकार उपरोक्त रीति से चतुर्थ और पंचम करण आता है ।

चरकरण के नाम और फल—

बव-बालव-कोलव-तेतिलक्ख,

गर-वणिअ-विट्ठिनामाणो ।

पायं सव्वे वि सुहा,

एगा विट्ठी महापावा ।। १३ ।।

बव, बालव, कोलव, तेतिलाक्ष, गर, वणिज और विष्ठि प्रायः ये करण शुभ हैं । किन्तु अन्तिम विष्ठि महापाप अत्यन्त दुष्टकरण है । इनमें तैतिलाक्ष का स्त्रीलोचन तथा तैतिल भी नाम है और विष्टि का अन्य नाम भद्रा भी है । इन सात में छः करण बहुत से कामों में शुभ हैं किन्तु भद्रा या विष्ठि निंद्य है । भद्रा सब कार्यों में अशुभ नहीं है, इसके लिये नारचन्द्र में इस प्रकार कहा गया है—

दाने चाऽनशने चैव, घातपातादि कर्मणि ।।

खराऽश्वप्रसवे श्रेष्ठा, भद्राऽन्यत्र न शस्यते ।। १ ।।

दान, अनशन, घात, पातकर्म, अश्वी तथा गर्दभी के प्रसूति में भद्रा श्रेष्ठ है, अन्य कर्म में श्रेष्ठ नहीं है । इसी की पुष्टि करते हुए कहा गया है—

युद्धे भूपतिदर्शने भय--वने घाते च पाठे हठ,

वैद्यस्वागमने जलप्रतरणे शत्रोस्तथोच्चाटने ।

सिंहोष्ट्रखरमाहिषे अजमृगे अश्वे गृहे पातने,

स्त्रीसेवा ऋतुमर्दनेषु शकटे भद्रा सदा गृह्यते ।। १ ।।

युद्ध, राजा के दर्शन, भय, वन, घात, पाठ, हठ, वैद्य को बुलाने में, जल में तैरने में, शत्रु का उच्चाटन करने में, सिंह, ऊँट, गर्दभ, महिष, बकरादि, हिरण आदि के कार्य में, घर में पातन में, स्त्री सेवा में, ऋतु कार्य में, मर्दन तथा वाहन में भद्रा

का सदा ग्रहण करना चाहिये । कहीं-कहीं भद्रा को तो शुभ भी माना गया है—

सुर--मे वत्स ! या भद्रा, सोमे सौम्ये सिते गुरौ ।
कल्याणी नाम सा प्रोक्ता, सर्वकार्याणि साधयेत् ।। १ ।।

हे वत्स ! देवनक्षत्र में सोम, बुध, शुक्र तथा गुरुवार को यदि भद्रा आती है तो वह कल्याणी नाम से सब कार्यों में शुभ हो जाती है । नारचन्द्र में और भी स्पष्टता बताते हुए लिखा गया है—

सौम्यवारेण कल्याणी, रवौ पुण्यवती तथा ।
विष्टिः शनश्चरे प्रोक्ता, भौमे भद्रा प्रकीर्तिता ।। १ ।।

विष्टि बुधवार को कल्याणी, रविवार को पुण्यवती, शनिवार को विष्टि तथा भोमवार को भद्रा कही जाती है । विष्टिकरण महादुष्ट है । अशुभता के लिये ग्रंथकार में लिखा है—

यदि भद्राकृतं कार्यं, प्रमादेनापि सिध्यति ।
प्राप्ते तु षोडशे मासे, समूलं तद्विनश्यति ।। १ ।।

कदाचित् कभी किसी संयोग से भद्रा में कार्य सिद्ध हो गया हो तो भी सोलहवां मास लगते-लगते वह समूल नष्ट हो जाता है ।

अब विष्टि कब आती है इसके बारे में लिखते हैं —

किण्हे पक्खे दिणे भद्दा,
सत्तमी अ चउद्दसी ।
रत्तिं दसमि तीआए,
सुक्के एग [illegible] ।। १४ ।।

कृष्ण पक्ष में सप्तमी और चौदश के दिन तथा दशमी व तृतीया की रात्रि में भद्रा होती है तथा शुक्ल पक्ष में एक संख्या से अधिक उपरोक्त तिथियों में भद्रा होती है। हरेक ग्रन्थ में विष्टि को अति निंद्य कहा गया है, किन्तु यह कब होती है? यह जानना नितांत आवश्यक है।

"या विष्टिरक्रम प्राप्ता"

क्रम से नहीं आई हुई विष्टि दुष्ट नहीं होती। श्रीउदयप्रभसूरि कहते हैं— भद्रा के समय में दिन-रात्रि का (फेरफार) परिवर्तन होने से वह दुष्ट नहीं रहती। अर्थात् रात्रि की भद्रा दिन में हो तथा दिन की भद्रा रात्रि में हो तो भद्रा दोष नहीं रहता। उस समय सारे कार्य करने में कोई बाधा नहीं है, उसी प्रकार दूसरे दिन की भद्रा अन्य दिवस आवे तो भी अदूषित है।

प्रवास में वर्ज्य भद्रा का स्थान और काल—

चउद्दसी अट्ठमी सत्तमीए,
राका चउत्थी दसमीइ भद्दा।
एगारसी तीअ कमा दिसासिं,
तस्संखजामेऽभिमुहाऽतिपावा ॥ १५ ॥

चौदश, अष्टमी, सप्तमी, पूर्णिमा, चौथ, दशम, एकादशी तथा तीज की भद्रा अनुक्रम से पूर्वादि आठ दिशा-विदिशा में तथा दिशा की संख्या वाले एक-एक प्रहर में सन्मुख होती है और यह अति दुष्ट होती है। प्रवास के लिये वर्ज्य भद्रा को ज्ञात करने का एक अन्य श्लोक है—

घुजाट्टणी सिते पक्षे, गृछियूढ सितेतरे।
व्यञ्जनै स्तिथयो ज्ञेयाः, स्वरैश्च प्रहरा क्रमः ॥१॥

शुक्ल पक्ष में घु जा टृ तथा णि, कृष्ण पक्ष में गृ छि यू तथा ढ भद्रा लाने वाले अक्षर हैं। इसमें व्यञ्जन के अङ्क से तिथियों की संख्या तथा स्वर के अङ्क से प्रहर तथा दिशा की संख्या जाननी चाहिये। यथा 'घ' चौथा अक्षर है और 'उ' पांचवाँ स्वर है इससे शुक्ल पक्ष में चतुर्थी को दिन में (रात्रि में) पांचवीं प्रहर में पांचवीं दिशा (पश्चिम) में जाने वाले के लिये सन्मुख की भद्रा है।

इसी प्रमाण से हरेक तिथि के लिये व्यञ्जन तथा स्वर की संख्या से समझा जा सकता है। नारचंद्र में कहा है—

विष्टिवक्रेषु यो गच्छेत्, क्रोशमेकं च मानवः।
तस्यागतिं न पश्यामि, नदीनामिव सागरात् ॥ १ ॥

जैसे नदियाँ सागर में जाने पर वापस नहीं लौट सकतीं, वैसे ही प्रतिकूल विष्टि को लेकर मनुष्य यदि जाता है तो वह भी कोस भर ही सही, किन्तु वह वापस लौट नहीं सकता यह ध्रुव सत्य है।

भद्रा की शुभाशुभ घड़ी तथा उसका फल—

पण दुग दस पण पण तिश्र,
विट्ठि घडी वयण कण्ठ उर नाही।

कडी पुच्छगाय सिद्धि,
खय निस्स कुबुद्धि कलह विजयकरा ॥ १५ ॥

विष्टि की पांच, दो, दश, पांच, पांच और तीन घड़ियाँ अनुक्रम से मुख, कंठ, हृदय, नाभि, कटि और पुच्छ भाग में है जो सिद्धि, क्षय, निर्धनता, कुबुद्धि, कलह और विजयकारक है।

	स्थान	मुख	कण्ठ	हृदय	नाभि	कटि	पुच्छ
विष्टि चक्र	घड़ी	५	२	१०	५(४)	५(६)	३
	फल	सिद्धि	क्षय	निर्धनता	कुबुद्धि	कलह	जय

विष्टिकरण तीस घड़ी का है, उसमें कुछ घड़ियाँ शुभ और कुछ घड़ियाँ अशुभ हैं। यह हानि-वृद्धि करने से शुद्ध घड़ी आती है। यथा पूर्णिमा तिथि ५८ घड़ी की हो तो विष्टि २९ घड़ी की आती है, उसमें हर घड़ी में दिनमान में दो घड़ी न्यून होने से दो पल की अथवा विष्टिमान एक घड़ी न्यून होने से एक का द्विगुणा दो पल की हानि होती है जिससे पाँच घड़ी का काल शुद्ध, चार घड़ी और पचास पल पूर्ण होते हैं। इस प्रकार हरेक घड़ी में वृद्धि-हानि की पूरी जानकारी रखी जाय।

श्री उदयप्रभसूरि नाभि में चार और कटि में छः घड़ियों का उल्लेख करते हैं। कुछ के मत में भद्रा का मुख और पुच्छ भी त्याज्य है। वे कहते हैं कि दिन की भद्रा सर्पिणी होती है तथा रात्रि की भद्रा विच्छुणी होती है अतः अशुभ है।

विष्टेर्विदध्युरिह कार्य-वपुः स्व-बुद्धि—

प्रेम-द्विषां क्षयमिमेऽवयवाः क्रमेण ॥

विष्टि के अवयव (पूर्वोक्त) अनुक्रम से कार्य, शरीर, धन, बुद्धि प्रेम और शत्रु का नाश करते हैं।

नरभद्रसूरि पुच्छ की घड़ी लाने के विषय में इस प्रकार मत व्यक्त करते हैं—

आपदे (आदौ) घटिकाः पञ्च, वर्तमाने दश स्मृताः ।
मध्ये च द्वादश प्रोक्ता, अन्ते च घटिकात्रयम् ॥ १ ॥
आदौ धनविनाशाय, वर्तमान भयंकरी ।
मध्ये प्राणहरी ज्ञेया, विष्टिपुच्छे ध्रुवं जयः ॥ २ ॥

विष्टि की आदि में पाँच घड़ी, वर्तमान में दस घड़ी, मध्य में बारह घड़ी और अन्त में (पुच्छ में) तीन घड़ी है। जिसमें से प्रारम्भ की घड़ियाँ हो तो धन का विनाश करती हैं। वर्तमान घड़ियाँ भय उत्पन्न करती हैं, मध्य की घड़ियाँ प्राणाहारी होती है तथा विष्टि की पूंछ की घड़ियाँ निश्चय ही जय प्रदान करती है। विष्ठि के पुच्छ में कार्य करने से अवश्य ही जय प्राप्त होती है। उसमें असाध्य कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं इसके लिये लल्ल कहते हैं—

शुभा-ऽशुभानि कार्याणि, यान्यसाध्यानि भूतले ।
नाडीत्रयमिते पुच्छे, भद्रायास्तानि साधयेत् ॥ १ ॥

कोई भी शुभ या अशुभ कार्य, असाध्य कार्य विष्टि के पुच्छ की तीन घड़ियों में करने से सिद्ध होता।

भूपालवल्लभ कहते हैं—

कन्या-तुला-मकर-धन्विषु नागलोके,
मेषा-लि-वणिक-वृषेषु सुरालये स्यात् ।
पाठीन-सिंह-घट-कर्करकेषु मर्त्ये,
चन्द्रे वदन्ति मुनयस्त्रिविधां हि विष्टिम् ॥ १ ॥

कन्या, तुला, मकर तथा धन का चन्द्र हो तो विष्टि नागलोक में होती है, मेष, वृश्चिक, मिथुन और वृषभ का चन्द्र

हो तो विष्टि देवलोक में होती है तथा मीन, सिंह, कुम्भ और कर्क का चन्द्र हो तो विष्टि मृत्युलोक में होती है, इस प्रकार तीन प्रकार की विष्टि मुनिजन कहते हैं ।

स्थान के फल के लिये कहा है— बृहज्ज्योतिष सार (योग प्रकरण श्लोक २१)

स्वर्गे भद्रा भवेत्सौख्यं, पाताले च धनागमः ।
मृत्युलोके यदा भद्रा, तदा कार्यं न सिध्यति ।। १ ।।

किसी भी कार्य को करते समय यदि स्वर्ग भद्रा हो तो सौख्य की प्राप्ति, पाताल में हो तो धन की वृद्धि और मृत्युलोक में हो तो कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है ।

करण की अवस्थाएं—

कित्थुग्घ सउणि कोलव,
उड्ढकरण तिन्नि तिन्नि सुत्ताइं ।
तेइल नाग चउप्पय,
पण सेस निविट्ठकरणाइं ।। १७ ।।

किंस्तुघ्न, शकुनि और कौलव ये तीनों उर्ध्वकरण हैं, तैतिल, नाग और चतुष्पद ये तीनों सुप्तकरण हैं तथा शेष अन्य निविष्टकरण हैं । अन्यपि दो करण की सन्धि में हुई संक्रान्ति सुप्तोत्थिता कही जाती है । नारचन्द्र में बव, बालव में निविष्ट, गर, तैतिल तथा विष्टि में सुप्त और शेष अन्य में उर्ध्वसंक्रमण होने का प्रमाण लिखा गया है ।

इस संक्रान्ति की अवस्था से वर्ष का शुभाशुभ ज्ञान होता है । कहा भी है— यदि संक्रान्ति उर्ध्व हो तो सुकाल, स्थित हो तो रोग और सुप्त हो तो दुष्काल होता है, किन्तु सुप्तोत्थिता संक्रान्ति

सर्वथा अशुभ ही है । और भी शीत ऋतु में सुप्त, ग्रीष्म ऋतु में ऊर्ध्व तथा चातुर्मास में स्थित संक्रान्ति शुभ है । नारचन्द्र में भी इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—

रव्यादिषु संक्रान्तिः, ध्वांक्षिर्महोदरी च घोरा च ।
मन्दाकिनी च मन्दा, मिश्रनाम्नी च रात्रिचरी ॥ १ ॥
मन्दा कुरुते वृष्टि, मन्दाकिनी रसक्षयम् ।
ध्वांक्षी च वायते वातं, घोरा शस्त्रभयंकरी ॥ २ ॥
महोदरा चौरभयं, मिश्रिका च जने शुभम् ।
सर्वेषां कर्षकाणां च, राक्षसी विफलप्रदा ॥ ३ ॥

रवि आदि सात वारों में आने वाली संक्रान्ति के अनुक्रम से नाम इस प्रकार हैं— ध्वांक्षी, महोदरी, घोरा, मंदाकिनी, मंदा, मिश्रा तथा राक्षसी हैं । उसमें मंदा वृष्टिकारक है, मंदाकिनी रस को नष्ट करती है, ध्वांक्षी पवन को बहाने वाली तथा घोरा युद्ध को कराने वाली है । महोदरा चोरों को विशेष भय कराने वाली मिश्रा लोगों में शुभकारक तथा राक्षसी कृषकों में निष्फलता प्रदान करने वाली है ।

घोराऽर्कवारे क्रूरर्क्षे, ध्वांक्षेन्दौ क्षिप्रतारकः ।
महोदरी चरे भौमे, मैत्रे मन्दाकिनी बुधे ॥ ४ ॥
मन्दा गुरौ ध्रुवे धिष्ण्ये, मिश्रा मिश्रोडुभिर्भृगौ ।
राक्षसी दारुणे मन्दे, संक्रान्तिः सवितुर्भवेत् ॥ ५ ॥
आनन्दयन्ति घोराद्याः, शूद्रान् वैश्यांश्च तस्करान् ।
नृपान् विप्रान् पशून म्लेच्छान्, एताः संक्रान्तयः क्रमात् ॥ ६ ॥

रवि को क्रूर नक्षत्र में घोरा, सोम को क्षिप्र नक्षत्र में ध्वांक्षा, भौम को चर नक्षत्र में महोदरी, बुध को मैत्र नक्षत्र में

मंदाकिनी, गुरु को ध्रुव नक्षत्र में मंदा, शुक्र को मिश्र नक्षत्र में मिश्रा और शनि को दारुण नक्षत्र में राक्षसी नाम की संक्रान्ति होती है । घोरादि संक्रांतियाँ अनुक्रम से शूद्र, वैश्य, तस्कर, नृप, विप्र, पशु और म्लेच्छों को आनन्दित करती है । मनुष्यों के शुभाशुभ संक्रान्ति के लिए भी कहा गया है— संक्रांति के नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक गिन कर तीन-तीन नक्षत्रों का फल देखना चाहिये इस प्रकार नवत्रिक का फल अनुक्रम से १ पंथा, २ भोग, ३ भोग, ४ व्यथा, ५ वस्त्र प्राप्ति, ६ वस्त्र, ७ हानि, ८ धनाप्ति और ९ धनाप्ति है । इष्ट जन्म नक्षत्र का अङ्क जिस त्रिक में आये उस त्रिक का फल ही इष्ट जन्म नक्षत्र का फल समझना चाहिये ।

नक्षत्र द्वार के विषय में आगे लिखते हैं—

ति ति छ पण ति एग चऊ,
ति छ पण दु दु पणिग एग चउ चउरो ।
ति इगार चउ चउ तिगं,
ति चउ सयं दु दुग बत्तीसं ।। १८ ।।
इअ रिक्खाणं कमसो,
परिअरताराभिई मुणेयव्वा ।
तारासमसंखागा,
तिहि वि रिक्खेसु वज्जिज्जा ।। १९ ।।

तीन, तीन, छः, पाँच, तीन, एक, चार, तीन, छः, पाँच, दो, दो, पाँच, एक, एक, चार, चार, तीन, ग्यारह, चार, चार, तीन, तीन, चार, सौ, दो, दो और बत्तीस इस प्रकार से अनुक्रम से नक्षत्रों के ताराओं की संख्या जाननी चाहिये । यह ताराओं के समान संख्या वाली तिथि उस-उस नक्षत्र में वर्ज्य है । नक्षत्र अट्ठाइस हैं और उनका विवरण इस प्रकार से है—

अश्विनी भरणी चैव, कृत्तिका रोहिणी मृगः ।
आर्द्रा पुनर्वसु पुष्य-स्ततोऽश्लेषा ततो मघा ।। १ ।।
पूर्वाफाल्गुनी तस्माच्चै-वोत्तराफाल्गुनी करः ।
चित्रा स्वातिर्विशाखाऽनु-राधा ज्येष्ठा मूलं तथा ।। २ ।।
पूर्वाषाढोत्तराषाढा-ऽभिच्छ्रवणं धनिष्ठिका ।
शतं पूर्वोत्तराभाद्रो, रेवती भगणः स्मृतः ।। ३ ।।

अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती । इस प्रकार अट्ठाइस नक्षत्र हैं । ये नक्षत्र पूर्व दिशा में निरन्तर उदित होकर पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं । उनमें अभी कौन सा नक्षत्र है ? इसका ज्ञान करने के लिये उसकी आकृति तथा ताराओं का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है । जैसे (१) अश्विनी— नक्षत्र पूर्व नक्षत्र के उदय के पश्चात् ६६ पल बाद करते उत्तर में उदित होता है । उसकी आकृति अश्व के स्कन्ध की तरह तथा तारा तीन है । (२) भरणी— अश्विनी के उदय के पश्चात् १२० पल बाद करते उत्तर भाग में उदित होता है । उसकी आकृति त्रिकोण तथा तीन तारे । (३) कृत्तिका— १०८ पल पश्चात् उत्तर में उदित होता है उसकी आकृति खुरपी जैसी और तीन तारे । (४) रोहिणी— ११५ पल बादमें दक्षिण में उदित तथा आकृति शकट की तरह और तारे पाँच । (५) मृगशिर— १२० पल मध्यचार से दक्षिण में उदित । आकृति मृग के मस्तक की तरह और तारे तीन । (६) आर्द्रा— पल १३४ पश्चात् दक्षिण में, आकृति मणि की तरह और तारा एक । (७) पुनर्वसु— १४८ पल बाद उत्तर में, आकृति तुला और तारा चार । (८) पुष्य— १५१ पल बाद मध्यमार्ग में

उदय, आकृति बाण की तरह और तारे तीन। (९) अश्लेषा— १५३ पल बाद दक्षिण में उदय, आकृति पताका (चक्र) की तरह और तारे छः (कहीं इसकी आकृति सर्पिणी की तरह भी वर्णित है) (१०) मघा— १५२ पल बाद मध्य में उदय आकृति प्राकार की तरह और तारे पाँच। इसकी आकृति किल्ल, दंतुर की वक्र भी दृष्टिगत होती है। (११-१२) पूर्वाफाल्गुनी— १५३ पल बाद तथा उत्तराफाल्गुनी १४८ पल बाद उत्तर में उदय, आकृति पल्यंक तथा तारे दो-दो। (१३) हस्त— १४७ पल बाद उत्तर में आकृति हाथ के पंजे की तरह और तारे पांच। (१४) चित्रा— १४६ पल बाद दक्षिण में उदय, आकृति अखंडित मोती की तरह और तारा एक। (१५) स्वाति— १४७ पल पश्चात् उत्तर में उदय आकृति परवाले की तरह और तारा एक। (१६) विशाखा— १४८ पल बाद दक्षिण में उदय आकृति अश्व के दामण की तरह और तारा चार। पुनः समीप का एक तारा ग्रहण करते आकृति तोरण की तरह। (१७) अनुराधा— विशाखा के उदय के बाद १५३ पल पश्चात् दक्षिण में उदय आकृति मोती की माला या मूसल की तरह तारा चार-तीन। (१८) ज्येष्ठा— १५२ पल बाद दक्षिण में उदय, आकृति हस्तिदंत की तरह और तारे तीन। (१९) मूल— १५३ पल पश्चात् दक्षिण में उदय, आकृति बिच्छू की पूँछ की तरह और तारे ग्यारह। (२०) पूर्वाषाढा— १५१ पल बाद दक्षिण में उदय आकृति हाथी के पाँव की तरह और तारे चार। (२१) उत्तराषाढा— १४८ पल पश्चात् दक्षिण में, आकृति सिंह निषिदन (बैठक) व तारे चार। (२२) अभिजित्— का उदय २४८ पलों पर होता है और यह पूर्वाषाढा से ही समझा जाता है। उत्तर में उदय, आकृति सिंघाड़े को तरह व तारे तीन। (२३) श्रवण— उत्तराषाढा के उदय के बाद १३४ पल बाद उत्तर में उदित, आकृति कावड़ की तरह व तारे तीन। (२४) धनिष्ठा— १२० पल निकलते उत्तर में उदय, आकृति सूप के समान और तारे चार।

धनिष्ठा में समीप का तारा लेने पर आकृति पक्षी के पिंजरे की तरह । (२५) शतभिषा— ११५ पल बाद मध्यचार में उदय, आकृति बिछाये हुए फूलों की तरह तथा तारे सौ । (२६-२७) पूर्वाभाद्रपद— १०८ पल तथा उत्तराभाद्रपद १०२ पल बाद उत्तर में उदय, दोनों की सम्मिलित आकृति चार खंडो वापि की तरह और तारे दो-दो । (२८) रेवती— उत्तराभाद्रपद के उदय के पश्चात् ९६ पल में मध्य में उदित होता है, आकृति नाव या मुरज या बिछे हुए पलङ्ग की तरह और तारे बत्तीस होते हैं ।

ये नक्षत्र निरन्तर उदय होकर अस्त होते हैं और उसमें एक दूसरे का उदयान्तर उपरोक्त है । किन्तु उसमें हरेक ग्रह स्वयं की धीमी या शीघ्र चाल के कारण अल्पाधिक समय निकालते हैं । इस प्रकार से चन्द्र के भोग में आया हुआ नक्षत्र दिन नक्षत्र कहा जाता है । यथा—

युज्यन्ते षड् द्वादश, नव चेति निशाकरेण धिष्ण्यानि ।
प्राग्-मध्य-पश्चिमार्धैः, पौष्णेषाऽऽखण्डलादीनि ॥१॥

पौष अर्थात् रेवती से लगाकर छः नक्षत्र पूर्वयोगी होते हैं जो चन्द्र के आगे चलने वाले हैं । आर्द्रा से लगाकर बारह नक्षत्र चन्द्र के साथ रहने वाले हैं अतः मध्यभाग योगी है और आखंडल अर्थात् ज्येष्ठादि नौ नक्षत्र चन्द्र के पीछे चलने वाले होने से पश्चिमार्ध योगी है ।

इनके ऊपर परस्पर संबन्धों का ज्ञान होता है । जैसे पूर्वयोगी में विवाह या सेवा, मित्रता की जाती है तो मुख्य सेठ, वर आदि के प्रति गौण नौकर, स्त्री आदि का प्रेम बहुत होता है। पश्चिमार्घ योगी में विवाह, सेवा आदि कार्य किया जाय तो गौण के प्रति मुख्य अधिक चाहने वाला होता है । मध्ययोगी में विवाहादि कार्य किये जाय तो परस्पर गाढ़ प्रीति होती है ।

भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा और शतभिषा ये पन्द्रह मुहूर्त कहे जाते हैं। रोहिणी विशाखा पुनर्वसु और तीन उत्तरा ये नक्षत्र पैंतालिसे मुहूर्त वाले कहे गये हैं। अभिजित् के अतिरिक्त शेष सारे नक्षत्र पन्द्रह तीसे मुहूर्त कहे जाते हैं। अभिजित् ६ २७/६७ मुहूर्त वाला नक्षत्र है किन्तु उसका समावेश पास वाले नक्षत्र में हो जाता है। यह आगे उल्लेख किया जायगा।

रत्नमाला में कहा गया है— शुक्ला द्वितीया के दिन चंद्र देखना चाहिये। यदि पैंतालिसा मुहूर्त वाला नक्षत्र हो तो धान्य सस्ता। तीसा मुहूर्त वाला नक्षत्र हो तो अनाज भाव बराबर अर्थात् न सस्ते न मँहगे सम तथा पन्द्रहा मुहूर्त वाला नक्षत्र हो तो अनाज मँहगा होता है। इस प्रकार प्रत्येक महिने के भाव निकल सकते हैं।

अट्ठाइस नक्षत्रों के स्वामि अश्विनी कुमारादि अलग-अलग स्वामि है जिनकी प्रतिष्ठा में वे नक्षत्र शुभ गिने जाते हैं, इस प्रकार तिथि करणादि भी अपने-अपने स्वामी प्रतिष्ठा में अति आवश्यकता वाले गिने गये हैं। विस्तार के लिये पृथक-पृथक ग्रंथों का अवलोकन किया जा सकता है। जैसे कि जिनेश्वरदेव समुच्चयत्व से हरेक नक्षत्र के स्वामी है। अतः विशेष उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

नक्षत्र की संज्ञा तथा फल—

पुनर्वसु, स्वाति श्रवण धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्र चर तथा चल कहे जाते हैं। अश्विनी पुष्य हस्त और अभिजित् नक्षत्र लघु और क्षिप्र। मृगशिरा चित्रा अनुराधा और रेवती नक्षत्र मृदु तथा मैत्र है। तीन उत्तरा तथा रोहिणी ध्रुव तथा स्थिर है। आर्द्रा अश्लेषा ज्येष्ठा और मूल दारुण तथा तीक्ष्ण हैं। तीन पूर्वा, भरणी तथा मघा क्रूर एवं उग्र हैं कृतिका और विशाखा मिश्र तथा

साधारण है । इन नक्षत्रों का जैसा नाम है वैसा ही कार्य। इन नक्षत्रों में करने से कार्य सिद्धि होती है । किन्तु इतना विशेष है कि तीक्ष्ण और उग्र नक्षत्र के कार्य मिश्र में भी किये जा सकते हैं । उसी प्रकार उग्र के कार्य दारुण में भी किये जा सकते हैं। परन्तु तीक्ष्ण, उग्र या मिश्र के कार्य मृदु, ध्रुव, क्षिप्र या चर नक्षत्रों में नहीं होते हैं और भी कृतिका, तीन पूर्वा, आर्द्रा विशाखा, भरणी अश्लेषा और शततारा शांत कार्य में प्रायः करके त्याज्य है । यथा—

कुर्यात् प्रयाणं लघुभिश्चरैश्च, मृदुध्रुवैः शान्तिकमाजिमुग्नैः ।
व्याधि प्रतिकारमुशन्ति तीक्ष्णैः मिश्रैश्च मिश्रं विधिमामनन्ति ।१।

लघु और चर में प्रयाण, किराणा, वाहनादि कार्य, मृदु और ध्रुव में शान्ति, घर, अभिषेक, गीत मंगलादि कार्य । उग्र में युद्ध, ठगाई, घात विष, उच्छेदन, अग्नि आदि । तीक्ष्ण में व्याधि का उपाय, मंत्र, तन्त्र, भेद आदि कार्य । मिश्र में संबन्ध, धातु, अग्निकर्म कार्य करना चाहिये । तीक्ष्ण नक्षत्र में चिकित्सा और मृदु में ग्रहण धारण करना चाहिये । ऋण लेना तथा देना क्षिप्र में श्रेष्ठ है ।

लहू चरे सुहारंभो, उग्ग खित्ते तवं चरे ।
धुवे पुरपवेसाइ, मीसे संधिकियं करे ।। १ ।।

लघु और चर नक्षत्र में शुभ कार्य का प्रारम्भ करना, उग्र में तप, ध्रुव में नगर प्रवेश तथा मिश्र में संधि का कार्य करना चाहिये ।

कुल्यभान्यश्विनी पुष्यो, मघा मूलोत्तरात्रयम् ।
द्विदैवतं मृगश्चित्रा, कृतिका वासवानि च ॥ १ ॥

उप.ल्यानि भरणी, ब्राह्मं पूर्वात्रयं करः ।
ऐन्द्रमादित्यमश्लेषा, वायव्यं पौष्णवैष्णवे ।। २ ।।
कुल्योपकुल्यभान्यार्द्रा-ऽभिजिन्मैत्राणि वारुणम् ।
कुल्यादीनि फलवन्ति, स्थाने स्थानान्तरे द्वये ।।३।। [स्व.]

अश्विनी, पुष्य, मघा, मूल, तीन उत्तरा, विशाखा, मृगशिरा चित्रा, कृतिका और धनिष्ठा ये बारह नक्षत्र कुल्य हैं । भरिणी, रोहिणी, तीन पूर्वा, हस्त ज्येष्ठा पुनर्वसु अश्लेषा स्वाति रेवती और श्रवण ये बारह उपकुल्य हैं । आर्द्रा, अभिजित्, अनुराधा और शत-तारा कुल्योपकुल्य है । उसमें कुल्य नक्षत्र स्थान में फलवाले हैं । उपकुल्य स्थानान्तर में फलवाले हैं और कुल्योपकुल्य नक्षत्र दोनों क्षेत्रों में साधारणतया फलवाले हैं । अर्थात् कुल्य में जन्मा दाता, उपकुल्य में प्रवासी और सेवक, कुल्योपकुल्य में दातार किन्तु सेवा करने वाला होता है । कुल्य नक्षत्र में युद्ध हो तो राजा को चिर विजय की प्राप्ति अर्थात् जो चढाई नहीं करता उसकी विजय और उपकुल्य में चढाई करने वाले की विजय तथा कुल्योपकुल्य में संधि होती है । यह श्री उदयप्रभसूरि का मत है ।

पुनः तीन पूर्वा, भरणी, कृतिका अश्लेषा मघा विशाखा एवं मूल ये नौ नक्षत्र अधोमुख वाले । तीन उत्तरा, रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, श्रवण (त्रय) धनिष्ठा और शतभिषा ये नौ उर्ध्व मुख हैं, शेष नौ तियक् मुख हैं । अधोमुख वाले नक्षत्रों में खातकर्म आदि जिसमें अधोमुख करके कार्य किये जायँ ता सिद्ध होते हैं । उर्ध्व-मुख में ऊँचा मुख करके किये जाने वाले कार्य यथा तोरण, किला अभिशेषादि सिद्ध होते हैं तथा तियक्मुख में खेती, व्यापार, संधि आदि सन्मुख दृष्टि रखकर कार्य करें तो शुभ है ।

इन नक्षत्रों की योनियों के बारे में विवरण इस प्रकार से है— अनुक्रम से अश्व हाथी अज सर्प श्वान बिल्ली अज बिलाव

मूषक मूषक वृषभ महिष व्याघ्र महिष व्याघ्र मृग मृग श्वान बानर नेवला (नोलिया) नेवला सिंह अश्व सिंह वृषभ तथा हाथी है। इन पशुओं का स्वभावगत जिनके साथ वैर है उन नक्षत्रों का भी स्वभावगत वैर है। विवाहादि में वैर नक्षत्र वाले सम्बन्ध वर्जित हैं। गण के विषय में इस प्रकार उल्लेख किया गया है— नक्षत्रों के अनुक्रम से— देव मनुष्य राक्षस मनुष्य देव मनुष्य देव देव राक्षस राक्षस मनुष्य मनुष्य देव राक्षस देव राक्षस देव राक्षस राक्षस मनुष्य मनुष्य विद्याधर देव राक्षस राक्षस मनुष्य मनुष्य और देव ये गण हैं। विवाहादि में इनका सम्बन्ध स्वयं का स्वयं से श्रेष्ठ, अन्य में मध्यम, राक्षस में नेष्ठ है।

अश्विनी आदि हरेक नक्षत्रों के निम्नानुसार चार-चार अक्षर—

१ अश्विनी— चु चे चो ला। २ भरणी— लि लू ले लो। ३ कृतिका— अ इ उ ए। ४ रोहिणी— ओ व वि वु। ५ मृगशिरा— वे वो क कि। ६ आर्द्रा— कु घ ङ छ। ७ पुनर्वसु— के को ह ही। ८ पुष्य— हु हे हो डा। ९ अश्लेषा— डि डु डे डो। १० मघा— म मि मु मे। ११ पू० फा०— मो टा टि टु। १२ उ० फा० टे टो प पो। १३ हस्त— पु ष ण ठ। १४ चित्रा— पे पो र रि। १५ स्वाति— रु रे रो त। १६ विशाखा— ति तू ते तो। १७ अनुराधा— न नि नु ने। १८ ज्येष्ठा— नो य यी यु। १९ मूल— ये यो भ भि। २० पू० षा०— भू ध फ ढ। २१ उ० षा०— भे भो ज जी। २२ अभिजित्— जु जे जो खा। २३ श्रवण— खि खु खे खो। २४ धनिष्ठा— ग गि गु गे। २५ शततारा— गो स सी सु। २६ पूर्वा भाद्रपदा— से सो द दि। २७ उत्तरा भाद्रपदा— दु श झ थ। २८ रेवती— दे दो च चि।

किसी बालक का जिस पाये में जन्म हुआ हो उस पाये का अक्षर प्रथम रखकर उसका नामकरण किया जाता है। ह्रस्व के ऊपर ह्रस्व और दीर्घ दोनों को लिया जाता है। अनुस्वार और विसर्ग किसी विकार को नहीं करने वाले हैं तथा 'ङ' और 'ञ' एवं 'ब' और 'व' अक्षर नाम के आदि में समान गिने जाते हैं उसी प्रकार मूल अक्षर कायम रखकर संयुक्ताक्षर वाला नाम भी दिया जा सकता है और स्वर संयुक्ताक्षर के पश्चात् रखा जाता है। जैसे किसी बालक का पूर्वाषाढा के दूसरे पाये में जन्म हुआ हो 'ध' अक्षर से धारसी 'धु' से ध्रुवादि नाम आते हैं। इस प्रकार जन्म नक्षत्र ऊपर नाम आते हैं। जन्म नक्षत्र के नाम होने पर कुछ नाम ऊपर ऊपर ही दे देते हैं जिनको नाम नक्षत्र कहते हैं। विवाहादि में दोनों को देखा जाता है तथा यथाप्रसंग एवं आवश्यकतानुसार इसका सदुपयोग कर सकते हैं। इसके लिये कहा भी है—

ग्रामे नृपतिसेवायां, संग्रामव्यवहारयोः।
चतुर्षु नामभं, योज्यं शेषं जन्मनि योजयेत् ॥ १ ॥

ग्राम, नृपतिसेवा, युद्ध तथा व्यवहार में नाम नक्षत्र तथा शेष कार्यों में जन्म नक्षत्र ग्रहण करना चाहिये।

मुहूर्त मार्तण्ड में भी कहा है—

देशे ग्रामे गृहज्वरव्यवहृतिद्यूतेषु दाने मनो,
सेवाकाङ्किणीवर्गसंगरपुनर्भूमेलके नामभम्।
जन्मर्क्षं परतो वधू पुरुषयोर्जन्मर्क्षमेकस्य चेद्,
ज्ञातं शुद्धमितो विलोक्य च तयोर्नामर्क्षयोर्मेलकः ॥ १ ॥

देश, ग्राम तथा गृह प्रवेश में, रोग व्यवहार में, द्यूत में, दान में, यंत्र प्राप्ति में, सेवा में, कांकिणी प्राप्त करने में, अष्टवर्ग

का संयोग मिलाते समय, युद्ध में, पुनर्भू में तथा मेल-मिलाप में नाम नक्षत्र और नाम राशि का चन्द्र ग्रहण करना चाहिये। अन्य कार्य में जन्म नक्षत्र तथा जन्म राशि का चन्द्र ग्रहण करना चाहिये किन्तु यदि वधू और वर के मिलाप में यदि मात्र एक का ही जन्म नक्षत्र मिलता हो तो विशेष शुद्धि देख कर दोनों के नाम नक्षत्र का मिलाप करना योग्य है।

शार्गधर कहते हैं –

विवाहघटनं चैव, लग्नजं ग्रहजं बलम्।

नामभात् चिन्तयेत्सर्वं, जन्म न ज्ञायते यदा ॥ १ ॥

यदि जन्म नक्षत्र नहीं मिलता हो विवाह कार्य में लग्न बल और ग्रह बल को नाम नक्षत्र से देख लेना चाहिये। हरेक मनुष्य के जन्म नक्षत्रादि छः प्रकार के नक्षत्र हैं। जिसमें पहला जन्म नक्षत्र, दशवां कर्म, सोलहवाँ संघात, अठारहवाँ समुदय, तेइसवाँ विनाश तथा पच्चीसवाँ मानस नक्षत्र कहा जाता है। इनमें जन्म नक्षत्र सारे शुभ कार्यों में वर्जित है।

नव प्रकार के नक्षत्र दोषों के बारे में यह प्रमाण है—

केत्वर्कार्किभिराक्रान्तं, भौमवक्रभिदाहतम्।

उल्का ग्रहण दग्धं च, नवधाऽपि न भं शुभम् ॥ १ ॥

केतू, रवि और शनि से आक्रांत, मंगल वक्रीग्रह और अन्य नक्षत्र से आहत उल्का नक्षत्र ग्रहण नक्षत्र और दग्ध नक्षत्र इन नौ प्रकार के दोषों से दूषित नक्षत्र शुभ नहीं है। विशेष जानकारी के लिये अन्य ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिये। यहाँ विस्तार के कारण हम अधिक स्पष्ट नहीं कर रहे हैं।

श्री उदयप्रभसूरि के मत से पुनर्वसु नक्षत्र के तीन तारे हैं अर्थात् उनके मत में तृतीया के दिन पुनर्वसु नक्षत्र यदि हो तो तृतीया नक्षत्र दग्ध होता है, किन्तु चतुर्थी नहीं होती है । अन्य ग्रन्थों में कितने ही तारों की विशेष संख्या भी मिलती है ।

लल्ल के मत में—

तारासमैरहोभिर्मासैरब्देश्च धिष्ण्यफलपाकः ।

तारा के समान दिवस, मास और वर्षों से नक्षत्र का फल परिपक्व होता है ।

नक्षत्र चक्र ।

नं०	नाम	उदय पल	दिशा	तारा	आकृति	चंद्रयोग	मुहूर्त	दिवस	स्वामी देवता	संज्ञा स्वभाव	कुल्यादि
१	अश्विनी	९६	उत्तर	३	अश्व मुख	पूर्व योगी	३०	१५	अ० कु०	लघु	कुल्य
२	भरणी	१०२	,,	३	त्रिकोण		१५	१५	यम	क्रूर	उप०
३	कृतिका	१०८	,,	३	क्षुरप्र		३०	१५	अग्नि	मिश्र	कुल्य
४	रोहिणी	११५	दक्षिण	५	शकट		४५	१५	ब्रह्मा	ध्रुव	उप०
५	मृगशिरा	१२०	,,	३	मृग मस्तक		३०	१५	चन्द्र	मित्र	कुल्य
६	आर्द्रा	१३४	,,	१	मणि	मध्यम योगी	१५	८	शिव	दारुण	मिश्र
७	पुनर्वसु	१४८	उत्तर	४	तुला		४५	७	अदिति	चर	उप०
८	पुष्य	१५१	मध्य	३	बाण		३०	१५	गुरु	लघु	कुल्य
९	अश्लेषा	१५३	दक्षिण	६	पताका		१५	१५	सर्प	दारुण	उप०
१०	मघा	१५२	मध्य	५	दुर्ग		३०	१५	पितर	क्रूर	कुल्य

११	पू० फा०	१५३	उत्तर	२	लींटो		३०	१५	भग	क्रूर	उप०
१२	उ० फा०	१४८	,,	२	,,		४५	१५	अर्यमा	ध्रुव	कुल्य
१३	हस्त	१४७	,,	५	पंजा		३०	१५	रवि	लघु	उप०
१४	चित्रा	१४६	दक्षिण	१	मोती		३०	१५	त्वष्ट्रा	मैत्र	कुल्य
१५	स्वाति	१४७	उत्तर	१	परवाला		१५	१५	वायु	चर	उप०
१६	विशाखा	१४८	दक्षिण	४	डामण		४५	१५	इन्द्राग्नि	मिश्र	कुल्य
१७	अनुराधा	१५३	,,	४	माला		३०	८	मित्र	मैत्र	मिश्र
१८	ज्येष्ठा	१५२	,,	३	दंत	पश्चिम योगी	१५	७	इन्द्र	दारुण	उप०
१९	मूल	१५३	,,	११	बिच्छू का डंक		३०	१५	राक्षस	दारुण	कुल्य
२०	पू० षा०	१५१	,,	४	हस्ति पद		३०	१५	जल	ध्रुव	उप०
२१	उ० षा०	१४८	,,	४	शय्या		४५	१५	विश्वदे	ध्रुव	कुल्य
२२	अभिजित्		उत्तर	३	सिंघाड़ा		६३७	७	ब्रह्मा	लघु	मिश्र

२३	श्रवण	१३४	,,	३	कावड़		३०	८	विष्णु	चर	उप०
२४	धनिष्ठा	१२०	,,	४	सूप		३०	१५	वसु	चर	कुल्य
२५	शतभिषा	११५	मध्य	१००	यूथ		१५	७	वरुण	चर	मिश्र
२६	पू० भा०	१०८	उत्तर	२	लोंटो		३०	८	अजैक	क्रूर	उप०
२७	उ० भा०	१०२	,,	२	,,		४५	१५	अहि	ध्रुव	कुल्य
२८	रेवती	९६	मध्य	३२	नाव	पूर्व	३०	१५	पुषा	मैत्र	मिश्र

नक्षत्र चक्र ।

नं०	नाम	मुख	ने	योनि	वैश्योनि	गण	नाड़ी	अक्षर	राशि	जाति	लिंग
१	अश्विनी	ति	मन्द	अश्व	महिष	देव	आ	चु चे चो ला	मेष	वणिक्	पुरुष
२	भरणी	अ	विप	हाथी	सिंह	मनु	म	लि लू ले लो	मेष	चंडाल	पुरुष
३	कृतिका	अ	सु	अज	वानर	रा०	अं	अ इ उ ए	मे० वृ०	ब्राह्मण	पुरुष
४	रोहिणी	अ	अन्ध	सर्प	नेवला	मनु	अं	ओ व वि वु	वृष	कृषक	पु०
५	मृगशीर्ष	ति	मंद	„	„	देव	म	वे वो क कि	वृ०मी०	सेवक	पु०
६	आर्द्रा	उ	चिम	श्वान	मृग	म०	आ	कु घ ङ छ	मिथुन	उग्र	स्त्री
७	पुनर्वसु	ति	सु	बिलाव	मूषक	देव	आ	के को ह ही	मि०क०	वणिक्	„
८	पुष्य	उ	अन्ध	अज	वानर	„	म	हु हे हो डा	कर्क	राजा	„
९	अश्लेषा	अ	मंद	बिलाव	मूषक	रा०	अं	डि डु डे डो	„	चंडाल	„
१०	मघा	अ	चिम	मूषक	बिलाव	रा०	अं	म मि मु मे	सिंह	कृषक	„

११	पू० फा०	अ	सु	मूषक	बिलाव	मनु	अं	मो टा टि टु	सिंह	ब्राह्मण	स्त्री
१२	उ० फा०	उ	अन्ध	वृषभ	व्याघ्र	मनु	आ	टे टो प पी	सिं०क०	राजा	„
१३	हस्त	ति	मंद	महिष	अश्व	देव	आ	पु ष ण ठ	कन्या	वणिक	„
१४	चित्रा	ति	चिप	व्याघ्र	वृषभ	रा०	म	पे पो र रि	क०तु०	सेवक	„
१५	स्वाति	ति	सु	महिष	अश्व	देव	अं	रु रे रो त	तुला	उग्र	„
१६	विशाखा	अ	अन्ध	व्याघ्र	वृषभ	रा०	अं	ति तू ते तो	तु०वृ०	चंडाल	नपुं
१७	अनुराधा	ति	मंद	मृग	श्वान	देव	म	न नि नु ने	वृ०	कृषक	„
१८	ज्येष्ठा	ति	चिम	मृग	श्वान	रा०	आ	नो य यी यु	वृश्चि०	सेवक	„
१९	मूल	अ	सु	श्वान	मृग	रा०	आ	ये यो भ भि	धन	उग्र	पुरुष
२०	पू० पा०	अ	अन्ध	वानर	अज	मनु	म	भू ध फ ढ	धन	ब्राह्मण	„
२१	उ० षा०	उ	मंद	नेवला	सर्प	मनु	अं	भे भो ज जी	ध०म०	राजा	„
२२	अभिजित्	उ	चिम	नेवला	सर्प	विद्याधर	म	जु जे जो खा	मकर	वणिक	„

२३	श्रवण	उ	मु	वानर	अज	देव	अं	ग्वि खु खे खो	मकर	चंडाल	पुरुष
२४	धनिष्ठा	उ	अंध	सिंह	हाथी	रा०	म	ग गि गु गे	म०कु०	सेवक	"
२५	शततारा	उ	मंद	अश्व	महिष	रा०	आ	गो स सी सु	कुम्भ	उग्र	"
२६	पू० भा०	अ	चित्र	सिंह	हाथी	मनु	आ	से सो द दि	कु०मी०	ब्राह्मण	"
२७	उ० भा०	उ	सु	वृषभ	व्याघ्र	मनु	म	दु श झ थ	मीन	राजा	"
२८	रेवती	ति	अंध	हाथी	सिंह	देव	अं	दे दो च चि	मीन	कृषक	"

नक्षत्र चक्र ।

नं०	नाम	देव दिशा	घातक तिथि	चन्द्र मार्ग दिशा	पूर्णिमा	शुभाशुभ	क्षेत्र
१	अश्विनी	ईशान	जया	उत्तर	आश्विन	शुभ	सम
२	भरणी	,,	जया	,,		नाश	अर्ध
३	कृतिका	मध्य	नंदा	मध्य	कार्तिक	नाश	सम
४	रोहिणी	,,	पूर्णा	मध्य		सिद्धि	द्वय०
५	मृगशिरा	,,	जया	दक्षिण	मार्गशीर्ष	शुभ	सम
६	आर्द्रा	पूर्व	नंदा	दक्षिण		शुभ	अर्ध
७	पुनर्वसु	,,	रिक्ता	मध्य		मध्य	द्वय०
८	पुष्य	,,	जया	दक्षिण	पोष	शुभ	सम
९	अश्लेषा	अग्नि	नंदा	दक्षिण		शोक	अर्ध
१०	मघा	,,	रिक्ता	मध्य	माघ	नाश	सम

११	पू०फा०	अग्नि	भद्रा	उत्तर		मृत्यु	सम
१२	उ०फा०	दक्षिण	,,	,,	फाल्गुन	विद्या	द्वय
१३	हस्त	,,	पूर्णा	दक्षिण		लक्ष्मी	सम
१४	चित्रा	,,	नंदा	मध्य	चैत्र	शुभ	सम
१५	स्वाति	नेऋत्य	,,	उत्तर		अशुभ	अर्ध
१६	विशाखा	,,	रिक्ता	मध्य	वैशाख	,,	द्वय
१७	अनुराधा	,,	,,	,,		सिद्धि	सम
१८	ज्येष्ठा	पश्चिम	जया	,,	ज्येष्ठ	क्षय	अर्ध
१९	मूल	,,	नंदा	दक्षिण		हानि	सम
२०	पू०षा०	,,	रिक्ता	,,	आषाढ़	,,	सम
२१	उ०षा०	वायव्य	,,	,,		वृद्धि	द्वय
२२	अभिजित्	,,		उत्तर		,,	सम

२३	श्रवण	वायव्य	जया	उत्तर	श्रवण	सुख	सम
२४	धनिष्ठा	,,	पूर्णा	,,		शुभ	सम
२५	शतभिषा	उत्तर	नंदा	,,		,,	अर्ध
२६	पू० भा०	,,	भद्रा	,,		मृत्यु	सम
२७	उ० भा०	,,	,,	,,	भाद्रपद	लक्ष्मी	द्वय
२८	रेवती	ईशान	नंदा	,,		काम	सम

इसके अतिरिक्त अन्य शुद्धि भी नक्षत्रों की इस प्रकार देखनी चाहिये। शुभ कार्य में तीक्ष्ण उग्र और मिश्र नक्षत्रों को त्यागना चाहिये। यथा—

प्रायः शान्ते कार्ये न योजयेत् कृतिका स्त्रिपूर्वाश्च।
वारुणरौद्रे च तथा द्विदैवतं याम्यमश्लेषाम्॥

प्रायः शान्त कार्य में कृतिका पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढा पूर्वा भाद्रपद शतभिषा आर्द्रा विशाखा भरणी और अश्लेषा नक्षत्रों का त्याग करना चाहिये। उसी प्रकार प्रत्येक नक्षत्र की चार विष घटिका भी वर्जित है। यथा—

धिष्ण्यस्यादावन्ते, त्यजेच्चतस्त्रो घटीः कर ग्रहणे।
यदि शुद्धे द्वे धिष्ण्ये, विवाह योग्ये तदा श्रेष्ठे॥ १॥

विवाह में प्रत्येक नक्षत्र की आदि और अन्त की चार-चार घड़ियां त्याज्य है किन्तु समीप समीप आने वाले दोनों नक्षत्र विवाह योग्य शुभ तो उसकी संधि घटिका छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। विवाह वृन्दावन में नक्षत्र संधि दोष सवा घड़ी का कहा गया है। विक्रम प्रत्येक ग्रह के संक्रमण में नक्षत्र का संधिदोष बताता है। श्री हरिभद्राचार्य वर्ज्य नक्षत्रों की नामावली कहते हैं—

सणिमंगलाण पुरओ, धूमियमालिंगियं च तज्जुत्तं।
आलिंगिअस्स पच्छा, जं रिक्खं तं भवे दड्ढं॥ १॥
संझागयं धूमियमालिंगिय दड्ढ विद्ध सोवग्गहं।
लत्तापाएक्कगलहुसिअं इअ दुट्ठ रिक्खाइं॥ २॥

शनि और मंगल के सन्मुख का नक्षत्र धूमित कहा जाता है। शनि और मङ्गल के साथ संयुक्त नक्षत्र आलिंगित, आलिंगित से पीछे रहा हुआ और शनि मंगल से भुक्त नक्षत्र दग्ध कहा जाता है।

संध्याकाल में उदित नक्षत्र १, शनि एवं मङ्गल के द्वारा भोगने वाला, भोगता हुआ या भुक्त धूमित, आलिंगित और दग्ध नक्षत्र २-३-४, वेध ५, उपग्रह ६, लत्ता ७, पात ८ और एकार्गल ९ के दोष वाला नक्षत्र दुष्ट कहा जाता है । और भी कहा है—

संझागयं रविगयं, विड्डरं सग्गहं विलंबं च ।
राहुहयं गहभिन्नं, विवज्जए सत्त नक्खत्ते ।। १ ।।

संध्या ग्रह, रविग्रह, वक्रीग्रह वाला विड्वर, स्वतः क्रूरग्रह वाला सग्रह, रवि के नक्षत्र के पार्श्ववर्ती, विलंबित तथा ग्रह मे भिन्न (भेदित) इन सात प्रकार के नक्षत्रों को छोड़ देना चाहिये ।

जिन नक्षत्र में सूर्य चन्द्र ग्रहण हुआ हो वह नक्षत्र भो त्याज्य है । यह नक्षत्र छः मासोपरान्त शुद्ध होता है । कुछ आचार्यों के मत में—

भुक्तं भोग्यं च न त्याज्यं, सर्वकर्मसु सिद्धिदम् ।
यत्नात् त्याज्यं तु सत्कार्ये नक्षत्रं राहुसंयुतम् ।। १ ।।

क्रूर ग्रह के द्वारा भुक्त या भोग्य या भुक्तशोल नक्षत्र सारे कामों में सिद्धि देने वाला होता है अतः त्याज्य नहीं हैं । किन्तु राहु संयुत नक्षत्र का सत्कार्यों में यत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये । मुहूर्त चिंतामणी में भी कहा गया है—

क्रूराक्रान्तविमुक्तभं ग्रहणभं यत्क्रूरगन्तव्यभं,
त्रेधोत्पातहतं च केतुहतभं सन्ध्योदितं भं तथा ।
तद्वच्च ग्रहभिन्नयुद्धगतभं सर्वानिमान् संत्यजेद्,
उद्वाहे शुभकर्मसु ग्रहकृतान् लग्नस्य दोषानपि ।। १ ।।

क्रूर ग्रह वाला नक्षत्र क्रूर ग्रह द्वारा भुक्त और फिर विभुक्त नक्षत्र, ग्रहण नक्षत्र तथा क्रूर ग्रह के द्वारा भुक्त होने वाला, तीन उत्पात वाला नक्षत्र, केतुहत, संध्योदित नक्षत्र, ग्रह से भिन्न नक्षत्र और ग्रह का युद्ध वाला नक्षत्र (युद्धगत) इन सबको विवाहादि तथा अन्य शुभ कार्यों में ग्रहण नहीं करना चाहिये। उसी प्रकार ग्रह और लग्न के दोषों को भी त्यागना चाहिये। उसी तरह उत्पातहत भी छोड़ना चाहिये और छः मास के लिये त्याज्य है। भुवन दीपिका में राहु नक्षत्र के लिये भी कहा है—

राहवास्यपुच्छस्थ इत्यबलो ग्रहः।

राहु का नक्षत्र मुख नक्षत्र कहा जाता है, उससे पन्द्रहवाँ पुच्छ नक्षत्र कहा जाता है। उसमें रहा ग्रह निर्बल गिना जाता है। मुहूर्त चिंतामणी में कहा है— राहू से भोगवाता नक्षत्र कर्तरी राहु से भोग्य तेरह नक्षत्र मृत, राहु के नक्षत्र से पन्द्रहवाँ नक्षत्र ग्रस्त तथा राहु भुक्त तेरह नक्षत्र जीव नक्षत्र हैं। इनमें मृत, ग्रस्त, कर्तरि और जीव नक्षत्र उत्तरोत्तरता से दुष्ट, अशुभ, मध्यम और शुभ है। (राहु को गति वक्र होती है, स्मरण रहे।)

नक्षत्रों के दोषों का परिहार श्री उदयप्रभसूरि के मत में—

घिष्ण्यं कार्याय पर्याप्तं, चन्द्रभोगाद् ग्रहाहतम्।
शुद्धं षड्भिर्भवेद् मासै–रुपरामपराहतम्॥ १॥

ग्रहाहत नक्षत्र दोषमुक्त होकर चन्द्र के भोग में आने के पश्चात् शुभ कार्य के लिये योग्य होते हैं। ग्रहाहत नक्षत्र छः मासोपरांत शुद्ध होता है।

लल्ल के अनुसार— दूषित नक्षत्र सूर्य के भोग में तपकर चन्द्र के भोग में शांत हो जाते हैं। कुछ आचार्यों का मत है— ग्रहण का नक्षत्र सूर्य के भोग में आने पर शुद्ध हो जाता है।

सप्तर्षियों के मत में एक मास में दो ग्रहण हो तो दूसरा ग्रहण होते प्रथम ग्रहण से दूषित नक्षत्र शुद्ध होता है । और दूसरे ग्रहण का नक्षत्र छः मास के पश्चात् शुद्ध होता है । विवाह वृन्दावन तथा रत्नामाला भाष्य में भी इसी प्रकार की पुष्टि की गई है । श्री उदयप्रभसूरि के मत में पुष्य बल–

कार्यं वितारेन्दुबलेऽपि पुष्ये, दीक्षां विवाहंच बिना विदध्यात्,
पुष्यः परेषां हि बलं हिनस्ति, बलं तु पुष्यस्य न हन्युरन्ये ॥१॥

तारा और चन्द्र का बल नहीं होने पर भी दीक्षा और विवाह के अतिरिक्त सारे कार्य पुष्य नक्षत्र में करने चाहिये । क्योंकि उसके दोषों को कोई हनन नहीं कर सकता, वह स्वयं इतना समर्थ है कि अन्य के बल का हनन करता है ।

अभिजित् का ज्ञान तथा उसकी महत्ता—'

ऊखा अंतिमपायं, सवणपढमघडिअचऊअभोइठिइ ।
लत्तोवग्गहवेहे, एगग्गलपमुहकज्जेसु ॥ २० ॥

उत्तराषाढा का अन्तिम पाया और श्रवण नक्षत्र की प्रथम चार घड़ियाँ, इन घड़ियों तक अभिजित् की स्थिति होती है । लत्ता उपग्रहवेध और एकार्गल आदि में इसकी आवश्यकता पड़ती है । नक्षत्र तो सत्ताइस ही हैं किन्तु बहुत से स्थानों पर अट्ठाइस नक्षत्रों की आवश्यकता पड़ती है । अतः दो नक्षत्रों की संधि में नये नक्षत्र के रूप में अभिजित् की आवश्यकता पड़ती है । आधुनिक गणना में अभिजित् नक्षत्र की उन्नीस घड़ीवाली स्थिति निर्धारित है । अतः उत्तराषाढा की पन्द्रह घड़ी और श्रवण की चार घड़ी में अभिजित् का भोग काल आता है । 'व्यवहार प्रकाश' में कहा गया है— अभिजित् नक्षत्र में किये गये कार्य सफल होते हैं मात्र यदि बालक का जन्म हो गया हो तो उसकी मृत्यु हो जाती है । और भी—

धिष्ण्यानां मौहूर्तिकमुदयात् मितरश्मि योगाच्च

अधिकबलं यथोत्तरमिति ।

नक्षत्र में मुहूर्तबल, उदयबल तथा चन्द्रबल यथोत्तरता से अधिक बलवान हैं ।

शौनक के मत में—

नक्षत्रवत् क्षणानां बलमुक्तं द्विगुणितं स्वनक्षत्रे ।

मुहूर्त का बल नक्षत्र के बल के समान है और स्वयं के उसके नक्षत्र में वह बल द्विगुणित हो जाता है ।

दैवज्ञवल्लभ में भी कहा है—

कृष्णपक्षे निषिद्धेषु, वारधिष्ण्यक्षणादिषु ।

संकीर्णानां प्रशंसन्ति, दारकर्म न संशयः ।। १ ।।

कृष्णपक्ष में निषिद्ध वार, नक्षत्र और मुहूर्तादि में संकर जाति के विवाहादि निःसन्देह प्रशंसनीय है ।

'व्यवहार प्रकाश' में भी यही कहा गया है—

तिथि धिष्ण्यंच पूर्वार्धे, बलवद् दुर्बलं ततः ।

नक्षत्रं बलवद् रात्रौ, दिने बलवती तिथिः ।। १ ।।

दिन या रात्रि के पूर्वार्ध में तिथि और नक्षत्र बलवान होते हैं और तत्-पश्चात् वे निर्बल हो जाते हैं ।

लल्ल कहते हैं—

विष्ट्यामङ्गारके चैव, व्यतिपातेऽथ वैधृते ।

प्रत्यरे जन्म नक्षत्रे, मध्याह्नात् परतः शुभम् ।। १ ।।

विष्टि, अंगारक, व्यतिपात, वैधृत, सप्ततारा और जन्मनक्षत्र का दुष्टबल मध्याह्न पर्यन्त ही होता है।

लल्ल के अनुसार—

स्वार्धे नक्षत्रफलं, तिथ्यर्धे तिथि फलं समादेश्यम् ।

होरायां वारफलं, लग्नफलमंशके स्पष्टम् ॥ १ ॥

नक्षत्र का फल उसके पूर्वार्ध में, तिथि का फल तिथि के पूर्वार्ध में, वार का फल होरा में तथा लग्न का फल नवांश में स्पष्ट है। अन्य भी कहा है—

एग चउ अट्ठ सोलस, बत्तीसा सट्ठी सयगुए फलाइं ।

तिहि रिक्ख वार करण, जोगो तारा ससंकबलम् ॥ १ ॥

तिथि, नक्षत्र, वार, करण, जोग, तारा और चन्द्र का बल अनुक्रम से एक, चार, आठ, सोलह, बत्तीस, साठ और सौ गुणा है। और भी—

दग्धे तिथौ कुवारे च, नाडिकानां चतुष्टयम् ।

दग्ध तिथि और कुवार की चार घड़ियाँ अशुभ है। अर्थात् चार घड़ी इनका बल है पश्चात् निर्बल हो जाती है। मुहूर्त चिन्तामणि आदि ग्रन्थों का मत है कि कुयोग की अपेक्षा सिद्धियोग अधिक बलवान् है। उसी प्रकार भद्रा संवर्तकादि से अमृतसिद्धियोग अधिक सामर्थ्यवान् है। आरम्भसिद्धि में कहा है— सर्व कुयोगों का चौथा भाग अवश्य वर्ज्य है। सर्व योगों में रवियोग, कुमारयोग व राजयोग अत्यन्त बलवान् है। किन्तु दोषों से (चाहे एक भी क्यों न हो) दूषित लग्न दुष्ट है। यथा—

एषां मध्यादेकेनाऽपि हि दोषेण दुष्यते लग्नम् ।

परन्तु—

अयोगास्तिथिवारर्क्ष—जाता येऽमी प्रकीर्तिताः ।

लग्ने ग्रहबलोपेते, प्रभवन्ति न ते क्वचित् ॥ १ ॥

तिथि, वार और नक्षत्र के कुयोग बलोपेत लग्न हो तो नष्ट होता है, अर्थात् एकार्गल, पात, कर्तरी आदि सारे दोष सूर्य, चन्द्र और गुरु के बल से नष्ट होते हैं ।

राशियां और उसके अनुसार नक्षत्र—

कित्ती मिग पुण असेसा,

उ-फ चि विसा उ-ख धणी पू-भा ।

रेवइ अ एग दु ति,

चउ पायंता बार रासि कमा ॥ २१ ॥

कृतिका, मृगशिरा, पुनर्वसु, अश्लेषा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद और रेवती इन बारह नक्षत्रों का अनुक्रम से एक, दो, तीन और चार पायों के अन्त में बारह राशियों का समावेश होता है । अर्थात् सत्ताइस नक्षत्रों का एक भगण होता है और उसके बारहवें भाग का नाम राशि है । तात्पर्य यह है कि सवा दो नक्षत्र की एक राशि हुई । उपरोक्त श्लोकार्थ के अनुसार और स्पष्ट कर रहे हैं—जैसे कृतिका का प्रथम पाया भुक्त होते मेष राशि भी भोगी जाती है, अर्थात् मेष का प्रारम्भ अश्विनी से होता है और भोग्यकाल कृतिका के प्रथम पाये में पूर्ण होता है । पुनः कृतिका के द्वितीय पाद के आरम्भ से वृष राशि की प्रवृत्ति होती है और मृगशिरा के द्वितीय पाद पर पूर्ण होती है । इस रीति से प्रथम की राशि पूर्ण होते ही तत्काल द्वितीय पाये में नई राशि की शुरुआत हो जाती है ।

नक्षत्र के द्वारा निरन्तर इन राशियों का पूर्व में उदय और पश्चिम में अस्त होता है। राशि का मूल नाम लग्न है और लग्न कुण्डली में भी लग्न में ही राशि के ग्रह स्थापित होते है। किन्तु उसकी संज्ञा ग्रह और लग्न के संयोग में राशि के नाम से है।

अब नक्षत्रों के द्वारा 'राशिद्वार' तथा 'लग्नद्वार' का विवरण दिया जा रहा है। मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन ये बारह राशियों के नाम हैं। इसमें सत्ताइस नक्षत्रों के भगण का समावेश होता है। अर्थात् सवा दो नक्षत्र से राशि का उदय होता है। अब कौनसी राशि का उदय है ? इसका निर्णय इष्ट घटी से होता है। शरीर की छाया से इष्ट घटी का मान आ जाता है। 'प्रश्नशतक' में लिखा हुआ है—

नन्दाऽष्टनेत्रे ह्याद्यांघ्रिः सषिच्छाया पदाहृतेः ।

भूनलब्धं तदङ्कार्धं, जाता शेषा घटी दिवः ।। १ ।।

स्वयं की छाया में जितने पद (कदम) हो उनमें प्रथम पद (कदम) छोड़कर शेष संख्या में सात जोड़ देने चाहिये, पश्चात् उनका २८९ में भाग देना चाहिये, भाग में आये अङ्क में एक बाद करना चाहिये और उनका पुनः आधा करना चाहिये, तब जो अङ्क आये उतनी सूर्योदय से घड़ी जाननी चाहिये। मध्य ह्नोपरान्त इस रीति से जो अङ्क आवे तो सूर्यास्त की शेष घड़ी जाननी चाहिये। अन्य रीति भी इस प्रकार है। दक्षिण दिशा के सन्मुख बैठ कर दायें (वाम) हाथ की वेंत (खुला पंजा) खड़ी करना और उसकी छाया का अंगुष्ठ में नाप लेना चाहिये। उनमें चौदह और मिला देना चाहिये, फिर उसके आधे कर उस संख्या से १२० को भाग देना चाहिये, जिससे भाग में इष्ट घड़ी आती है। जैसे एक (वेंत) खुला हाथ की छाया २० अंगुल हो उसमें चौदह मिलाने पर ३४

होते है, उनके आधे १७ हुए, १२० में १७ का भाग देते अङ्क आते हैं ७ घड़ी और आधी पल। इसी प्रकार हेमहंसगणि ने भी अन्य विधि का उल्लेख किया है।

संक्रान्ति को स्थूल मध्याह्न छाया लाने की रीति नारचंद्र के अनुसार—

त्रिद्वयेकखेन्दु पक्षाग्नि-युगेषुषट् शरा युगाः।
क्रमान्मीनादिराशीनां, मध्यपादाः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥

मीनादि राशि का सूर्य हो तब मध्याह्न काल में मनुष्य की छाया का प्रमाण तीन दो, एक, शून्य, एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, पांच और चार पाद होता है। अन्यत्र भी कहा है—

ज्येष्ठाद्दिनाद् दिनं शोध्यं, शेषाद्दशगुणात् स्वतः।
त्यजेत् सप्तशरं ५७ लब्धं, सूर्यैं १२ र्माध्यांह्यः स्मृताः ॥१॥

ज्येष्ठ (बड़े) दिनमान में से इष्ट दिन का दिनमान बाद कर शेष रही पलों को दस से गुणा करना चाहिये, गुणनफल में ५७ का भाग देने से इष्ट दिन के मध्याह्न काल के छायांगुल आते हैं और उसे १२ से भाग देने पर इष्ट दिन के मध्याह्न पाद आते हैं। सूर्य जिस राशि लग्न में हो उस लग्न का प्रातः प्रथम उदय होता है और उसके पश्चात् अनुक्रम से दूसरे लग्न का उदय होता है। उसमें इस समय कौन से लग्न का उदय हुआ है? इस विषय में लिखा है—

सूर्याध्यासितराशेर्माने रविभुक्तनाडिकाभिहते।
संक्रान्तिभोगभुक्ते लब्धं यत् सूर्यभुक्तं तत् ॥ १ ॥

चालू राशि में सूर्य के द्वारा जितनी घड़ियाँ भुक्त हुई हो उनका अंक स्पष्ट कर फिर उसमें सूर्य की राशि के पल से गुणा

करना चाहिये, उसमें अंतराल भुक्त (राशि का अन्तर भुक्ति) से भाग देने पर 'सूर्य भुक्त' आता है ।

राशि की आन्तर्भुक्ति—

कुभुज[२१] नागेन्द्रिय[५७] शरवसु[८५], मुनिर्निधि[६७] वस्वष्ट[८८] भुजरस[६२] क्षं[२७] ।
स्वभष सप्तकलिप्ता[७]—ऋणमथैकगुणाः खयुग[31] सुर[४०] शिवैः[33] शेषैः[31] ॥

प्रत्येक राशि की आंतर भुक्ति के अंक निम्न प्रकार से है— मेष को १८५७, वृष १८८५, मिथुन १८६७, कर्क १८८८, सिंह १८६२ कन्या १८२७, तुला १७६३, वृश्चिक् १७६६, धन १७६०, मकर १७६७ कुम्भ १७८६ और मीन १८२१ ।

मुहूर्त चिन्तामणि के अनुसार—

मेषादिगेऽर्केऽष्टशरा[५८] नगाक्षाः[५७],
सप्तेषवः[५७] सप्तशरा[५७] गजाक्षाः[५८] ।
गोक्षाः[५९] खतर्काः[६०] कुरसाः[६१] कुतर्काः[६१],
कवङ्गानि[६१] षष्टि[६०] र्नवपञ्च[५९] भुक्तिः ॥ १ ॥

मेषादि बारह राशियों में सूर्य जाता है तब उसकी स्थूल भुक्ति अनुक्रम से ५८, ५७, ५७, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६१, ६१, ६० और ५९ कला की होती है । इस स्थूल गति के साथ संक्रांति की भुक्त घड़ी भी गिननी चाहिये । फिर उन्हें ६० से भाग देने पर भाग में स्पष्ट राशि के भुक्त अंश आते हैं और शेष में भुक्त कला आती है । सूर्य भुक्त पलों में इष्ट लग्न का अंश मिलाने पर स्पष्ट सूर्य भुक्त 'निरयन' पलों को प्रस्तुत करता है । भुक्त पलों को राशि के कुल पलों में से घटाने पर भोग्य पल तैयार होती है । इन भोग्य पलों जितना काल व्यतीत होने पर नई राशि की शुरुआत होती है ।

स्थूल लग्न लाने की विधि प्रश्नशतककार के अनुसार—

पञ्चवेदे यामगुण्ये, रविभुक्तदिनान्विते ।
त्रिशद्भुक्ते स्थितं यत्तद्, लग्नं सूर्योदयर्क्षतः ॥१॥

गत प्रहरों को ४५ ध्रुवांक से गुणा कर उसमें सूर्य भुक्त दिवस मिलाने और उनमें तीस का भाग देने पर (फल में) जो अंक आवे उतना ही सूर्य राशि से इष्ट लग्न जानना चाहिये। अर्थात् सूर्य जिस राशि में हो उसे प्रथम लग्न स्थापित करना चाहिये, पश्चात् भाग में जो अंक आये उसे उतनी ही संख्या वाला लग्न जानना चाहिये और शेष को इष्ट लग्न का त्रीशांश मानना चाहिये। यह प्रहर के ऊपर लग्न लाने की विधि है और इसका कारण यह है कि जब बड़ा दिनमान होता है तो लग्न भी बड़े प्रमाण वाला होता है।

दिन के त्रिशांश का नाम 'ध्रुवघटी' है, अर्थात् दिनमान बड़ा हो या छोटा किन्तु उसके बराबर-बराबर तीस भाग करने चाहिये, यदि तीस घड़ी का दिनमान हो तो एक-एक घड़ी की ध्रुव घटी होती है और ३१ घटी का दिनमान हो तो १ घटी और दो पल की ध्रुवघटी होती है।

प्रश्न-शतक में अब स्थूल लग्न की रीति इस प्रकार से दी गई है—

उदयान्नाडिकाजाता, यास्तदर्द्धार्धसंख्यया ।
सूर्यभादस्ति यद् भं नु, त[illegible] निर्णयः ॥ १ ॥

सूर्योदय से जितनी-जितनी घड़ी गई हो, उन्हें आधा करने पर जो अंक आये उन्हें सूर्य नक्षत्र से उतना ही नक्षत्रोदय मानना चाहिये। इस प्रकार से उदित नक्षत्र ऊपर राशि स्थिर करनी चाहिये, तथा जो राशि उदयमान हो वही इष्ट लग्न है ऐसा

जानना चाहिये । इस स्थूल लग्न से संधि लग्न की स्पष्टता ज्ञात होती है, फिर अल्प समय में ही सामान्य रीति से तात्कालिक लग्न देखा जा सकता है । ज्योतिष के विद्वान् 'निरयन लग्न' से 'सायन लग्न' अधिक मानते हैं और इसकी रीति निम्न प्रकार से है । भास्कराचार्य के अनुसार—

पुरी रक्षसां देवकन्याऽथ काञ्ची,
सितः पर्वतः पर्यलीवत्सगुल्मम् ।
पुरी चोज्जयिन्याह्वया गर्गराटं,
कुरुक्षेत्रमेरू भुवो मध्यरेखा ।। १ ।।

भूमि की मध्यरेखा लंका, देवकन्या, काञ्ची, श्वेतपर्वत, गुल्म सहित पर्यलीवान्, उज्जयिनी, गर्गराट, कुरुक्षेत्र और मेरू है । करण कुतुहल में कहा है— जिस दिन मेष का रवि हो उस दिन के पूर्व के अपनांश दिन रखकर बाद के दिन मध्याह्न काल में शरीर की जो अंगुल और व्यंगुल छाया हो वह अक्षप्रभा-विषुवच्छाया कही जाती है । उसे अनुक्रम से १०–८–१० से गुणा कर अंत्य-गुणा की संख्या को तीन से भाज्य करने पर जो अङ्क आये वे तीन चरखण्ड कहे जाते हैं । यथा मध्यदेश में छाया ५ अंगुल और ८ व्यंगुल है, उसे उपरोक्त संख्या से गुणा करने पर ५१–४१–५१ आते है । अन्तिम संख्या को तीन से भाग देने पर सत्तर आते हैं । इससे यह ज्ञात हुआ कि मध्यदेश के चरखंड ५१–४१ और १७ हैं । मेषादि लग्नों का लंकोदय मान २३८, २९९, ३२३ क्रम से, उत्क्रम से उत्क्रम, और क्रम से है । इसमें इष्ट देश के चरखण्ड को अनुक्रम में अनुक्रम से घटाने पर तथा उत्क्रम में उत्क्रम रखने से मेषादि छः लग्न के पलमान तैयार होते हैं और उन्हीं छः को उलटने से तुलादि छः राशि के लग्न पल आते हैं। मध्यदेश के चरखण्ड ५१–४१ और १७ हैं तो उस स्थान का

लग्नमाल लाने के लिये उसे लंकोदय के लग्न पल में से घटाना चाहिये । यथा—

राशि नाम	मेष मीन	वृषभ कुम्भ	मिथुन मकर	कर्क धन	सिंह वृश्चिक	कन्या तुला
लङ्का में लग्नपल	२७८	२९९	३२३	३२३	२९९	२७८
म० के चरखण्ड	हा. ५१	हा. ४१	हा. १७	वृ. १७	वृ. ४१	वृ. ५१
मध्य० के पल	२२७	२५८	३०६	३४०	३४०	३२९

अणहील्लपुर पाटण के चरखंड ५३-४३ और १८ है तथा लग्नपल इस प्रकार है—

मेषस्तत्त्वयमैः २२५ रसेषुयमलै २५६, राशिबृषोऽम्भोपलैः,
पञ्चव्योमहुताशनै ३०५ श्च मिथुनः, कर्कः कुवेदाग्निभिः ३४१ ।
सिंहःपाणिपयोधिपावक ३४२ मितैः, कन्या कुलोर्कास्त्रिकैः ३३१
एतेऽप्युत्क्रमतस्तुलाद्य इह स्युर्गोर्जरे मण्डले ।। १ ।।

गुर्जर देश में मेष के लग्न पल २२५, वृषभ २५६, मिथुन ३०५, कर्क ३४१, सिंह ३४२, तथा कन्या ३३१ । इन छहों संख्या को विलोम (उलटना) करने से तुला के ३३१, वृश्चिक ३४२, धन ३४१, मकर ३०५, कुम्भ २५६ और मीन २२५ है ।

स्पष्ट सूर्य की रीति— चालू संक्रान्ति की गत घड़ी को ३० से गुणा कर आंतरभुक्त घटिका से भाग देने पर फल में अंश आते हैं और उसे ६० से गुणा करने पर, आंतरभुक्ति से भाग देने पर कला-विकला भी आती है । जैसे संक्रान्ति दिन की शेष घड़ी

२२, मध्य के दिन १६ की घड़ी ६६०, इष्ट दिन गत घड़ी १२ पल २२, अर्थात् मेषार्क के १७ वें दिन इष्ट काल में गत घड़ीं ६६४, पल २२ है, उसे ३० से गुणा कर १८५७ से भाजित करने पर अंश १६, कला ३ और विकला ३० आती है। अर्थात् उस दिन कर्क लग्न के कन्या नवमांश में सूर्य ०-१६-३-३० है। उसमें अयनांश मिलाने चाहिये।

प्रत्येक वर्ष का अयनांश १ कला, १ विकला और परम विकला २० है। ये अयनांश लग्नक्रांति और चर में उपयोगी है। इन अयनांश को स्पष्ट सूर्य में मिलाने से सायनांश सूर्य होते हैं।

हेमहंसगणि निरयन लग्न के लिये कहते हैं— सूर्य लग्न की भोग्य घड़ी, मध्य लग्न की घड़ी, इष्ट लग्न के गत नवमांश की घड़ियाँ, इष्ट लग्न का तीसरा भाग (अंश ११ और कला ७ का होता है) और इष्ट लग्न का प्रवृत्यंश का योग करने पर इष्ट नवमांश के घड़ी पल आयेंगे। निरयन लग्न में सायन रीति से थोड़ा फेरफार है किन्तु उसमें दोष नहीं मानते हैं।

रात्रि का लग्न लाने के लिये उदयमान नक्षत्र से लग्न का निर्णय करना चाहिये, जैसे जिस पर नक्षत्र हो उससे आठवें नक्षत्र का पूर्व में उदय होता है। सायण सूर्य के अंश को दैनिक वृद्धि प्राप्त करके पलों से गुणा कर उसे मिलाते स्पष्ट सायन सूर्य का दिनमान आयगा। जैसे वृषार्क के अंश १, कला ३७ है। उसे वृष राशि की दैनिक वृद्धि पल २ विपल पर से गुणा करने पर इष्ट दिन के वृद्धि पल ४ विपल ३६ आते हैं। उसे अहंमान घड़ी ३१ पल ३६ में बढाते इष्ट दिनमान ३१, पल ५०, विपल ३६ होते हैं।

अब राशि की वर्ग शुद्धि के विषय में विवरण स्पष्ट कर रहे हैं—

हर एक राशि के तीसवें भाग का नाम त्रिशांश है और त्रिशांश के साठवें भाग का नाम लिप्ता है। जिस पर होरादि की स्पष्टता होती है।

१ होरा—

लग्न के नौ सौ कला प्रमाण के दो भाग होते हैं, उनका नाम होरा है। इनका स्वामी चंद्र और सूर्य है। यदि एक लग्न की होरा हो तो प्रथम होरा का स्वामी रवि और दूसरी होरा का स्वामी चन्द्र है। यदि युग्म लग्न की होरा हो तो प्रथम होरा चंद्र की तथा द्वितीय होरा सूर्य की है। यहाँ चन्द्र की होरा दीक्षा, प्रतिष्ठा में ग्रहण योग्य मानी गई है।

२ द्रेष्काण—

लग्न के तीसरे भाग का नाम द्रेष्काण है। जो ६०० कला के मानवाला होता है। जिसमें पहला द्रेष्काण स्वयं की राशि का, दूसरा पाँचवीं राशि का और तीसरा नवमीं राशि का होता है और जिस-जिस राशि का द्रेष्काण होता है उसके पति उस द्रेष्काण के पति होते हैं। जैसे वृष राशि में वृषभ, कन्या और मकर नाम वाला द्रेष्काण आता है और उसके पति शुक्र, बुध और शनि है। यदि द्रेष्काण का पति शुभ स्थान में हो तो वह मुहूर्त श्रेयस्कर है।

३ सप्तमांश—

राशि के सातवें भाग का नाम सप्तमांश है। सप्तमांश वाली राशि के अधिपति ही सप्तमांश के अधिपति होते हैं। सप्तमांश को बहुत प्रमाणभूत नहीं मानते हैं। इससे छः वर्ग शुद्धि में इसकी जरूरत नहीं मानी जाती।

४ नवमांश—

लग्न का नवमा भाग नवमांश कहा जाता है। जो २०० लिप्ता प्रमाण का होता है। नवांश प्रत्येक चतुष्क में प्रथम, दशम, सप्तम और चतुर्थ राशि के नाम से शुरू होता है। इष्ट नवांश को राशि के स्वामी ही नवांश के स्वामी हैं। अतः बलवान स्वामी का नवांश और जहाँ तक सम्भव हो सौम्य ग्रह का नवांश शुभ कार्यों में ग्रहण करना चाहिये। नवांश में तृतीय, चतुर्थ, पंचम, सप्तम और नवम अंश जन्म राशि में श्रेयस्कर है। षष्ठम अंश मध्यम है। द्वितीय अंश अधम है—यह 'पूर्णभद्र' का मत है। राशि के नाम वाला नवमांश वर्गोत्तम कहा जाता है। चर राशि में प्रथम, स्थिर राशि में द्वितीय तथा द्विस्वभाव में तृतीय नवांश स्वनाम वाला होता है और यही वर्गोत्तम है। राशि का अंत्यभाग अल्पबल वाला होता है। इससे हर एक अन्तिम नवांश त्याज्य है। किन्तु अन्तिम नवांश वर्गोत्तम हो तो शुभ है।

अणहिल्लपुर में हर एक लग्न के नवांश पल निम्न सारणी के अनुसार है—

लग्न	पल	अक्षर	व्यक्षर	मिनिट	सेकण्ड
मेष, मीन	२५	०	०	१०	०
वृष, कुम्भ	२८	२६	४०	११	२२$\frac{२}{३}$
मिथुन, मकर	३३	५३	२०	१३	३३$\frac{२}{३}$
कर्क, धन	३७	५३	२०	१५	९$\frac{१}{३}$
सिंह, वृश्चिक	३८	०	०	१५	१२
कन्या, तुला	३६	४६	४०	१४	४२$\frac{२}{३}$

५ द्वादशांश—

राशि के बारहवें भाग का नाम द्वादशांश है। जो १५० लिप्ता का होता है। प्रत्येक राशि में प्रथम स्वयं का द्वादशांश होता है। पश्चात् अनुक्रम से हर एक राशि के द्वादशांश आते हैं। जो राशि द्वादशांश के नाम में हो और उसका जो पति हो वही द्वादशांश का पति माना जाता है। इष्ट द्वादशांश पति शुभ हो तो श्रेष्ठ गिना जाता है।

६ सप्तविंशत्यंश—

राशि के सत्ताइसवें भाग का नाम सप्तविंशत्यंश है, जिसे प्रवृत्यंश भी कहते हैं। जो ६७ लिप्ता प्रमाण वाला है। इसकी आवश्यकता लग्न बनाने में पड़ती है। षड्वर्ग शुद्धि में आवश्यकता नहीं रहती।

७ त्रीशांश—

राशि के तीसवें भाग का नाम त्रीशांश है। जिसका ६० लिप्ता का प्रमाण है ऐकी लग्न में प्रथम पांच त्रीशांश का स्वामी मङ्गल है। द्वितीय पाँच त्रीशांश का स्वामी शनि है, बाद के आठ त्रीशांश का स्वामी गुरु है। सात त्रीशांश का स्वामी बुध है तथा अन्तिम पाँच त्रीशांश का स्वामी शनि है तथा युग्म (बेकी) लग्न में इसका विलोम है। सामान्य रीति से सौम्य ग्रह के त्रीशांश में मुहूर्त श्रेष्ठ है। बारह राशियों के उत्तम त्रीशांश इस प्रकार हैं— मेष २१, वृष १४–२०, मिथुन १७, कर्क (४) ८, सिंह १८, कन्या ८, तुला २४, वृश्चिक १२, धन १७, मकर १४, कुम्भ २६ और मीन (४) ८ त्रीशांश शुभ है।

अणहिल्लपुर पाटण में मेषादि राशि का त्रीशांश मान निम्न प्रकार से है—

राशि	पल	अक्षर	राशि	पल	अक्षर
मेष, मीन	७	३०	कर्क, धन	११	२२
वृषभ, कुम्भ	८	३२	सिंह, वृश्चिक	११	२४
मिथुन, मकर	१०	१०	कन्या, तुला	११	२

ये होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश और त्रीशांश की शुद्धि पंचवर्ग शुद्धि कही जाती है। इस लग्न के साथ गिनने पर षड्वर्ग शुद्धि हो जाती है। छः वर्ग से शुद्ध लग्न अतिश्रेष्ठ कहा जाता है। वर्गफल के लिये कहा गया है—

लग्ने नूनं चिन्तयेद्देहभावं, होरायां वै संपदाद्यं सुखं च।
स्याद् द्रेष्काणे भ्रातृजं भावरूपं, सप्तांशे स्यात् सन्ततिः पुत्र-पुत्री
नूनं नवांशेऽपि कलत्रभावं, स्याद्द्वादशांशे पितृ-मातृ सौख्यम्।
त्रिशांशके कष्टफलं विलोक्यं, होरागमे होरविदो विदन्ति ।।२।।

ज्योतिषविद् लग्न में देहभाव का विचार करे, क्योंकि होरा में लक्ष्मी और सुख, द्रेष्काण में बन्धु-स्नेह, सप्तांश में पुत्र-पुत्री की सन्तति, नवांश में स्त्री, द्वादशांश में माता-पिता का सुख और त्रीशांश में कष्ट सम्बन्धी विचार करते हैं।

एक-एक राशि में सवा दो नक्षत्रों का समावेश होता है और सवा दो नक्षत्र के नौ पद (पाये) चतुर्थांश राशि के नवांश कहे जाते हैं। क्रम निम्नानुसार है—

अश्विनी ४	भरणी ४	कृतिका १	मेष
कृतिका ३	रोहिणी ४	मृगशिर २	वृषभ
मृगशिर २	आर्द्रा ४	पुनर्वसु ३	मिथुन
पुनर्वसु १	पुष्य ४	अश्लेषा ४	कर्क
मघा ४	पूर्वा फाल्गुनी ४	उत्तराफाल्गुनी १	सिंह
उत्तराफाल्गुनी ३	हस्त ४	चित्रा २	कन्या
चित्रा २	स्वाति ४	विषाखा ३	तुला
विशाखा १	अनुराधा ४	ज्येष्ठा ४	वृश्चिक
मूल ४	पूर्वाषाढा ४	उत्तराषाढा १	धन
उषा. ३ (अभि.)	श्रवण ४	धनिष्ठा २	मकर
धनिष्ठा २	शतभिषा ४	पूर्वभाद्रपद ३	कुम्भ
पूर्वभाद्रपद १	उत्तराभाद्रपद ४	रेवती ४	मीन

बारह राशियों के अक्षरों के लिये कहा है—

मेषे स्युः चुलआ वृषे इव मताः युग्मे कघा ङा छहाः,
कर्के हीड हरौ मटा कनिषु वै टोपाः षणाठा मताः ।
तौलौ रात अलौ नतोय धनुषः ये भा धफा ढा मताः,

मेष— चु चे चो ला लि लू ले लो अ ।
वृषभ— इ उ ए ओ व वि वु वे वो ।
मिथुन— क कि कु के को घ ङ छ ह ।
कर्क— हि हु हे हो ड डि डु डे डो ।

सिंह— म मि मु मे मो ट टि टु टे ।
कन्या— टो प पी पु पे पो ष ण ढ ।
तुला— र रि रू रे रो त ति तु ते ।
वृश्चिक— न नि नु ने नो तो य यि यु ।
धन— ये यो भ भि भु भे ध फ ढ ।
मकर— भो ज जी जु जे जो ख खी खु खे खो ग गी ।
कुम्भ— गु गे गो स सि सु से सो द ।
मीन— द दी दु दे दो श ल थ च ची ।

इनमें ह्रस्व और दीर्घ का भेद नहीं है । दोनों का समावेश हो सकता है । यथा कर्क में हि और ही दोनों का आवश्यकतानुसार प्रयोग हो सकता है ।

लग्न और राशियों का स्वरूप—

मेषादि राशियों का रंग अनुक्रम से इस प्रकार है— लाल, श्वेत, (हरित, पीत) हरित, लाल, शुभ्र, चितकबरा, श्याम, पिंग (पीला-लाल) पिंग चितकबरा, पीत तथा मटमैला । मेषादि बारह राशियाँ पूर्वादि चार दिशाओं की स्वामी है । अनुक्रम से इस प्रकार है—

मेष, सिंह और धन पूर्व दिशा के पति हैं ।
वृषभ, कन्या और मकर दक्षिण दिशा के पति ।
मिथुन, तुला और कुम्भ पश्चिम दिशा के स्वामी ।
कर्क, वृश्चिक और मीन उत्तर दिशा के पति ।

इनका प्रयोजन यात्रा में होता है । अनुक्रम से बारह राशियों की चर, स्थिर और द्विस्वभाव संज्ञा है । यह संज्ञा जन्म फल और चोरी गई वस्तु में जरूरी है ।

स्वभाव में मेष, सिंह, मकर, वृश्चिक और कुम्भ राशियाँ क्रूर हैं, शेष राशियाँ सौम्य हैं । सौम्य ग्रह की दृष्टि वाली

राशियाँ सौम्य हैं और क्रूर ग्रह की दृष्टिवाली राशियां क्रूर हैं। इसी प्रकार मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, धनु और मकर राशियाँ रात्रि में बलवान हैं, शेष दिन में बलवान हैं। ऐकी राशि पुरुष और युग्म (बेकी) राशि स्त्री है। दिन की बलवान छः राशियों का उदय होते समय मस्तक पूर्व दिखने से ये शीर्षोदय कही जाती है रात्रि में बलवान राशियों को पीठ प्रथम उदित होने से ये पृष्ठोदय कही जाती है। किन्तु मीन दोनों होने से शीर्षपृष्ठोदय वा उभोदय मानी जाती है। शीर्षोदय राशि यात्रादि में शुभ अर्थात् दिन में बलवान राशियों में यात्रा करनी चाहिये। राशियों के स्वामी के लिये कहा है—

मेषादीशाः कुजः शुक्रो, बुधश्चन्द्रो रविर्बुधः।

शुक्रः कुजो गुरुर्मन्दो, मन्दो जीव इति क्रमात् ॥ १ ॥

मेषादि राशियों के स्वामी क्रम से इस प्रकार है— मंगल शुक्र, बुध, चन्द्र, रवि, बुध, शुक्र, मङ्गल, गुरु, शनि, शनि और गुरु हैं। जिन–जिन राशियों के ग्रह अधिपति हैं वे वे राशियाँ अपने–अपने भुवन के रूप में गिनी जाती हैं। राहु का घर कन्या है।

सूर्यादीनामुच्चाः, अजवृषमृगयुवतिकर्कमीनतुलाः।

दिग्गुप्त्यष्टाविंशति–तिथीषु भ विंशतिभिरंशैः ॥ १ ॥

सूर्यादि सात ग्रहों के उच्च स्थान क्रम से इस प्रकार हैं— मेष, वृषभ, मकर, कन्या, कर्क, मीन और तुला। ये स्थान ग्रहों के हर्ष स्थान या विलासभुवन है, और भी रवि आदि ग्रह अपने–अपने उच्च स्थान के अनुक्रम में— दस, तीन, अट्ठाइस, पन्द्रह, पांच सत्ताइस और बीसवें त्रीशांश तक के अंश परम उच्च हैं। राहु का उच्च स्थान मिथुन और केतु का उच्च स्थान धन है।

उच्च स्थान के लिये त्रैलोक्य प्रकाश में कहा है—

लग्ने तुंगे सदा लक्ष्मी-स्तुर्ये तुंगे धनागमः।

तुंगजायास्तगे तुंगे, खे तुंगे राज्यसंभवः ॥ १ ॥

लाभे तुंगे महालाभो, भाग्ये तुंगे च दीक्षितः॥

लग्न कुण्डली में प्रथम, चतुर्थ, सातवां और दशम स्थान उच्चग्रहयुक्त हो तो क्रम से— अक्षयधन, धनवृद्धि, सुलक्षणी स्त्री और राज्य मिलता है तथा ग्यारहवें भुवन में उच्चग्रह हो तो बहुत ही बड़े लाभ का अधिकारी होता है। नवम स्थान में उच्च ग्रह हो तो दीक्षा लेता है। अन्य ग्रंथों में भी कहा है— जन्मने वाले की कुण्डली में एक ऊँचा ग्रह हो तो मांडलिक, तीन ऊँचे ग्रह हों तो राजा, पाँच ऊँचे ग्रह हों तो वासुदेव, छः उच्च के ग्रह हो तो चक्रवर्ती और ग्रह उच्च के हो तो तीर्थङ्कर होता है। यदि राहु उच्च का हो तो केतु भी उच्च गिना जाता है। कल्पसूत्र में प्रभु महावीर स्वामी की जन्मकुण्डली में तीसवाँ 'भस्मग्रह' होने का निर्देश है। स्वग्रही के लिये जन्म कुण्डली में कहा है—

त्रिभिः स्वस्थैर्भवेन्मन्त्री, त्रिभिरुच्चैर्नराधिपः ॥

जन्म कुण्डली में तीन ग्रह स्वग्रही हो तो मंत्री और तीन ग्रह उच्च हो तो राजा होता है।

हर एक ग्रह को उसके उच्च स्थान से सातवीं राशि नीच स्थान है। जिससे रवि आदि का नीच स्थान क्रम से— तुला, वृश्चिक, कर्क, मीन, मकर, कन्या, मेष, धन और मिथुन राशि है और जैसे उच्चराशि के दश आदि परमोच्च स्थान है वैसे ही नीच राशि के भी वही अंश परम नीच भी है। अनुक्रम से इस प्रकार है— १०-३-२८-१५-५-२७ और २० अंशांशों में रवि आदि नव ग्रह परम नीच के होते हैं।

जन्मकुण्डली के नीच ग्रहों के लिये कहा है—

त्रिभिर्नीचर्भवेद् दासः, त्रिभिरस्तमितैर्जडः ।

जिसकी जन्म कुण्डली में नीच तीन ग्रह हो तो वह दास होता है और अस्त के तीन ग्रह हो तो जड़ होता है । अन्य भी—

अन्धं दिगम्बरं मूर्खं, परपिण्डोपजीविनम् ।
कुर्यातामतिनीचस्थौ, पुरुषं चन्द्र-भास्करौ ॥ १ ॥

जन्म कुण्डली में अति नीच स्थान में रहा हुआ चंद्र और सूर्य पुरुष को अंध, गरीब, हीन, मूर्ख और भिक्षुक बनाता है ।

अन्य भी—

सिंहो वृषोऽजो प्रमदा धनुश्च, तुलाघटोकुम्भ-हरी त्रिकोणम् ।

सूर्यादि नव ग्रहों का अनुक्रम से— सिंह, वृषभ, मेष, कन्या, धन, तुला, कुम्भ और सिंह त्रिकोण स्थान हैं । ज्योतिर्विद् इन स्थानों का बल उच्च से न्यून समझते हैं ।

उपरोक्त स्वयं की राशि, स्वयं का उच्च स्थान और स्वयं का त्रिकोण में रहे ग्रह श्रेष्ठ गिने जाते हैं ।

उच्च ग्रह स्वयं के उच्च स्थान के स्वामी के साथ मित्र भाव वाले होते हैं और स्वयं के भुवन से सातवें भुवन का शत्रु होता है । इस प्रमाण से उच्चस्थानादि से कितने ही ग्रहों का मैत्री भाव और कितने ही ग्रहों का शत्रुभाव समझा जाता है । राशि के रस, शरीर, मान, वासस्थान, भ्रमणस्थान, प्लवत्व, प्रमाणाभा, शटका, लग्नमान और तत्वादि अन्य ग्रंथों से ज्ञात हो सकता है । विषय के विस्तार से हम यहां नहीं दे रहे हैं ।

(देखिये राशि चक्र)

नाम	मेष मीन	वृष कुम्भ	मिथुन मकर	कर्क धन	सिंह वृश्चिक	कन्या तुला
लंका लग्न पल	२७८	२९९	३२३	३२३	२९९	२७८
मध्यदेश पल	२२७	२५८	३०६	३४०	३४०	३२९
जोधपुर	२१८	२५१	३०३	३४३	३४७	३३८
राजस्थान पल	२३३	२६३	३०५	३४५	३२५	३२३
दिल्ली पल	२१४	२४०	३०१	३४५	३५१	३४२
लग्न पल	२२५	२५६	३०५	३४१	३४२	३३१
(पाटण) होरा पल	११२	१२८	१५२	१७०	१७१	१६५
विपल	३०	०	३०	३०	०	३०
द्रेष्काण पल	७५	८५	१०१	११३	११४	११०
विपल	०	२०	४०	४०	०	२०
नवांश पल	२५	२८	३३	३७	३८	३६
अक्षर	०	२६	५३	५३	०	४६
व्यक्षर	०	४०	२०	२०	०	४०
द्वादशांश पल	१८	२१	२४	२८	२८	२७
विपल	२५	२०	२४	२५	३०	३४
त्रीशांश पल	७	८	१०	११	११	११
प्रमाणाभा	२०	२४	२८	३२	३६	४०
शटका	२००	२४०	२८०	३२०	३६०	४००
लग्न मिनिट	९०	१०२	१२२	१३६	१३६	१३२

सेकण्ड	०	२४	०	२४	४८	२४
होरा मिनिट	४५	५१	६१	६८	६८	६६
सेकण्ड	०	१२	०	१२	२४	१२
द्रेष्काण मिनिट	३०	३४	४०	४५	४५	४४
सेकण्ड	०	८	४०	२८	३६	८
नवांश मिनिट	१०	११	१३	१५	१५	१४
सेकण्ड	०	२२	३३	६	१२	४२
प्र०	०	४०	२०	२०	०	४०
द्वादशांश मिनिट	७	८	१०	११	११	११
सेकण्ड	२२	३२	१०	२२	२४	२
त्रिशांश मिनिट	३	३	४	४	४	४
सेकण्ड	०	२४॥।	४	३२॥।	३३॥।	२४॥।

राशि लग्न चक्र

नाम	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुम्भ	मीन
शुभ त्रिशांश	२०	२०	१७	४–८	१८	४–८	२४	१२	१७	२२	२६	४–८
नक्षत्रपाद	अश्विनी	कृ० ३	मृग० २	पुन० १	मघा	उ.फा. ३	चित्रा २	वि० १	मूल	उ.षा. ३	धनि० २	पू.भा. १
	भरणी	रोहिणी	आर्द्रा	पुष्य	पूर्वा फा.	हस्त	स्वाति	अनु०	पू. षा.	श्रवण	शत०	उ०भा०
	कृ० १	मृग० २	पुन० ३	अश्लेषा	उत्तरा फा० १	चित्रा २	विशाखा ३	ज्येष्ठा	उ. षा. १	धनिष्ठा २	पू०भा० ३	रेवती
मध्याह्नछाया	३	२	१	०	१	२	३	४	५	६	५	४
आंतरभुक्ति	१८५७	१८८५	१८९७	१८८८	१८६२	१८२७	१८६३	१७६६	१७६०	१७६७	१७८६	१८२१
स्थूलभुक्तिकला	५८	५७	५७	५७	५८	५९	६०	६१	६१	६१	६०	५६
शुभ	७	३	६	१	६	३	८	४	६–७	५	६–८	१–३
नवमांश	९	५		३			९		९			

राशि लग्न चक्र

नाम	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुम्भ	मीन
चद्र द्वादशांश	प्रो०	हृत	मृत	जय	ह्रास	हर्ष	रति	निद्रा	स्तुति	जरा	भय	सुखि०
मास	चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	अषाढ	श्रावण	भाद्र०	आसोज	कार्तिक	मार्ग०	पोष	महा	फाल्गुन
ऋतु	बसंत	ग्रीष्म	ग्रीष्म	वर्षा	वर्षा	शरद्	शरद्	हेमन्त	हेमन्त	शिशिर	शिशिर	बसंत
रविदग्धातिथि	६	४	८	६	१०	८	१२	१०	२	१२	४	२
चंद्रदग्धातिथि	४	१०	४	१०	६	१२	६	१२	२	८	२	८
क्रूर तिथि	१-५	२-५	३-५	४-५	६-१०	७-१०	८-१०	९-१०	११-१५	१२-१५	१३-१५	१४-१५
अक्षर १	अ ल	बा उ	क छ घ	डा हा	मा टा	पा ठ	रा ता	नो या	भ ढ	खा जा	गो सा	दा चा
	इ	वा				ण			फ ध			क्षा था
अक्षर २	चू ला	इ वा	का घा	हो डा	मा टा	टो पा	रा ता	तो ना	ये भा धा	भो जा	गू सा	दि शा
	आ		उ छ हा			ष ण			फा ढा	खा गा		झ थ चा

स्वरूप	अज	वृषभ	दंपति	कच्छप	शैलाचार	कन्या	त्रा०	वी०	अश्वनर	मृ०	घटसहित नर	मत्स्य
देहांग	एक	एक	दो	एक	एक	एक	एक	एक	दो	एक	एक	दो
चंद्राकार	समान	समान	हल	निर्मल	वक्र	शूलि	शूलि	वक्र	निर्मल	हल	समान	अल्प वक्र
चंद्राकार	द०उच्च	समान	उ०उच्च	हल	धनुष्य	शूलि	शूलि	धनुष्य	हल	उ० उ०	समान	द.उ.चो
रंग	लाल	श्वेत	हरित	लाल	पांडु	विचित्र	श्याम	पिंग	पिंग	चित्र वि.	पीत	धूमिल
रंग			पी. ली.	श्वे. ला.	श्वेत		मेचक	ला.पी.	ला. पी.		भभूती रग	मलाढ्य
दिशाएं	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
स्वभाव	चर	स्थिर	द्वि०	चर	स्थिर	द्वि०	चर	स्थिर	द्वि०	चर	स्थिर	द्वि०
स्वभाव	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य
ग्रहवाल	क्रूर				क्रूर			क्रूर		क्रूर	क्रूर	
ऐकी युग्म (वेकी)	ऐकी	युग्म	ऐकी	युग्म	ऐकी	युग्म	ऐकी	युग्म	ऐकी	युग्म	ऐकी	युग्म
लिंग	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री
कालफल	रात्रि	रात्रि	रात्रि	रात्रि	दिन	दिन	दिन	दिन	रात्रि	रात्रि	रात्रि	रात्रि

उदय	पृष्ठ	पृष्ठ	सिर	पृष्ठ	सिर	सिर	सिर	सिर	पृष्ठ	पृष्ठ	सिर	उभय
स्वामी ग्रह	भौम	शुक्र	बुध	सोम	रवि	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु
उच्च ग्रह	रवि	सोम	राहु	गुरु	०	बुध	शनि	०	केतु	भौम	०	शुक्र
नीच ग्रह	शनि	०	केतु	भौम	०	शुक्र	रवि	सोम	राहु	गुरु	०	बुध
बलि ग्रह	५	रवि सोम	५	र.सो.	५	र.सो.	५	र.सो.	५	र.सो.	५	र.सो.
षडष्टक	वृश्चिक	धन	मकर	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला
फल	प्रीति	शत्रु	प्रीति	शत्रु	प्रीति	शत्रु	प्रीति	शत्रु	प्रीति	शत्रु	प्रीति	शत्रु
दो बारह	मीन	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुम्भ
फल	श्रेष्ठ	अशुभ	श्रेष्ठ	अशुभतर	श्रेष्ठ	शुभ	श्रेष्ठ	अशुभ	श्रेष्ठ	अशुभ	श्रेष्ठ	अशुभ
नव पंचक	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथुन	कर्क
फल	शुभ	शुभ	शुभ	मध्यम	शुभ	मध्यम	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	मध्यम	मध्यम

प्रश्न शतक वृत्ति श्लोक १-१५

त्रिंशांश

१	त्रिकोण	उच्च			मूलत्रिकोण	उच्च	त्रिकोण		मूलत्रिकोण		त्रिको
१	त्रिकोण	उच्च			,,	,,	,,		,,		,,
१	त्रिकोण	परमोच्च			,,	,,	,,		,,		,,
२	त्रिकोण	चंद्र त्रि.			,,	,,	त्रिकोण		,,		,,
५	त्रिकोण	,,			,,	,,	शुक्रगृह		,,		,,
२	त्रिकोण	,,			,,	,,	,,		गुरुगृह		,,
२	भौमगृह	,,			,,	,,	,,		,,		,,
१	भौमगृह	,,			,,	परमोच्च	,,		,,		,,
३	भौमगृह	,,			,,	त्रिकोण	,,		,,		,,
२	भौमगृह	,,			,,	त्रिकोण	,,		,,		,,
१०	भौमगृह	,,			रविगृह	बुध	,,		,,		शनिगृह

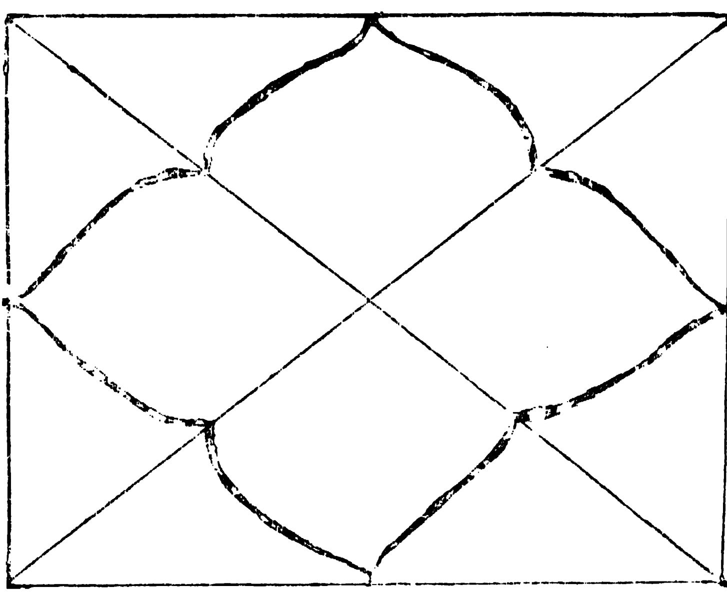
राशि लग्न चक्र

नाम	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुम्भ	मीन
राशि पुरुषांग	सिर	मुख	वक्ष	हृदय	उदर	कटि	पेडुस्थान	मेहन	उरु	जानु	जंघा	पाँव
मान	ह्रस्व	ह्रस्व	सम	सम	दीर्घ	दीर्घ	दीर्घ	दीर्घ	सम	सम	ह्रस्व	ह्रस्व
प्लवत्व दिशा	दक्षिण	अ०	उ०	वा०	पू०	उ०	अ०	द०	उ०	प०	प०	उ०
जाति	पशु	पशु	मनुष्य	कीट	पशु	मनुष्य	मनुष्य	कीट	म.प.	म.की	जलचर	जलचर
गात	चतुष्पद	चतुष्पद	द्विपद	अपद	चतुष्पद	द्विपाद	द्विपाद	अपद	द्वि.च.	द्वि.अ.	अपद	अपद
वासभूमि	झोंक	गोकुल	नृत्यभू०	युद्ध	वन	अंतःपुर	स्व०	रण	जल शि०	भाड	जल	भूमि
विशेष स्थान	केदरात्रि	कृष्णादि	शिल्प	पुलिन	दुर्गवन	रसोई	दुकान	वाल्मक	यज्ञ	जल	दूत	तीर्थ
भ्रमणस्थान	अ. ग्रा.	अ ग्रा.	ग्राम	जल	वन	ग्राम	ग्राम	प्रवासो	ग्रा.व.	व.ज.	ग्राम	जल
....	क्रिय	तावुरी	गोतुभ	कुलिर	लय	पाथोन	जुक	कौर्य	तौक्षिक	आको	त्वस्भे	अंत्यभं

वाचा	अव्य०	अ०	व्य०	मूक	अ०	व्य०	व्य०	अ०	व्य.	अ०	अ०व्य०	मूक
विष्टि	स्वर्ग	स्वर्ग	पाताल	पाताल	मनुष्य	पाताल	पाताल	मनुष्य	पा.	स्वर्ग	मनुष्य	मनुष्य
प्रसवकारक	अल्प	बहु	अल्प	बहु	अल्प	अल्प		बहु		अल्प		बहु
तत्व	अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल	अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल	अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल

अब लग्न शुद्धि के विषय में मत—

इष्टकाल के समय जो राशि उदय प्राप्त करती हो वह तात्कालिक लग्न कहा जाता है। उसे मुख पर स्थापित कर पीछे की हर राशि को वाम क्रम से अनुक्रम से बारह स्थानों में स्थापित किया जाता है और जिस-जिस राशि में जो-जो तात्कालिक ग्रह हों वे उसमें रखे जाते हैं। उसका नाम "लग्न कुण्डली" है। उसके लिये चतुष्कोण कुण्डली निम्न प्रकार से खींची जाती है।



उसमें इष्ट काल की चन्द्र की राशि मुख में स्थापित कर शेष भावों में तात्कालिक ग्रह युक्त अन्य राशि पूरित करने से राशि कुण्डली या चन्द्र कुण्डली तैयार हो जाती है तथा इष्ट नवांश राशि को मुख में रखकर पीछे की राशियाँ वामक्रम से रखने पर तथा तदनुसार ग्रह स्थापित करने से 'नवांश कुण्डली' तैयार होती है। इस प्रकार जन्म, प्रश्न, प्रतिष्ठा, विवाह आदि के लिये लग्न कुण्डली, चंद्र कुण्डली और नवांश कुण्डली तैयार की जाती है।

इसके अतिरिक्त होरा द्रेष्काण आदि की कुण्डलियों तथा चलित कुण्डली (भाव कुण्डली) भी विविध रीति से तैयार होती है । लग्न कुण्डली में तैयार होने वाले बारह भावों के नाम निम्न प्रकार से है ।

लग्नाद् भावास्तनु–द्रव्य—भ्रातृ–बन्धु–सुता·ऽरयः ।
स्त्री–मृत्यु–धर्म–कर्मा–ऽऽय–व्ययाश्च द्वादश स्मृताः ॥ १ ॥

प्रथम स्थान से बारह भाव अनुक्रम से इस प्रकार है— १ तनु २ धन ३ भ्रातृ (सहोदर) ४ बन्धु (सुहृद) ५ पुत्र ६ शत्रु ७ स्त्री ८ मृत्यु ९ धर्म १० कर्म ११ लाभ १२ व्यय है। भावों के विशेष नाम इस प्रकार है—

केद्रं चतुष्टयं कंटकं, च लग्नास्तदशम चतुर्थानाम् ।
संज्ञा परतः पणफर–मापोक्लिममस्य यत्परतः ॥ १ ॥
त्रिषडेकादशदशमाना–मुप चयं सूतधर्मयोस्त्रिकोणम् ॥

१–४–७–१० भुवन के नाम कंटक चतुष्टय और केन्द्र है। पीछे के चार-चार नाम भी फर, और आपोकिलम है । अर्थात् २–५–८–११ भुवन के नाम भी फर हैं तथा ३–६–९-१२ भुवन के नाम भी आपोकिलम हैं । ३-६–१०–११ भुवन का नाम उपचय है और ५–९ भुवन का नाम त्रिकोण है ।

प्रत्येक का फल विचार—

पणफराद् भाविकार्यं, ज्ञेयमापोक्लिमाद् गतम् ।
केन्द्रे सर्वग्रहाः पुष्ठाः, त्रैकालिकफलप्रदाः ॥ १ ॥

पणफर से भावो कार्य की जानकारी, आपोकिलम् से भूत कार्य (विगत) को जानकारो और केन्द्र में रहने वाले सारे पुष्ट ग्रहों से तीनों कालों का ज्ञान होता है ।

उपचय भुवन स्थानवृद्धि करने वाले हैं। इसमें पाप ग्रह भी शुभ फल देने वाले हैं, जबकि शेष स्थान अपचय नाम वाले होने से हानिकारक हैं। ये प्रयत्न से भी सिद्धिप्रद नहीं होते।

१ लग्न, तनु, केन्द्र, चतुष्टय, मूर्ति, कंटक, उदय, कल्प और आद्य ये प्रथम भाव के नाम हैं।

२ धन, पण, फर, कोष, कुटुम्ब ये द्वितीय भाव के नाम हैं।

३ सहज, भ्रातृ, विक्रम, दुश्चिक्य, उपचय, आपोकिलम ये तृतीय भाव के नाम हैं।

४ सुख, अंबु, सुहृद, मंदिर, पाताल, हिबुक, केन्द्र, चतुष्टय कंटक बन्धु, मातृ, चतुरस्त्र, गृह और वाहन ये चतुर्थ भाव के नाम हैं।

५ सुत, पण, फर, त्रिकोण, बुद्धि, वाचा ये पांचवें भाव के नाम हैं।

६ अरि, आपोकिलम, उपचय, द्वेष और क्षत ये षष्ठ भाव के नाम हैं।

७ स्त्री, काम, द्युन, द्यून, अस्त, केन्द्र, चतुष्टय कंटक, जामित्र (विवृति) और स्मर ये सातवें भाव के नाम हैं।

८ मृत्यु, छिद्र, चतुरस्त्र, पण, फर, आयुष्ययाम्य, निधन और लय अष्टम भाव के नाम हैं।

९ धर्म, त्रिकोण, त्रित्रिकोण, आपोकिलम, भाग्य (भव), गुरु, और तप ये नवमें भाग के नाम हैं।

१० मध्य मेषूरण, व्योम, उपचय, चतुष्टय, केन्द्र कंटक, पितृभुवन कर्म, व्यापार, आज्ञा, मान, आस्पद और मध्य ये दशमें भाव के नाम हैं।

११ आय, उपचय, सर्वतोभद्र, पण, फर, भव और आगम ये ग्यारहवें भाव के नाम हैं।

१२ व्यय, आपोकिलम, रिष्य और अन्त्य ये बारहवें भाव के नाम हैं।

इन बारह भाव के नामों में कितने ही रूढ़ हैं। कितने ही अन्वर्थ हैं। अन्वर्थ नाम लग्न कुण्डली में स्वयं की संज्ञा के अनुरूप कार्य में विचारे जाते।

देवज्ञवल्लभ के मत में राशि के लग्नों में प्रारम्भ किये गये कौन-कौन से कार्य सिद्ध होते हैं?

१ मेष लग्न में राज्याभिषेक, विरोध, साहस, कूटकर्म और धातुवाद के कार्य सिद्ध होते हैं।

२ वृष लग्न में विवाह, गृहप्रवेश, कन्या का वाग्दान, क्षेत्र का प्रारम्भ, पशु क्रय-विक्रय और ध्रुव कार्य सिद्ध होते हैं।

३ मिथुन में विवाह, गृह प्रवेश, कन्या सम्बन्ध, क्षेत्रारम्भ, पशु का व्यापार, ध्रुव कार्य, विद्या, शिल्प और अलंकारादि कार्य सिद्ध होते हैं।

४ कर्क में मृदुकर्म, शुभ पौष्टिक कर्म, भोग सेवा तथा जल सम्बन्धि कार्य (यथा रहट आदि, जल की मशीन आदि कार्य) सिद्ध होते हैं।

५ सिंह में राज्याभिषेक, विरोध, साहस, कूटकर्म, धातुवाद, व्यापार, शत्रुसंधि और राज्य सेवा के कार्य सिद्ध होते हैं।

६ कन्या लग्न में शिल्प, औषध, भूषण व्यापार आदि चर तथा स्थिर कार्य सिद्ध होते हैं।

७ तुला में सारे चर कार्य, स्थिर कार्य, कृषि, सेवा, यात्रा, व्यापार, राज कार्य, शिल्पोषधादि कार्य सिद्ध होते हैं।

८ वृश्चिक में राज्य सेवा, चोरी, दारु कर्म, उग्र तथा ध्रुव कार्य सिद्ध होते हैं।

९ धन लग्न में यात्रा, युद्ध, व्रत, आदि कार्य सिद्ध होते हैं।

१० मकर लग्न में सर्व चर कार्य, नीच कार्य, क्षेत्र का आश्रय जल मार्ग यात्रा आदि सिद्ध होते हैं।

११ कुम्भ लग्न में समुद्रगमन, पोत तैयार करना, बीजारोपण, भेद दंभ, व्रत, तथा हर एक नीच कार्य सिद्ध होते हैं।

१२ मीन लग्न में विद्या, अलंकार, शिल्प पशुकर्म, वाहन, यात्रा अभिषेकादि मांगलिक कार्य सिद्ध होते हैं।

प्रथम भुवन में मेषादिक लग्न स्थान में हो और शुद्ध हो तो उपरोक्त कार्यों को सफल करता है। किन्तु यदि लग्न में क्रूर ग्रह हो तो क्रूर कार्य और सौम्य ग्रह हो तो सौम्य कार्य सफल होता है।

दैवज्ञवल्लभ के अनुसार शुभ कार्यों को लग्न कुण्डली की गोचर शुद्धि—

लग्नादुपचयस्थेऽर्के-ऽन्त्यास्तकर्मायगे विधौ।
क्षोणिपुत्रेऽर्कपुत्रे च, दुश्चिक्यरिपुलाभगे ॥ १ ॥
त्यक्त रिष्याष्टमे सौम्ये, जीवेऽष्टारिव्ययोज्झिते।
सर्वकार्याणि सिध्यन्ति, त्यक्तषट्सप्तमे सिते ॥ २ ॥

लग्न से ३-६-१०-११ स्थान में रवि, २-७-१०-११ स्थान में सोम, ३-६-११ स्थान में भोम तथा शनि, १२ और ८ के अतिरिक्त स्थान में बुध अर्थात् १-२-३-४-५-६-७-९-१०-११ स्थान में बुध, ६-८-१२ के अतिरिक्त स्थान में गुरु अर्थात् १-२-३-४-५-७-९-१०-११ स्थान में गुरु, ६ तथा ७ के अतिरिक्त भुवन में शुक्र अर्थात् १-२-३-४-५-८-९-१०-११-१२ स्थान में शुक्र सारे कार्यों को सिद्ध करता है। राहु और केतु का फल शनि के समान ही माना जाता है। अर्थात् ३-६-११ स्थान में राहु और केतु शुभ है।

श्री उदयप्रभसूरि के अनुसार—

त्रिकोणकेन्द्रायगतैः शुभग्रहैः, विसप्तमेनाऽसुरपूजितेन ।
स्युः क्रूरचंद्रै रिपुविक्रमायगैः, कर्तुः श्रियःसन्निहिताश्च देवताः ॥१

सौम्य ग्रह त्रिकोण, केन्द्र और लाभ में हो, सातवें स्थान के अतिरिक्त कोई भी स्थान में शुक्र हो, रिपु सहज और आयस्थान में क्रूर हो तो कार्य करने वाले को लक्ष्मी प्राप्त होती है और प्रतिष्ठा की गई हो तो प्रतिमा के सानिध्य में देवता रहते हैं ।

श्रीहरिभद्रसूरि के मत में—

छट्ठे दुगे अ छट्ठे, आइमपणवसमयम्मि अतिअट्ठे ।
चउनवदसगे तिच्छगे, सव्वेगारे न बारसमे ॥ १ ॥

६ भुवन में सूर्य, २ भुवन में चंद्र, ६ भुवन में भौम, १-२-३-४-५-१० भुवन में बुध, ३–८ को छोड़ कर अर्थात् १-२-४-५-६-७-९-१०-११ (१२) भुवन में गुरु, ४–९-१० भुवन में शुक्र और ३–६ भुवन में शनि श्रेष्ठ है । सारे ग्रह ग्यारहवें स्थान में श्रेष्ठ हैं और सारे ही ग्रह द्वादश स्थान में अशुभ हैं ।

१-२-४-५-९-१० स्थान में सौम्य ग्रह, षष्टम स्थान में क्रूर ग्रह, द्वितीय स्थान में चंद्र और ग्यारहवें स्थान में सब ग्रह शुभ हैं । "सव्वेवि इक्कारा" ।

पापोऽपि कर्तृजन्मेशः, केन्द्रस्थः शस्यते ग्रहः ।
अशून्यानि च केन्द्राणि, मूर्तौ जीवज्ञभार्गवाः ॥१॥

कर्त्ता, प्रतिष्ठाचार्य, प्रतिष्ठायक, श्रावक, शिष्य और गुरु आदि का जन्म का क्रूर स्वामी भी यदि केन्द्र में है तो शुभ है। गुरु, बुध और शुक्र लग्न में हो तो श्रेष्ठ है ।

पञ्चभिः शस्यते लग्नं, ग्रहैर्बलसमन्वितैः ।

चतुर्भिरपि चेत्केन्द्रे, त्रिकोणे वा गुरुभृगुः ।।१।।

त्रयः सौम्यग्रहा यत्र, लग्ने स्युर्बलवत्तराः ।।

पाँच बलशाली ग्रहों वाला लग्न श्रेष्ठ है, या केन्द्र और त्रिकोण में गुरु और शुक्र हो तो चार बलवान ग्रहों वाला भी लग्न प्रशंसनीय है । यदि लग्न में तीन सौम्य ग्रह भी बलवान है तो वह लग्न भी श्रेष्ठ है ।

गोचर शुद्धि—

जो विलग्न शुद्धि, उदयास्त शुद्धि, ग्रहों का नैसर्गिक बल चेष्टादि बल, वामवेध, जन्मराशि, गोचर, ग्रहों की निर्बलता, परस्पर बलाबल, रेखावर्ग और अन्य भी शुभ योगों से युक्त लग्न 'सम्पूर्ण शुद्ध' लग्न कहा जाता है और लग्न में जितने प्रकार की प्रतिकूलताएँ अधिक होगी उतना ही वह दूषित लग्न कहा जायगा । जन्म कुण्डली को दूषित करने वाले विलग्न निम्न हैं—

न जन्मराशौ नो जन्म. राशिलग्नेऽन्तमाष्टमे ।

न लग्नांशाधिपे लग्नात्, षष्टाष्टमगते विदुः ।।१।।

जन्मराशि, जन्मराशि का लग्न, जन्मराशि से आठवां लग्न जन्मराशि से बारहवां लग्न, षष्ठम स्थान में रहा इष्ट लग्नाधिपति अष्टम स्थान में रहा इष्ट लग्नाधिपति, षष्ठम स्थान में रहा इष्ट नवांशाधिपति और अष्टम स्थान में रहा नवांशाधिपति हो तो लग्न लेना नहीं चाहिये । यह नरचंद्रसूरि का मत है । श्रीउदयप्रभसूरि के मत में जन्म कुण्डली का लग्न और उससे आठवाँ लग्न तथा बारहवाँ लग्न छोड़ देना चाहिये ।

गर्ग— चतुर्थ लग्न भी त्याज्य है ।

चतुर्थद्वादशे कार्ये, लग्ने बहुगुणे यदि ।

अष्टमं तु न कर्तव्यं, यदि सर्वगुणान्वितम् ।।१।।

बहुगुणयुक्त चौथा और बारहवां लेना चाहिये, किन्तु सर्व गुणयुक्त आठवां लग्न तो कभी नहीं लेना चाहिये । बृहस्पति के मत में लग्नेश और अष्टमेष मित्र हो तो लग्नराशि और अष्टम राशि का दोष नहीं है । सारङ्ग मत— चौथा और आठवां लग्न मित्र हो और पुष्ट गुरु और शुक्र से देखता हो तो शुभ है । षष्ठम स्थान में लग्नपति या नवांशपति हो तो लग्नस्थ गुरु भी दोष को भंग नहीं कर सकता तथा आठवें स्थान में रहा लग्नाधिपति इष्ट लग्न द्रेष्काण से बाइसवें द्रेष्काण में हो तो वह अधिक अशुभ है और ये स्थानराशि के अंकवाले वर्ष में फल प्रायः करके देते हैं । बारहवें स्थान में रहा लग्नाधिपति भी अशुभ है । नवांशाधिपति छट्ठे, अष्टम या बारहवें स्थान में स्वगृही हो तो वे नवांश शुभ हैं ।

रत्नमाला भाष्य— जन्मराशि और जन्मलग्न से अष्टम और द्वादश राशि के स्वामियों को भी छोड़ देना चाहिये ।

मुहूर्त चिंतामणी—

जन्मलग्नोभयोः मृत्यु-राशौ नेष्टः करग्रहः ।

एकाधिपत्ये राशीशे, मैत्रे वा नैव दोषकृत ।।१।।

जन्मराशि और जन्मलग्न के स्वामी मृत्यु स्थान में हो तो विवाह नहीं करना चाहिये, किन्तु यदि दोनों स्थानों का अधिपति एक ही हो या दोनों स्थानों के अधिपति ग्रह मित्र हो तो दोष नहीं है । अन्य भी कहा है— आठवें स्थान में मीन, वृष, कर्क, वृश्चिक, मकर और कन्या राशि हो तो वे दोष कारक नहीं होते हैं

नरचन्द्रसूरि के मत में—

जन्मराशि बिलग्नाभ्यां, रन्ध्रेशो रन्ध्रसंस्थितः ।
त्याज्यौ क्रूरान्तरस्थौ, लग्नपीयूषरोचिषौ ॥ १ ॥

जन्मराशि और जन्मलग्न से आठवें भुवन का पति इष्ट काल में आठवें भुवन में रहा हो तो उसे त्यागना चाहिये। चिंतामणीकार के मत में— सोम २-३ भुवन में शुभ है। जबकि ६-८ भुवन का चन्द्र वर का नाश करता है। विवाह कुण्डली में १-६-८ स्थान में भोम हो तो वह वर का नाश करता है और रवि ७ भुवन में शुभ है। निंद्यस्थान के क्रूर ग्रह शुभ माने जाते हैं। श्रीउदयप्रभसूरि— केन्द्र और त्रिकोण में रहे बुध, गुरु या शुक्र से देखा गया क्रूर ग्रह निंद्य भुवन में हो तो भी निंद्य नहीं है और शत्रु के घर में रहा या नीच का शुक्र षष्ठम भुवन में दुष्ट नहीं होता है। शत्रु के घर में रहा, नीच का या अस्तंगत मंगल आठवें भुवन में हो तो वह लग्न को दूषित नहीं करता है। नीच नवांश का चंद्र ६-८-१२ स्थान में हो तो भी दोष नहीं है।

प्रश्नशतक—

त्रिकोणकण्टकोच्चस्थै- र्ज्ञेज्यशुक्रैर्यदीक्षितः ।
पापोऽप्यनिष्टभावस्थो, नारिष्टायाऽन्यथाऽधमः ॥ १ ॥

त्रिकोण कंटक और उच्च में रहा बुध, गुरु व शुक्र से देखा गया और अनिष्ट स्थान में रहा पापग्रह भी अनिष्ट नहीं है। किंतु यदि ऐसा संयोग न हो वह नीच है।

दैवज्ञवल्लभ—

लग्नस्थेऽपि गुरौ दुष्टः शुक्रः षष्ठोऽष्टमो कुजः ।

लग्न में गुरु हो तो भी छट्ठा शुक्र और आठवां मंगल दुष्ट है।

गर्ग तो मंगल के लिये कहते हैं—

लग्नाद् भौमेऽष्टमगे, दम्पत्योर्वह्निना मृतिः समकम् ।
जन्मनि योवाऽष्टमगः, तस्मिन् लग्नगते वाऽपि ॥१॥

लग्न कुण्डली में अष्टम स्थान में भोम हो या जो ग्रह जन्म कुण्डली में अष्टम स्थान में रहा हो हुआ और वह ग्रह पहले भुवन में हो तो नये विवाहित दंपति का एक साथ अग्नि में मरण होता है ।

भास्कर के मत में—

जन्म चन्द्र कुण्डली या जन्म लग्न कुण्डली में आठवें भुवन का स्वामी जो ग्रह हो वह इष्ट कुण्डली में भी आठवें स्थान में आवे या लग्न में आवे तो उन्हें उनकी राशि का और उनके नवांश का त्याग करना चाहिये ।

विबाह वृन्दावन—

जन्म राशि या जन्म लग्न में वृषभ या वृश्चिक हो तो वह आठवें भुवन में दुष्ट नहीं है । निषिद्ध ग्रहों का भी शुभ कार्य में त्याग करना चाहिये । लग्न में दुष्ट ग्रह हो तो वह अनिष्ट योग है ।

दैवज्ञवल्लभ—

लग्नेस्थे तपने व्यालो, रसातलमुखः कुजे ।
क्षयो मन्दे तमो राहौ, केतावन्तकसंज्ञितः ॥१॥
योगेष्वेषु कृतं कार्यं, मृत्युदारिद्र्यशोकदम् ।

लग्न में सूर्य हो तो व्याल, मंगल हो तो रसातल मुख, शनि हो तो क्षय, राहु हो तो तम और केतु हो तो अन्तक योग होता है ।

नारचंद्र के अनुसार—

क्रूरैस्तनुगैर्मर्म, पञ्चमनवमे कण्टकं भवति ।
दशमचतुर्थे शल्यं, जामित्रे भवति तच्छिद्रम् ॥ १ ॥

मर्मणि वेधे मरणं, कण्टकविद्धे च रोगपरिवृद्धिः ।
शल्ये शस्त्रविघातं, छिद्रे छिद्रं भवेत् त्रिगुणम् ॥ २ ॥

क्रूर ग्रह १ स्थान में हो तो मर्म, ५-६ में हो तो कंटक, ४-१० में शल्य और ७ में हो तो छिद्र योग होता है ।

मर्म के वेध से मृत्यु, कंटक से रोग की वृद्धि, शल्य से शस्त्रविघात, छिद्र योग से तीन गुना छिद्रों की वृद्धि होती है ।

लल्ल के अनुसार—

क्रूरग्रहं न लग्ने, कुर्यान्नवपञ्चमधने वा ।

१-६-५-२ भुवन में क्रूर ग्रह हो तो लग्न कभी नहीं करना चाहिये ।

श्रीउदयप्रभसूरि के अनुसार—

लग्नाम्बुस्मरगो राहुः, सर्व कार्येषु वर्जितः ।

१-४ तथा ७ भुवन में रहा राहु सारे शुभ कार्यों में वर्जित है ।

निधनव्ययधर्मस्थः, केन्द्रगो वा धरासुतः ।
अपि सौख्यसहस्त्राणि, विनाशयति पुष्टिमान् ॥१॥

निधन, व्यय, धर्म और केन्द्र में रहने वाला पुष्ट मंगल हजारों सुखों को भी नष्ट कर देता है ।

बलीयसि सुहृद्दृष्टे, केन्द्रस्थे रविनन्दने ।

त्रिकोणके च नेष्यन्ते, शुभारम्भा मनीषिभिः ॥१॥

मित्र की दृष्टि वाला बलवान शनि केन्द्र में या त्रिकोण में हो तो बुद्धिमान शुभारम्भ किसी कार्य को नहीं करते ।

त्रिविक्रम के मत में—

त्याज्या लग्नेऽब्धयो मन्दात्, षण्ठे शुक्रेन्दुलग्नपाः ।

रन्ध्रे चन्द्रादयः पञ्च, सर्वेऽस्तेऽब्जगुरू समौ ॥ १ ॥

लग्न में शनि आदि चार ग्रह अर्थात् शनि, रवि, सोम, भोम, षष्टम भुवन में शुक्र, चन्द्र और लग्नपति, अष्टम भुवन में पाँच ग्रह सोम, भोम, बुध, गुरु और शुक्र तथा सातमें स्थान में सारे ग्रहों का त्याग करना चाहिये । कुछ का मत है कि सप्तम स्थान के चन्द्र और गुरु समान है ।

शौनक का मत—

लग्नस्थो वरमरणं, राहुर्दिशति द्युने कनीमरणम् ।

विवाह कुण्डली में लग्न स्थान में राहु हो तो वर मरण अवश्यंभावी है और सप्तम स्थान में राहु रहा हो तो कन्या की मृत्यु । लग्न का स्वामी अस्त क्रूर ग्रहयुक्त या क्रूर ग्रह की दृष्टि वाला हो तो अशुभ है । और भो—

अरिगय नोए वक्के, अत्थमिए लग्गरासिनिसिनाहे ।

अबले रविगुरुसुक्के, सामिअदिट्ठं चयह लग्गं ॥ १ ॥

यदि लग्नपति और चंद्र शत्रुघर के नीच, वक्री, या अस्तंगत हो, तथा रवि, गुरु और शुक्र निर्बल हो तथा लग्न में स्वामी की दृष्टि नहीं पड़ती हो तो उस लग्न का त्याग करना चाहिये ।

लल्ल के मत में—

सौम्यग्रहयुक्तमपि प्रायः शशिनं वर्जयेल्लग्ने ।

सौम्य ग्रह के साथ में भी रहे हुए चन्द्र को प्रायः लग्न में वर्जित करना चाहिये । इसी प्रकार कर्तरि, जामित्र, युति, क्रांतिसाम्य और बुध पंचक दोष भी श्रेष्ठ कार्य में वर्जित है ।

कर्तरि— दो क्रूर ग्रहों के मध्य में यदि चंद्र या लग्न रहा हो तो कर्तरि दोष होता है । धन भुवन और व्यय में क्रूर ग्रह हो तो कर्तरि दोष होता है । चंद्र के दोनों तरफ क्रूर ग्रह हो तो चन्द्र क्रूर कर्तरि दोष होता है । द्वितीय भुवन में वक्री क्रूर ग्रह हो और द्वादश भुवन में अतिचारी ग्रह हो तो अतिदुष्ट कर्तरि दोष माना जाता है । उसी प्रकार धन भुवन का ग्रह मध्यम गति वाला या अतिचारी हो और व्यय स्थान का ग्रह अल्प गति वाला हो या वक्री हो तो अल्प कर्तरि दोष होता है । यह दोष विवाह, प्रतिष्ठा और दीक्षा में वर्जित है ।

श्री उदयप्रभसूरि के मत में—

नेष्टौ लग्नविधू केन्द्र-स्थितसौम्यौ तु तौ मतौ ॥

कर्तरि और जामित्र योग नेष्ट है, किन्तु स्वयं के केन्द्र में सौम्य ग्रह रहे हों तो नेष्ट लग्न और चन्द्र दोनों इष्ट हैं ।

भार्गव के मत में—

कर्तरि मृत्युकारक है । चन्द्र कर्तरि रोग कारक है किन्तु धन में सौम्यग्रह हो और व्यय में गुरु हो तो कर्तरि दोष का भंग हो जाता है ।

मुहूर्तचिन्तामणिकार का मत—

कर्तरिकारक ग्रह रिपु गृह में नीच का हो या अस्त का

हो तो दोष नहीं लगता या गुरु बलवान हो और तृतीय एवं एकादश स्थान में रवि हो तो भी कर्तरि दोष नहीं लगता है।

व्यवहार प्रकाश का मत—

चन्द्र के दोनों तरफ पन्द्रह अंश में क्रूर ग्रह हो तो वर्ज्य है। और भी—चन्द और लग्न के बारह अंश में क्रूर ग्रह हो तो कोई कार्य में शुभ नहीं है।

श्री पद्मप्रभसूरि के मत में—

राहु और मंगल के मध्य चन्द हो तो चन्द की क्रूर कर्तरि होती है तथा रवि राहु तथा शनि के मध्य हो तो रवि की क्रूर कर्तरि होती है।

जामित्र—

लग्न या चन्द्र से सातवां भुवन शुक्र या क्रूर ग्रह युक्त हो तो वह जामित्र दोष कहा जाता है। सप्तम भुवन का नाम जामित्र है। अतः इस सम्बन्ध का दोष भी जामित्र दोष कहा जाता है।

सारंग के मत में—

सातवें भुवन में रवि, शुक्र, शनि और राहु हो तो कन्या विधवा होती है और मंगल हो तो कन्या मृत्यु को प्राप्त करती है। कहीं कहा है—कन्या महा दुखी होती है।

हरिभद्रसूरि के मत में—

दीक्षा कुण्डली में मंगल, शुक्र या शनि चन्द्र से सातवें हो तो दीक्षित मनुष्य कुशील, शस्त्रघात और रोग से पीड़ित होता है।

श्री उदयप्रभसूरि के मत में—

दीक्षा और विवाह के लिये लग्न से सप्तम स्थान के कोई भी शुभाशुभ ग्रह से जामित्र दोष होने का बताते हैं।

सप्तर्षि का मत—

वैधव्यं सापत्न्यं, वन्ध्यात्वं निष्प्रजत्वं दौर्भाग्यम् ।
वेश्यात्वं गर्भच्युति-रर्काद्या लग्नतोऽस्तगाः कुर्युः ॥१॥

लग्न से सातवें भुवन में रहने वाले सूर्यादि ग्रह वैधव्य, शोक, वन्ध्यापन, संततिनाश, दौर्भाग्य, वैश्याकर्म और गर्भपात जैसे दुःखों को कराता है ।

शौनक के मत में—

विवाह कुण्डली में बुध अष्टम स्थान में हो तो तीन मास में ही कन्या मर जाती है और बुध सातवाँ हो तो कन्या ही सात वर्ष में पति को मार देती है ।

देवल के मत में—

सप्तम स्थान में गुरु और शुक्र हो तो अनुक्रम से पुरुष तथा कन्या के आयु की क्षति होती है । यदि जामित्र स्थान में दो क्रूर ग्रह हो और दो सौम्य ग्रह हो तो कन्या तीन वर्ष में ही भयंकर दारिद्रता की भागी होती है ।

श्री उदयप्रभसूरि के मत में—

केन्द्र में रहे सौम्य ग्रह जामित्र दोष का नाश करते हैं, तथा सातवें स्थान के अतिरिक्त केन्द्र तथा त्रिकोण में रहने वाले बुध अथवा गुरु पादेन या सम्पूर्ण दृष्टि से चन्द को देखे तो चन्द के जामित्र दोष का भंग हो जाता है । इष्ट नवांश से पचपनवें नवमांश में शुक्र या क्रूर ग्रह हो तो 'परमजामित्र' दोष होता है । जो सर्वथा त्याज्य है । स्त्रियों के जामित्र दोष के लिये यह नियम है कि—सातवें स्थान में क्रूर ग्रह हो किन्तु लग्नपति या सौम्य ग्रह की दृष्टि या युति नहीं होती हो तो वह युवती पुत्र विहीन होती है और सप्तमेष शुक्र और रवि ये युवती के स्वामी, सासु

ओर श्वसुर है। ये कुण्डली में तीनों उच्च हो तो पति आदि सबको सुखकर है।

युति—

चन्द्र के साथ दूसरा ग्रह हो तो युति दोष कहा जाता है।

विवाह दीक्षयोर्लग्ने, द्यूनेन्दू ग्रहर्वजितौ।

विवाह और दीक्षा की लग्न कुण्डली में सातवाँ स्थान व चन्द्र ग्रह बिना के हो तो श्रेयस्कर है।

चन्द्रे सूर्यादि संयुक्ते, दारिद्रयं मरणं शुभम्।
सौख्यं सापत्न्य-वैराग्यं, पापद्वययुते मृतिः ॥ १ ॥

विवाह कुण्डली में रवि आदि ग्रहों के साथ रहा हुआ चन्द्र कन्या को अनुक्रम से दरिद्रता, मृत्यु शुभ, सुख, शोक और वैराग्य कराता है और यदि दो पाप ग्रहों के साथ चन्द्र हो तो मृत्यु होती है। यह चिंतामणि तथा दैवज्ञवल्लभ का मत है कि एक से अधिक क्रूर ग्रह या सौम्य ग्रह के साथ रहा चन्द्र दीक्षित की मृत्यु कराता है।

चन्द्रः क्रमाद् ग्रहैः साक-मग्निभयमग्निभयं।
संपदं महिमानं च, सौख्यं मृत्युं करोति हि ॥१॥

ग्रहों के साथ रहने वाला चन्द्र अनुक्रम से अग्निभय, संपदा महिमा, सुख और मृत्यु कारक है। इसके ऊपर से बुध, गुरु और शुक्र के साथ चन्द्र शुभ है और अन्य के साथ अशुभ है। विवाह में तो अवश्य ही चन्द्र की युति का त्याग करना चाहिये। विवाह कुण्डली में राहु तथा केतु के साथ चन्द्र हो तो कन्या दुःशीला व परिव्राजिका होती है। चन्द्र पृथक नक्षत्र में हो तो ग्रहों के दक्षिण में चलता हो तो एक राशि में दूसरे ग्रहों के साथ रहा चन्द्र अशुभ नहीं है।

लग्नाम्बुसप्तव्योमस्थो, भवेत् क्रूरग्रहोविधोः ।
आपोड़ा चैव संपोडा, भृग्वाद्याः वर्तिताः क्रमात् ॥ १ ॥

चन्द्र से १-४-७-१० भुवन में क्रूर ग्रह हो तो अनुक्रम से आपीडा, संपोडा, मृग्वाद्य और वर्तितायोग होता है, जिसमें कार्य करने से बंधु, स्त्री और कार्य की क्षति होती है ।

विलग्नस्थोऽष्टमो राशि-र्जन्मलग्नात् सजन्मभात् ।
न शुभः सर्वकार्येषु, लग्नाच्चन्द्रस्तथाऽष्टमः ॥ १ ॥

जन्म लग्न या जन्म नक्षत्र से आटवीं राशि लग्न में हो तथा आठवें भुवन में चंद्र हो तो सारे कार्यों में श्रेष्ठ नहीं है । चंद्र के युति दोष की निवृत्ति भी होती है ।

क्रांतिसाम्य—

सूर्य और चंद्र के भुक्त राशि अंश कला और विकला को इकट्ठा करने से यदि सम्पूर्ण छः और बारह का अंक आवे तो क्रांतिसाम्य दोष होता है । उसमें छः राशिवाले क्रांतिसाम्य का नाम व्यतिपति और बारह राशि वाले क्रांतिसाम्य का नाम पात तथा वैधृत है । सूर्य नक्षत्र और चन्द्र नक्षत्र के समन्वय से विष्कंभादि सत्ताइस योग होते हैं उनमें गंड से वज्र और शुक्ल से प्रीति तक के योगों में क्रांतिसाम्य का संभव होता है । क्रांतिसाम्य नक्षत्र तीन दिन तक वर्जित करना चाहिये ।

गतमेष्यद्वर्तमानं, सुखलक्ष्म्यायुषां क्रमात् ।
क्रान्तिसाम्यं सृजेद् हानिं, त्र्यहं तेनाऽत्र वर्ज्यताम् ॥ १ ॥

पूर्व दिन में हुआ क्रांतिसाम्य, पीछे के दूसरे दिन होने वाला क्रांतिसाम्य अनुक्रम से सुख, लक्ष्मी और आयुष्य को नष्ट करता है । अतः क्रांतिसाम्य का दिन उससे पूर्व का दिन और

उसके बाद का दिन, इस प्रकार तीन दिन त्यागने चाहिये । उसके फल के लिये 'वल्लभ' के विचार—

खड्गाहतोऽग्निना दग्धो, नागदष्टोऽपि जीवति ।
क्रान्तिसाम्य कृतोद्वाहो, म्रियते नाऽत्र संशयः ॥ १ ॥

खड्गाहत, अग्नि से दग्ध, सर्प से दंशित तो जिन्दे रह सकते हैं किन्तु क्रान्तिसाम्य में तो विवाहित अवश्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । क्रान्तिसाम्य तो छः या बारह राश्यंक आते हैं तभी होता है । । इसमें एक अंश का भी फेरफार हो तो इष्टकाल में क्रान्तिसाम्य नहीं होता है ।

बुधपंचक—

सद्योरिष्ट योग का भी त्याग करना चाहिये, क्योंकि इसका ही नाम बुधपचक और बाणपंचक है । उदय से गये हुए लग्न का प्रमाण, संक्रान्ति भुक्त दिन तथा एक मिला कर बुध को पांच स्थानों में अलग-अलग लिखना चाहिये । फिर उसमें अनुक्रम से ६-३-१-८ और ७ मिलाकर नौ से भाग देना चाहिये, यदि शेष में पांच रहे तो बाणपंचक होता है और इन पांचों का फल अनुक्रम से क्लेश, अग्निभय, नृपभय, चोर उपद्रव और मृत्यु है । अतः प्रतिष्ठा और विवाह में उसका त्याग करना चाहिये ।

पांचों राशियों के शेष योग को नौ से भाग देने पर शेष पांच रहे, 'रात्रित्याज्य' बाण पंचक होता है और उस समय कार्य करने से सर्प भय होता है । यहां लग्न इष्टकाल का रात्रि का लेना चाहिये ।

ज्योतिष हीर में कहा है—

पुरुषनाम, नक्षत्र और रवि नक्षत्र का योग करके नौ से भाग देना चाहिये, जो शेष रहे उनका नाम अनुक्रम से खर, हय,

गज, मेष, जंबुक, सिंह, काक, मयूर और हंस हैं। इनमें खर, मेष, जंबुक, सिंह और काक ये पांच योग दुष्ट हैं। इसी प्रकार इष्ट चन्द्र नक्षत्र और पुरुषनाम नक्षत्र का योग कर बारह से भाग देकर जो शेष आये उन्हें क्रम से हाथी वृषभ महिष हंस श्वान काक हंस मेष गर्दभ जंबुक नाग और गरुड़ कहा जाता है। इन सबका फल नाम के अनुरूप है। और भी कहा है—

चैत्रादि गत मासों को दुगना कर उसमें वर्तमान महिने के दिन मिला कर सात से भाग देने पर जो शेष रहे उनका फल लक्ष्मी, कलह, आनन्द, मृत्यु, धर्म सम और विजय है। आरम्भ सिद्धि में सम के बदले क्षय फल दिया गया है।

रवि नक्षत्र से चालू दिनांक तिथी वार और नक्षत्र के योग को ९ से भाग देने पर शेष में सात रहे तो 'हिंबर' नाम का निंद्य योग होता है। इस योग को विशेष प्रवृत्ति दक्षिण में है। अन्य स्थल में भो कहा है—

गततिथ्यायुतलग्ने, नन्दहतेः पंचकं क्रमाज्ज्ञेयम्।
मृतिरग्निर्नो नृपति-र्नो चोरो नो गदो नेति ॥१॥

शुक्ला प्रतिपदा से चालू तिथि तक और गत तिथि एवं लग्न का योग करके नौ से भाग देना चाहिये। शेष में यदि १ से ९ तक के अंक रहे तो अनुक्रम से १ मृत्युपंचक २ अग्निपंचक ३ नो पंचक ४ नृपपंचक ५ निष्पंचक ६ चोर पंचक ७ निष्पंचक ८ रोगपंचक ९ निष्पंचक है।

याने चौरं व्रते रोगं, ग्रहारम्भेऽग्निपञ्चकम्।
चतुर्थं राजसेवायां, मृत्युं सर्वत्र वर्जयेत् ॥२॥

प्रयाण में चोर पंचक, व्रत में रोग पंचक, ग्रहारंभ में अग्नि पंचक, राजसेवा में राजपंचक और सर्वत्र मृत्यु पंचक को

छोड़ देना चाहिये ।

जैसे कि १६४८ के कार्तिक शुक्ला १५ तक तिथि १३ गई है और पूर्णिमा को सुबह सातवां लग्न है इनका योग २० होता है इनमें ६ का भाग देने पर शेष २ रहते हैं अतः कार्तिक शुक्ला १५ को सुबह अग्नि पंचक है । अतः उस दिन घर का कोई शुभ काम नहीं करना चाहिये ।

१ चन्द्र की मृतावस्था, यम, सर्प राक्षस और अग्नि के मुहूर्त अर्थात् २-१२-२०-२१-२२-३० मुहूर्त और क्षय तिथि या वृद्धि तिथि इन तीनों का योग हो तो लग्न अशुभ फल देता है ।

२ क्रूर ग्रह की लत्ता हो, उपग्रह हो और वृहत्आयुध वाला पात हो तो उस लग्न में किया हुआ कार्य अशुभ फल देता है ।

३ लग्न में कर्तरी दोष हो, लग्नेश के साथ क्रूर ग्रह हो और सौम्य ग्रह भी क्रूर या आपोकिलम में हो तो लग्न अशुभ को लिये होता है ।

४ जन्म राशि सौम्यग्रहयुक्त या सौम्यग्रह से देखी गई न हो लग्न भी सौम्यग्रह की दृष्टिवाला न हो तथा केन्द्र में सौम्यग्रह नहीं हो तो इन तीन योग से युक्त विलग्न लग्न शुद्धि को नष्ट करते हैं ।

५ शुद्धि के विषय में सूर्य और गुरु सम रेखा वाले हो और लग्न में भी मध्यम फल वाले हो तथा केन्द्र में दो सौम्य ग्रह नहीं रहे हो तो भी यह विलग्न शुभ कार्य में वर्जित है ।

६ चन्द्र शुक्र के साथ हो, नवमें भुवन में अकेला पाप ग्रह हो और द्वादश स्थान में शनि हो तो दुष्ट योग होता है ।

७ फाल्गुन मास में मीन संक्रान्ति हो, जन्म तिथि हो जन्म मास हो और द्वादश या चतुर्थ लग्न हो तो उस समय का लग्न अशुभ फल देता है। इनमें कुछ दोष साध्य है तथा उनका प्रतिकार संभव है।

विलग्न शुद्धि—

तिथिवासर नक्षत्र–योगलग्नक्षणादिजान् ।
सबलान् हरतो दोषान्, गुरुशुक्रौ विलग्नगौ ॥ १ ॥
त्रिकोणकेन्द्रगावापि, भङ्गं दोषस्य कुर्वते ।
वक्रनीचारिगावापि, ज्ञजीवभृगुभानवः ॥ २ ॥

लग्न में रहा गुरु और शुक्र तिथि, वार, नक्षत्र, योग, लग्न और क्षणादि से बलवान दोषों को नष्ट करता है। किन्तु त्रिकोण और केन्द्र में रहा बुध, गुरु, शुक्र भी दोषों को नष्ट करते हैं। उसी प्रकार वक्री, नीच या शत्रुग्रही बुध, गुरु और रवि शुभ हो तो दोषों का नाश करता है।

वक्री नीच या शत्रुगृहि गुरु भी स्वयं के उच्च में स्वगृह में और बुध और शुक्र के साथ रहा हो तो शुभ है।

एकार्गलोपग्रहपातलत्ता जामित्रकर्तर्युदयादिदोषाः ।
लग्नेऽर्कचन्द्रेज्यबले विनश्यन्त्यर्कोदये यद्वदहो तमांसि ॥१॥

जैसे सूर्योदय होते ही अंधकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार सूर्य, चन्द्र और गुरु से बलवान लग्न हो तो एकार्गल, उपग्रह, पात, लत्ता, जामित्र, कर्तरि और उदयादि दोष नष्ट होते हैं।'

उदयप्रभसूरि के मत में—

लग्नजातान्नवांशोत्थान्, क्रूरदृष्टिकृतानपि ।
हन्याज्जीवस्तनौ दोषान्, व्याधीन् धन्वन्तरिर्यथा ॥ १ ॥

जैसे धन्वतरि सारे रोगों को मिटाने में समर्थ है वैसे ही लग्न में गुरु लग्नजात, नवांशोत्पन्न और क्रूर दृष्टि से उत्पन्न सारे दोषों को नष्ट करता है।

केन्द्र और त्रिकोण में गुरु—

सौम्यवाक्पतिशुक्राणां, य एकोऽपि बलोत्कटः।
क्रूरैरयुक्तः केन्द्रस्थः, सद्योऽरिष्टं पिनाष्टि सः॥१॥

बुध, गुरु और शुक्र इनमें कोई भी एक ग्रह बलवान हो क्रूर ग्रह के साथ न हो और केन्द्र में रहा हो तो वे तत्काल अरिष्ट का नाश करते हैं।

व्यवहार प्रकाश—

हन्ति शतं दोषाणां, शशिजः समुदायिनां हि केन्द्रस्थः।
शुक्रो हन्ति सहस्त्रं, बली गुरुर्लक्षमेकं हि॥ १ ॥

केन्द्र में रहने वाला बुध एक साथ रहने वाले सौ दोषों को, शुक्र हजार दोषों को और गुरु लाख दोषों को नष्ट करता है। ३-६-११ भुवन में रहने वाला रवि भी सामान्य दोषों को नष्ट करता है।

त्रयः सौम्यग्रहा यत्र, लग्ने स्युर्बलवत्तराः।
बलवत्तदपि विज्ञेयं, शेषैर्हीनबलैरपि ॥ १ ॥

जिस लग्न में तीन सौम्य ग्रह बलवान हों वह लग्न अन्य हीन बल वाले ग्रहों के होने पर भी बलवान है।

प्रथम भुवन का नाम उदय और सप्तम भुवन का नाम अस्त है जिससे उसकी उदित और अस्तगत नवांश से जो शुद्धि निश्चित की जाती है। वह उदयास्त शुद्धि कही जाती है।

पश्यन्नंशाधिपो लग्नं, भवेदुदयशुद्धये ।

अस्तांशेशस्तु लग्नास्त-मस्तशुद्धयै विलोकयन् ।। १ ।।

लग्न कुण्डली में उदित नवांश का पति नवमांश को देखे तो उदयशुद्धि के लिये होता है और सप्तम नवमांश का पति सप्तम स्थान को देखता हो तो वह अस्तशुद्धि के लिये होता है ।

भास्कर के मत में—

नाथाऽयुक्तेक्षिताः लग्न-भार्या पुत्र नवांशकाः

क्रमात् पुंस्त्रीसुतान् घ्नन्ति, न घ्नन्ति युतवीक्षिताः ।।१।।

नवमांश कुण्डली में लग्न कलत्र भुवन और पुत्र भुवन के अंश अपने अपने पति के साथ जुड़े हुए या पति से जुड़े हुए न हो तो क्रम से—पुरुष, स्त्री और पुत्र का नाश करते हैं । किन्तु अपने पति के साथ जुड़े हुए या पति की दृष्टि वाले हो तो पुरुष का, स्त्री का या पुत्र का नाश नहीं करते हैं । इस उदयास्त की शुद्धि हर एक कार्य में देखनी चाहिये ।

नारचंद्र—

केवल अस्तशुद्धि की आवश्यकता है किन्तु अस्तशुद्धि होनी ही चाहिये ऐसा कोई नियम नहीं है । मात्र स्त्री के लिये अस्त-शुद्धि चाहिये ।

श्रीउदयप्रभसूरि का मत—

प्रतिष्टा और दीक्षा में अस्तशुद्धि होनी चाहिये ऐसा आग्रह नहीं है, जबकि श्री हरिभद्रसूरि तो कहते हैं— व्रत और प्रतिष्ठा में उदय और अस्त की शुद्धि विना का लग्न भी कुछ आचार्य शुभ मानते हैं । इसी प्रकार ग्रहों की अस्तदशा पर भी विचार करते हैं । सूर्य के १२-१७-१३-११-६ और १४ त्रिशांश के बीच

चन्द्रादि ग्रह अस्त होते हैं और सूर्य रात्रि के चार प्रहर अस्त होता है। यदि सूर्यास्त हो जाय तो दीक्षा और प्रतिष्ठा वर्जित है। सूर्य के किरणों में चन्द्र अस्त हो जाय तो दिन भी शुभ कार्य में वर्जित है और चन्द्र निर्बल हो तो तारा बल से कार्य चलता है।

गुरु और शुक्र का अस्त हो तो लग्न अशुभ है। क्योंकि गुरु-शुक्र के अस्त में विवाह करने से पुरुष और स्त्री की मृत्यु संभव है।

जीर्णः शुक्रोऽहानि पञ्च प्रतीच्यां,
प्राच्यां बाल स्त्रीण्यहानि स हेयः।
त्रिघ्नान्येवं तानि दिग्वैपरीत्ये,
पक्षं जीवोऽन्ये तु सप्ताहमाहुः ॥ १ ॥

शुक्र पश्चिम में पांच दिन जीर्ण होता है और पूर्व में तीन दिन तक बालक रहता है। इसके विपरीत उदयास्त में तीन गुणी अवस्था होती है। अर्थात् शुक्र पूर्व में पन्द्रह दिन वृद्ध और पश्चिम में नव दिन बालक होता है। वह बाल और वृद्ध शुक्र प्रतिष्ठा, उद्यापन आदि काम में वर्जित करना चाहिये। गुरु पंद्रह दिन बालक और पन्द्रह दिन वृद्ध रहता है। इनका भी शुभ कार्य में त्याग करना चाहिये। कुछ गुरु और शुक्र के बालक और वृद्धत्व के सात-सात दिन कहते हैं। किसी-किसी ग्रंथ में बालक गुरु के तीन दिन और वृद्ध गुरु के पांच दिन वर्ज्य कहे हैं।

श्री उदयप्रभसूरि के मत में—

अस्त दिनों को साथ गिनते हुए गुरु के ६२, शुक्र के १३ और पूर्वास्त शुक्र के १०१ दिन शुभ कार्य में त्याज्य है।

दीक्षा में बलवान शुक्र को अशुभ माना है। इससे शुक्रास्त में या शुक्र के निर्बलत्व में दीक्षा देना शुभकारक है।

सारङ्ग—

गुरु अथवा शुक्र अस्त हो और उसी समय यदि बुध का उदय होता हो तो ऐसे समय में विवाहित कन्या आठ पुत्रों की माता होती है । अस्तंगत बुध शुभ कार्य में मध्यम फल वाला है।

दैवज्ञवल्लभ—

राहौ दृष्टे शुभं कार्यं, वर्जयेद् दिवसाष्टकम् ।

त्यक्त्वा वेतालसंसिद्धि, पापदं भयदं तथा ॥ १ ॥

राहु के दर्शन होने के दिन से आठ दिन तक भूतसाधना पाप देने वाले तथा भय देने वाले कार्यों को छोड़ कर अन्य शुभ कार्य नहीं करने चाहिये और केतु के उदयदिन भी शुभ कार्य सफल नहीं होते हैं ।

जन्मराशि गोचर और वामवेध—

शिष्य स्थापक कन्यानां, जीवेन्द्वर्कबलानि च ।

इष्ट लग्न काल के समय दीक्षा लेने वाला शिष्य, प्रतिष्ठा कराने वाला तथा विवाह करने वाली कन्या के गुरु, चन्द्र और सूर्य के बल को देखना चाहिये और गुरुवर और प्रतिमा का चन्द्र बल देखना चाहिये जो जन्म राशि से देखा जाता है । निम्न प्रकार से देखा जा सकता है ।

जन्मराशि से ३–६–१०–११ स्थान में रवि हो १-३-६-७-१०-११ स्थान में चन्द्र हो, ३–६–११ स्थान में मंगल हो २-४-६–८–१०–११ में बुध हो, २–५–७–९–११ स्थान में गुरु हो, १-२-३-४-५-८-९-११-१२ स्थान में शुक्र हो, ३–६–११ में शनि, ३–६–१०-११ भुवन में राहु हो तो शुभ है । यदि शुक्ल पक्ष हो तो जन्मराशि से २–५–९ वें स्थान में रहने वाला चन्द्र भी शुभ है । पूर्णभद्र

के अनुसार ८वें स्थान में रहने वाला शुक्र शुभ नहीं है। कुछ आचार्यों के मत में इष्टकाल का स्पष्ट राहु भी जन्म राशि से ३-६-७-१०-११ भुवन में हो तो शुभ है तथा मेषादि बारह राशि वालों को अनुक्रम से १-५-९-२-६-१०-३-७-४-८-११ और १२ वां चन्द्र घातचन्द्र कहा जाता है। इनका किसी भी शुभ कार्य में त्याग करना चाहिये।

त्रिषष्ठदशमे चैवं-कादशमे विशेषतः।
शरीरे पुष्टिकर्त्ता च, शनिः प्रोक्तो न संशयः ॥ १ ॥

जन्मराशि से ३-६-१० और ११ वें स्थान में रहने वाला शनि शरीर को पुष्ट करता है। इसमें कोई संशय नहीं है।

जन्म राशि से ५-७-९ स्थान में रहने वाला शनि मध्यम है और जन्म राशि से १-२-४-८ और १२ वें स्थान में रहने वाला शनि दुष्ट है।

शनि एक राशि में २॥ वर्ष रहता है। जब जन्म राशि से १-२-४-८ या १२ वीं राशि में शनि हो तब पनोती बैठी कही जाती है, उसमें जन्म राशि से १२-१ और २ भुवन में शनि परिभ्रमण करता है तब ७॥ वर्ष जाते हैं और उसे सार्धसप्त (साढे साती) पनोती इस संज्ञा से पुकारा जाता है।

जिस दिन शनि की पनोती बैठे उस दिन जन्म राशि से १-६-११ स्थान में चन्द्र हो तो सोने के पाये और २-५-९ स्थान में चन्द्र हो तो चांदी (रूपा) के पाये (पाद), ३-७-१० स्थान में चन्द्र हो तो तांबे के पाये और ४-८-१२ स्थान में चन्द्र हो तो लोहे के पाये पनोती बैठी हुई जाननी चाहिये। लोह और स्वर्ण का पाया दुःखकारक है। स्वयं के नाम की राशि में जिस दिन सूर्य का संक्रमण हो उस दिन से लगाकर चलते दिनों तक दिन गिनने चाहिये। जितने दिन गये हों उनमें अनुक्रम से २० दिन

रवि की, ५० दिन चंद्र की, २८ दिन मंगल की, ५६ दिन बुध की, ३६ दिन शनि की, ३३ दिन गुरु की, ३२ दिन राहु की, ३४ दिन केतू की, ७० दिन शुक्र की दिन दशा है। इस दिन दशा का जो ग्रह हो वह ग्रह ग्रहपति कहा जाता है। उनका फल अनुक्रम से हानि, धन प्राप्ति, रोग, लक्ष्मी, दीनता, लक्ष्मी, बंधन, भय और धन प्राप्ति है।

अष्टवर्ग की शुद्धि के लिये नारचंद्र का मत—

रविशशिजीवैः सबलैः, शुभदः स्याद् गोचरोऽथ तदभावे।
ग्राह्याऽष्टवर्गशुद्धि-र्जननविलग्नग्रहेभ्यस्तु ॥ १ ॥

बलवान रवि, शशि और गुरु से गोचर शुभदायी है किन्तु उसका यदि अभाव हो, जन्म, लग्न और ग्रहों से कृत अष्टवर्ग की शुद्धि ग्रहण करनी चाहिये।

सूर्यादि ग्रह में कोई भी ग्रह निर्बल हो या प्रतिकूल एवं नेष्ट हो तो अनुक्रम से श्री पद्मप्रभजी, विमलनाथजी, आदिनाथजी, सुविधिनाथजी, मुनिसुव्रतस्वामी, नेमीनाथजी, और पार्श्वनाथ प्रभु की परिकर★ (परधर) वाली प्रतिमा की पूजा करनी चाहिये जिससे शांति हो जाय।

वेध के बिना कार्य करने वाले मनुष्य हताश होते हैं अतः गोचर शुद्धि करने के पश्चात् हरेक ग्रह की वेध से हुई अशुद्धि और वामवेध से हुई शुद्धि देखनी चाहिये।

ग्रहों के शुभ स्थान और वेधक स्थान इस प्रमाण से है—

★ परिकर वाली प्रतिमा के आसन में नवग्रह चिन्ह होते हैं, अतः उनकी पूजा करनी चाहिये। यदि यह न मिल सके तो परिकर रहित प्रतिमा की पूजा करनी चाहिये।

रवि का शुभ स्थान ३-६-१०-११ है और क्रम से वेधक स्थान ९-१२-४-५ है ।

चन्द्र का शुभ स्थान १-३-६-७-१०-११ है और अनुक्रम से वेधक स्थान ५-९-१२-२-४-८ है ।

मङ्गल का शुभ स्थान ३-६-११ है और अनुक्रम से वेधक स्थान १२-४-९ है ।

बुध का शुभ स्थान २-४-६-८-१०-११ है और अनुक्रम से वेधक स्थान ५-३-९-१-८-१२ है ।

गुरु का शुभ स्थान २-५-७-९-११ है और अनुक्रम से वेधक स्थान १२-४-३-१०-८ है ।

शुक्र का शुभ स्थान १-२-३-४-५-८-९-११-१२ है और अनुक्रम से वेधक स्थान ८-७-१-१०-९-५-११-३-६ है ।

शनि का शुभ स्थान ३-६-११ है और अनुक्रम से वेधक स्थान १२-९-४ है ।

इस प्रकार शुभ स्थान में रहता हुआ ग्रह उतने ही वेधक स्थान में रहने वाले वेधक स्थान से युक्त होने पर अशुभ हो जाता है और वेधक स्थान में रहने वाला अशुभ ग्रह शुभ स्थान के ग्रह से युक्त होने पर सबल हो जाता है । किन्तु पिताग्रह और पुत्र ग्रह का परस्पर वेध नहीं होता है ।

तीसरे स्थान में रवि शुभ हो और नवम स्थान में मङ्गल हो तो रवि का वेध हो जाता है और अशुभ होता है और निर्बल रवि नवम भुवन में हो तो तीसरे भुवन में रहे मङ्गल के वामवेध से शुभ हो जाता है । किन्तु मङ्गल के भुवन में शनि हो तो यह परिवर्तन नहीं होता है और सोम व बुध का भी वेध नहीं होता है ।

॥ वामवेध चक्रम् ॥

शुभ स्थान	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१		५				८	
२				५	१२	७	
३	९	९	१२			१	१२
४				३		१०	
५					४	९	
६	१२	१२	४	९			९
७		२			३		
८				१		५	
९					१०	११	
१०	४	४		८			
११	५	८	९	१२	८	३	४
१२						६	

ग्रहों का बलाबल—

पूर्व का पति सूर्य है उसके पश्चात् अग्नि, दक्षिण, नैऋत्य पश्चिम, वायव्य, उत्तर और ईशान के अधिपति अनुक्रम से शुक्र, मङ्गल, राहु, शनि, चन्द्र, बुध और गुरु है तथा ब्राह्मण वर्ण के स्वामी गुरु और शुक्र है, क्षत्रिय वर्ण के स्वामी रवि और मंगल

है, वैश्य वर्ण का स्वामी चन्द्र है, शूद्र का स्वामी बुध है तथा सूत्रधार आदि संकर जातियों का स्वामी शनि है ।

लग्न भुवन में बारहवां, पहला और दूसरा स्थान पूर्व दिशा में है, उसमें गुरु और बुध बलवान हैं । तीसरा, चौथा और पांचवां भुवन उत्तर दिशा में है । उनमें शुक्र और चन्द्र बलवान है । छट्ठा, सातवां और आठवां भुवन पश्चिम दिशा में है उनमें शनि बलवान है । नवम, दशम और एकादश भुवन दक्षिण दिशा में है, उनमें रवि और मङ्गल बलवान है ।

अन्य भी कहा है—

शुभराशौ शुभांशे वा, कारके धनवान् भवेत् ।
तदंशके शुभे केन्द्रे, राजा नूनं प्रजायते ।। १ ।।

जिसको जन्म कुण्डली में शुभ राशि और शुभ नवांश वाला कारक हो वह धनवान होता है तथा केन्द्र का शुभकारकांश हो तो वह निश्चय ही राजा होता है । ग्रहों का हर्ष स्थान चार प्रकार का है । प्रथम हर्ष स्थान अपना-अपना उच्च स्थान है । इसी प्रकार अन्य भी । इन चारों प्रकार के हर्ष स्थान में रहने वाला ग्रह 'हर्षी' माना जाता है ।

निर्बल और बलवान ग्रह के लिये 'प्रश्न प्रकाश' का मत—

पापः शीघ्रः शुभो वक्री, बालो वृद्धोऽरिभाऽस्तगः ।
नीचः पापान्तरेऽष्टस्थ, इत्युक्तो बलवर्जितः ।।१।।

अतिचारी क्रूर ग्रह, वक्री शुभ ग्रह, बाल, वृद्ध, शत्रु के घर में रहने वाला, अस्तंगत, नीच स्थान में रहने वाला, क्रूर ग्रह के साथ जुड़ा हुआ (अर्थात् दो क्रूर ग्रहों के मध्य रहने वाला) और आठवें भुवन में रहने वाला ग्रह निर्बल होता है ।

भुवनदीपक की वृत्ति में कहा है—

स्व-मित्रनीचगो वक्रः, स्वराश्यस्ताऽरिवर्गगः।
लग्नाद् द्वादशगः षष्ठः, क्रूरैर्युक्तोऽथ वीक्षितः॥ १॥
याम्यो राह्वास्य-पुच्छस्थो, बालो वृद्धोऽस्तगो जितः।
मुथुशिले मूशरिफे, पापैरित्यबलो ग्रहः॥ २॥

स्वनीचस्थान में रहने वाला, मित्र के नीच स्थान में रहने वाला वक्री, अपने घर से सातवें स्थान में रहने वाला, शत्रु के छः वर्ग में रहने वाला, द्वादश भुवन में रहने वाला, षष्ठम स्थान में रहने वाला, क्रूर ग्रहों से युक्त तथा क्रूर ग्रहों से वीक्षित दक्षिणायनस्थ राहु के मुख नक्षत्र में रहने वाला राहु के नक्षत्र से पन्द्रहवें नक्षत्र में रहने वाला बाल ग्रह, वृद्ध ग्रह अस्तंगत ग्रह, युद्धजित तथा शीघ्र गति वाले क्रूर ग्रह से हुए मुथुशिल और मूशरिफ योग वाला ग्रह निर्बल हैं। (आ० ४-४७)

दैवज्ञवल्लभ—

सौम्यदृष्ट अशुभ ग्रह तथा शत्रुदृष्ट या क्रूरदृष्ट सौम्य ग्रह भी निष्फल है।

ग्रहों का बल बीस प्रकार का—

स्व-मित्र—क्षोंच्च-मार्गस्थ-स्व-मित्रवर्गगो-दितः।
जयो चोत्तरचारो च, सुहृत्-सौम्यावलोकितः॥ १॥

त्रिकोणा-ऽऽयगतो लग्नाद्, हर्षी वर्गोत्तमांशगः।
मुथुशिलं मूशरिफं, यदि सौम्यैर्ग्रहैः सह॥ २॥

सर्वयोगे भवेदेवं, बलानां विंशतिर्ग्रहे।
यावद्बलयुताः खेटा-स्तावद्विंशोपकाः फलम्॥ ३॥

स्वग्रही, मित्रग्रही, स्वयं के नक्षत्र में रहा उच्च का मार्गी अपने छः वर्ग में रहने वाला, मित्र के वर्ग में रहने वाला, उदित होने वाला, जय प्राप्त करने वाला, उत्तरचारी, मित्रदृष्टि तथा सौम्य दृष्टि वाला, त्रिकोण में रहने वाला, लग्न से आप (११) भुवन में रहने वाला, हर्षी वर्गोत्तमनवांश में रहने वाला, सौम्यग्रह के सहित मुथुशिल योगवाला और सौम्य ग्रहों के साथ मूशरिफ योग वाला ग्रह सम्पूर्ण बलवान है । इस प्रकार से सारे योग होने से ग्रह में बीशवसा बल होता है । जितने ग्रह बलवान होते हैं उतना वसा फल माना जाता है ।

लल्ल के अनुसार—

दीप्त, स्वस्थ, मुदित, शांत, शक्त, प्रवृद्धवीर्य और अधिवीर्य ग्रह भी बलवान होता है ।

स्त्री राशि में स्त्री ग्रह बलवान है । पुरुष जाति में अस्त्री ग्रह बलवान है । शुक्ल पक्ष में सौम्य ग्रह बलवान तथा कृष्ण पक्ष में क्रूर ग्रह बलवान है ।

'पाकश्री' श्रो में तो मूल त्रिकोण और वक्र गति का समान फल दिखाया हुआ है और 'नरपतिजयचर्या' में कहा गया है—

सौम्य ग्रह वक्री हो तो अति शुभ है तथा क्रूर ग्रह वक्री हो तो अधिक क्रूर हो जाते हैं ।

ग्रहों का नैसर्गिक फल—

मन्दारसौम्यवाक्पति-सितचन्द्रार्का यथोत्तरं बलिनः ।
नैःसर्गिकबलमेतद्, बलसाम्ये स्यादधिकचिन्ता ॥ १ ॥

शनि, मंगल, बुध, गुरु शुक्र, चन्द्र और सूर्य उत्तरोत्तर अधिक बलवाले हैं, यह नैसर्गिक बल है इसका विचार बल साम्यता में आवश्यक है ।

पूर्णभद्र के मत में—

लग्नस्याद्यन्तमध्येषु, बलं पूर्णाल्पमध्यमम् ।

लग्न के आदि अंत और मध्यम में अनुक्रम से पूर्ण, अल्प और मध्यम बल है ।

लल्ल के मत में—

लग्नफलं त्वंशके स्पष्टम् ।

लग्न का फल अंश में स्पष्ट है अर्थात् लग्न से नवांश अधिक बलवान है ।

मुहूर्त चिन्तामणिकार के मत में—

वर्ष-मास-द्यु-होरेशै-र्वृद्धिः पञ्चोत्तरा फले ।

वर्षेश, मासेश, दिनेश और होरेश ग्रह से फल में पांच-पांच वसा की वृद्धि होती है । अर्थात् वर्षेश, पांच वसा, मासेश दस वसा, दिनेश पन्द्रह वसा और होरेश वीस वसा फल देता है ।

त्रैलोक्य प्रकाश का मत—

रूपा २० र्घ १० पाद ५ वीर्याः स्युः केन्द्रादिस्था नभश्चराः ।

आपोलिक में रहे हुए ग्रह पांच वसा, किन्तु फर में रहे ग्रह दस वसा और केन्द्र में रहे ग्रह वीस वसा फल देते हैं ।

अध्धुट्ठवीसा रविणो, पण ससिणो तिन्नि हुन्ति तह गुरुणो ।
दो दो बुह-सुक्काणं, सड्ढा सणि-भोम-राहूणं ।। १ ।।

सूर्य के साढे तीन, चंद्र के पांच, गुरु के तीन, बुध तथा शुक्र के दो और शनि, मंगल एवं राहु के डेढ-डेढ वसा होते हैं । ये सब मिल कर वीस वसा होते हैं ।

ग्रह की अष्टवर्ग शुद्धि—

स्वक्षेत्रस्थे बलं पूर्णं, पादोनं मित्रभे गृहे।
अर्धं समगृहे ज्ञेयं, पादं शत्रुगृहे स्थिते ॥ १ ॥

वक्रगृहे फलं द्विघ्नं, त्रिगुणं स्वोच्चसंस्थिते।
स्वभावजं फलं शीघ्रे, नीचस्थोऽर्धं फलं ग्रहः ॥२॥ (स.४४)

ग्रहों का स्वक्षेत्र में सम्पूर्ण, मित्र की राशि में पौना, समान ग्रह की राशि में आधा, शत्रु के घर में चौथे भाग का बल होता है। उसी प्रकार वक्री ग्रह का दुगना, उच्च ग्रह का तीन गुणा, अतिचारी का जितना स्वाभाविक है और नीच ग्रह का आधा फल मिलता है। इन वक्री ग्रहों का स्वाभाविक फल शुभ हो तो शुभ फल दुगुना और स्वाभाविक अशुभ फल हो तो वह दुगुना होता है।

प्रश्नप्रकाश का मत—

त्रिद्वयेकगुणार्धबलः खगः उच्चगवक्रशीघ्रनीचस्थः।

उच्च, वक्री, शीघ्र और नीच स्थान में रहने वाला ग्रह अनुक्रम से बल में—तीन गुणा, द्विगुणा तथा एक गुणा और आधा है।

त्रैलोक्य प्रकाश का मत—

मित्र-स्वर्क्ष-त्रिकोणोच्चे, फलं दत्तेऽङ्घ्रिवृद्धितः।

मित्र स्थान में, स्वयं के घर में, त्रिकोण में और उच्च स्थान में रहने वाले ग्रह एक-एक पाद की वृद्धि से फल देते हैं।

शौनक—

रूपं ग्रहस्य वर्गे, स्वदिने द्विगुणं स्वकालहोरायाम् ।
त्रिगुणमरिवर्गयोगे, फलस्य पात्यस्तृतीयांशः ॥१॥

ग्रह का फल स्वयं के वर्ग में समान है, स्वकाल होरा में त्रिगुणा और स्वदिन में द्विगुणा । शत्रु के वर्गयोग में तृतीय भाग (तृतीयांश) मात्र है ।

लल्ल के मत में—

बलिनः कण्टकसंस्था, वर्षाधिपमासदिवसहोरेशाः ।
द्वि गुणशुभाशुभफलदा, यथोत्तरं ते परिज्ञेयाः ॥१॥

केन्द्र में रहने वाला वर्षेश, मासेश, दिनेश और होरेश बलवान हैं तथा उत्तरोत्तर दुगुने-दुगुने फल को देने वाला है ।

पूर्णं खेटाष्टकबलं २०, ऊनं पादेन गोचरं १५ प्रोक्तम् ।
वेधोत्थमर्धबलं १०, पादबलं दृष्टितः खचरे ॥१॥

ग्रहों का आठ ग्रहों में सम्पूर्ण, गोचर का पौन, वेध का अर्ध और दृष्टि का एक पाद बल होता है ।

दैवज्ञवल्लभ—

बलवानुदितांशस्थः, शुद्धं स्थानफलं ग्रहः ।
दद्याद् वर्गोत्तमांशे च, मिश्रं शेषांशसंस्थितः ॥१॥

उदय के नवांश और वर्गोत्तम नवांश में रहने वाला ग्रह बलवान होता है और वह स्थान का पूर्ण फल देता है तथा दूसरे नवांश में रहने वाला ग्रह मध्यम फल देता है ।

प्रत्येक ग्रह का विशिष्ट सामर्थ्य—

नारचंद्र के अनुसार—

न तिथिर्न नक्षत्रं, न वारो न च चन्द्रमाः ।
लग्नमेकं प्रशंसन्ति, त्रिषडेकादशे रवौ ॥१॥

तृतीय, षष्टम और एकादशम भुवन में रवि हो तो वह लग्न प्रशंसनीय है। फिर तिथि वार और चन्द्र का वैशिष्य कोई विशेष महत्व नहीं रखता ।

कर्तुरनुकूलयोगिनि, शुभेक्षिते शशिनि वर्धमाने च ।
तारायोगेऽभीष्टे, सर्वेऽर्थाः सिद्धिमुपयान्ति ॥ १ ॥

कर्ता के अनुकूल योगवाला, शुभग्रह से प्रेक्षित वृद्धि प्राप्त चन्द्र हो तथा शुभ तारा का योग हो तो सर्व कार्य सिद्ध होते हैं।

सर्वत्राऽमृतरश्मे-र्बलं प्रकल्प्याऽन्यखेटजं पश्चात् ।
चिन्त्यं, यतः शशांके, बलिनि समस्ता ग्रहाः सबलाः ॥१॥

प्रथम सर्वत्रही चन्द्र का बल कल्पित करके फिर अन्य ग्रहों का बल सोचना चाहिये, क्योंकि चन्द्र बलवान हो तो सारे ग्रह स्वयं ही बलवान हो जाते हैं ।

श्री उदयप्रभसूरि के मत में—

सौम्य-वाक्पति-शुक्राणां, य एकोऽपि बलोत्कटः ।
क्रूरैरयुक्तः केन्द्रस्थः, सद्योऽरिष्टं पिनष्टि सः ॥ १ ॥

बुध, गुरु और शुक्र इनमें हर कोई एक ग्रह बलवान हो क्रूर ग्रह उसके साथ न रहा हुआ हो और स्वयं केन्द्र में हो तो तत्काल दुष्ट योग का नाश करते हैं ।

बलिष्ठः स्वोच्चगो दोषा-नशीतिं शीतरश्मिजः ।
वाक्पतिस्तु शतं हन्ति, सहस्त्रं चाऽसुरार्चितः ॥२॥

बलवान और उच्च स्थान में रहने वाला बुध, अस्सी दोषों को, गुरु सौ दोषों को और शुक्र हजार दोषों को दूर करता है।

बुधो विनाऽर्केण चतुष्टयेषु, स्थितः शतं हन्ति विलग्नदोषान् ।
शुक्रः सहस्त्रं विमनोभवेषु, सर्वत्र गीर्वाणगुरुस्तु लक्षम् ।।३।।

सूर्य रहित और चार केन्द्र स्थान में रहने वाला बुध, लग्न के सौ दोषों को नष्ट करता है। सूर्य रहित और सातवें भुवन के अतिरिक्त तीन केन्द्र स्थान में रहने वाला शुक्र हजार दोषों को तथा सूर्य रहित एवं चार केन्द्रस्थ गुरु लाख दोषों को नष्ट करता है।

व्यवहार प्रकाश के अनुसार—

त्रिकोण-केन्द्रगा वाऽपि, भङ्गं दोषस्यकुर्वते ।
वक्र-नीचा-ऽरिगा वाऽपि, ज्ञ-जीव-भृगवः शुभा- ।।१।।

बुध गुरु और शुक्र त्रिकोण या केन्द्र में हो तो दोषों का नाश करता है और वही यदि नीच या शत्रु स्थान का भी हो तो भी शुभ है।

वक्रा-ऽरि-नीचराशिस्थः, शुभकृत् प्रोच्यते गुरुः ।
स्वोच्चांशस्थः स्ववर्गस्थो, भृगुणा ज्ञेन वा युतः ।।१।।

गुरु वक्री हो, शत्रुगृह का हो या नीच स्थान का हो किंतु वह उच्च अंश का हो स्वर्ग में हो और बुध एवं शुक्र के साथ रहा हुआ हो तो शुभ है।

श्री हरिभद्रसूरि के मत में—

लग्गगओ चउ-सत्तम-दसमो अ गुरु भवे बलवं ।

प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम गुरु बलवान होता है।

ग्रह रेखाओं का विवरण—

श्रीउदयप्रभसूरि के मत में—

गोचरेण ग्रहाणां चेद्, आनुकूल्यं न दृश्यते ।
जन्म-लग्न-ग्रहेभ्योऽष्ट—वर्गेणालोकयेत्तदा ।। १ ।।

यदि ग्रहों के गोचर से अनुकूलता नहीं दिखती हो तो जन्म से, लग्न से, ग्रहों से उत्पन्न अष्टवर्ग से देखना चाहिये ।

तस्मादष्टकशुद्धि-गुरोर्विलोक्या रवेश्च चन्द्रस्य ।
निधनान्त्याम्बुगतेष्वपि, रेखाधिक्यात् सुशुद्धिः स्यात् ।।१।।

उससे गुरु, रवि और चन्द्र की अष्टवर्ग शुद्धि देखनी चाहिये । क्योंकि वे चतुर्थ, अष्टम और द्वादशम स्थान में रहे हो तो भी रेखा की अधिकता से (सम्पूर्ण) सारी शुद्धि हो जाती है ।

यह रेखा जन्म कुण्डली के लग्न और सूर्यादि से देखी जा सकती है ।

लग्न से ३-४-६-१०-११-१२, सूर्य से १-२-४-७-८-१०-११, चंद्र से ३-६-१०-११, मंगल से १-२-४-७-८-१०-११, बुध से ३-५-६-९-१०-११-१२, गुरु से ३-५-९-११, शुक्र से ६-७-८, शनि से १-२-४-७-८-१०-११ स्थान में तात्कालिक सूर्य हो तो शुभ रेखा आती है ।

लग्न से ३-६-१०-११ सूर्य से ३-६-८-१०-११, चन्द्र से १-३-६-१०-११, मंगल से २-३-५-६-९-१०-११, बुध से १-३-४-५-७-८-१०-११, गुरु से १-४-७-८-१०-११-१२, शुक्र से ३-४-५-७-९-१०-११ और शनि से ३-५-६ स्थान में तात्कालिक चन्द्र हो तो शुभ रेखा आती है ।

लग्न से १-३-६-१०-११, रवि से ३-५-६-१०-११, सोम से ३-६-१०-११, मङ्गल से १-२-४-७-८-१०-११, बुध से ३-५-६-११, गुरु से ६-१०-११-१२, शुक्र से ६-८-११-१२ और शनि से १-४-७-८-९-१०-११ स्थान में तात्कालिक मंगल हो तो शुभ रेखा आजाती है।

लग्न से १-२-४-६-८-१०-११, रवि से ५-६-९-११-१२, सोम से २-४-६-८-१०-११, मंगल से १-२-३-४-५-७-८-९-१०-११, बुध से १-३-५-६-९-१०-११-१२, गुरु से ६-८-११-१२, शुक्र से १-२-३-४-५-८-९-११ और शनि से १-२-३-४-५-७-८-९-१०-११ स्थान में तात्कालिक बुध हो तो शुभ रेखा आती है।

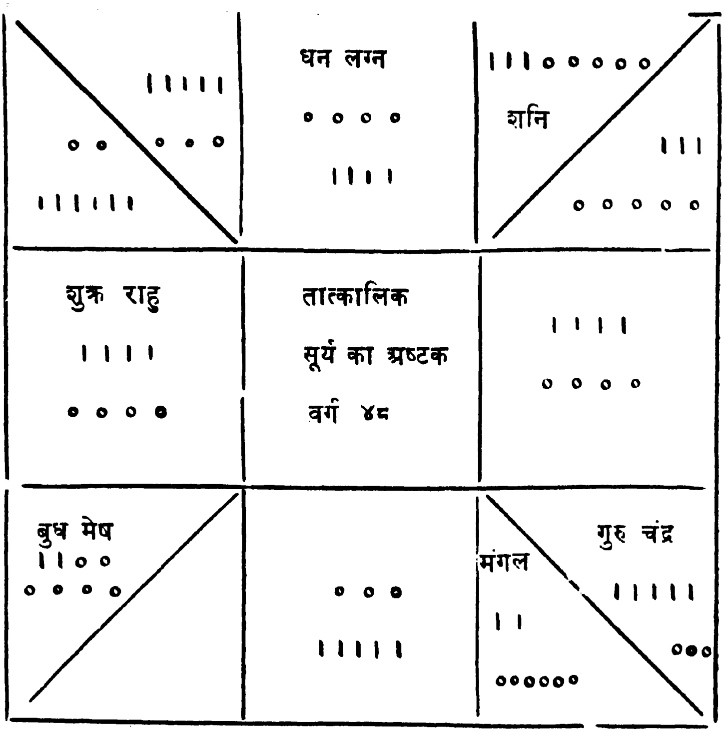
लग्न से १-२-४-५-६-७-९-१०-११ सूर्य से १-२-३-४-७-८-१०-११ सोम से २-५-७-९-११ मङ्गल से १-२-४-७-८-१०-११ बुध से १-२-४-५-६-९-१०-११ गुरु से १-२-३-४-७-८-१०-११ शुक्र से २-५-६-९-१०-११ और शनि से ३-५-६-१२ वें भुवन में तात्कालिक गुरु हो तो शुभ रेखा आती है।

लग्न से १-२-३-४-५-८-९-११ सूर्य से ८-११-१२ सोम से १-२-३-४-५-८-९-११-१२ मंगल से ३-५-६-९-११-१२ बुध से ३-५-६-९-११ गुरु से ५-८-९-१०-११ शुक्र से १-२-३-४-५-८-९-१०-११ और शनि से ३-४-५-८-९-१०-११ वें भुवन में रहने वाला तात्कालिक शुक्र शुभ है।

लग्न से १-३-४-६-१०-११ रवि से १-२-४-७-८-१०-११ चन्द्र से ३-६-११ मंगल से ३-५-६-१०-११-१२ बुध से ६-८-९-१०-११-१२ गुरु से ५-६-११-१२ शुक्र से ६-११-१२ और शनि से ३-५-६-११ वें स्थान में रहे तात्कालिक शनि शुभ रेखा प्रदान करता है।

लग्न से ३-५-७-९-१२ रवि से १-२-३-४-७-८-१० सोम से १-३-५-७-८-९-१०-१२ मंगल से १-३-५-१२ बुध से २-४-७-८-१२

गुरु से १-२-४-७-८-१२ शुक्र से ६-७-११-१२ और शनि से ३-५-७-११ वें स्थान में तात्कालिक राहु रहा हो तो शुभ रेखा प्रदान करता है। कुछ आचार्यों के मत में राहु की रेखा है ही नहीं। अतः राहु की रेखा न गिनने पर छप्पन रेखाएं आती हैं।



रेखाओं को लाने की पद्धति—

प्रथम में जन्म कुण्डली को स्थापन कर लग्नादि से तात्कालिक सूर्य को आश्रित कर जितने स्थान में रेखा पड़ती हो उन स्थान में सीधी रेखा रखनी चाहिये, शेष स्थान में • रखना चाहिये। इस प्रकार जन्म कुण्डली में सूर्य की कुल रेखा ४८ होती है। इसी प्रकार रवि आदि ग्रहों की ४८—४९—४०—५८-

५६—५२ और ५६ रेखाएं होती हैं तथा राहु की रेखाएं लाई जाये तो ४३ रेखा होती हैं ।

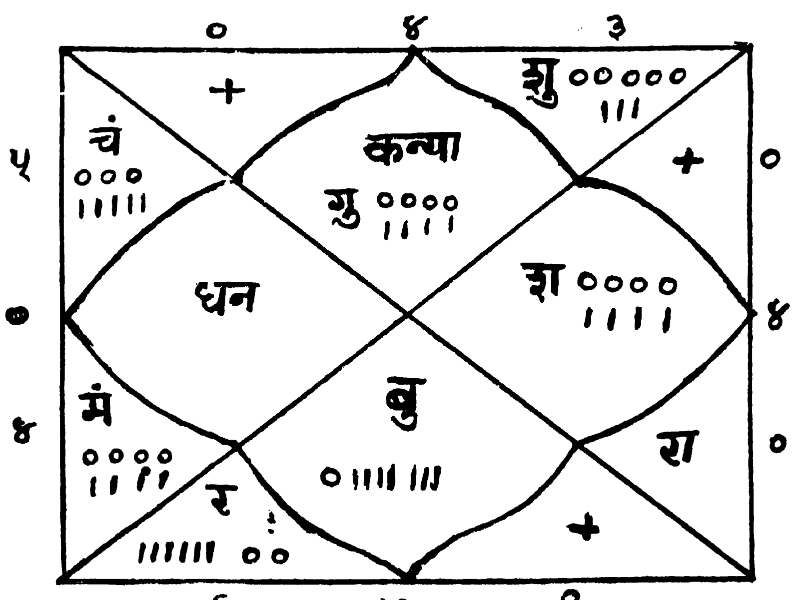
रेखाओं का फल नारचंद्र के अनुसार—

कष्टं स्यादेक रेखायां, द्वाभ्यामर्थक्षयो भवेत् ।
त्रिभिः क्लेशं विजानीयात्, चतुर्भिः समता मता ।।१।।
पञ्चभिश्चित्तसौख्यं स्यात्, षड्भिरर्थागमो भवेत् ।
सप्तभिः परमानन्द-श्चाऽष्टभिः परमं पदम् ।।२।।

एक ग्रह की एक रेखा हो तो कष्ट, दो में अर्थ का नाश, तीन में क्लेश, चार रेखा में समानता, पांच रेखा में चित्त की सौख्यता, छः रेखाओं से धन की प्राप्ति, सात रेखाओं से परम आनन्द की प्राप्ति और आठ रेखाओं से परम-पद की प्राप्ति होती है । अधिक रेखाओं से अशुभ गोचर ग्रह भी शुभ हो जाते हैं तथा बहुत शून्य आवे तो शुभ गोचर ग्रह भी अशुभ हो जाता है ।

।। सर्व रेखा कुण्डली ।।

तात्कालिक ग्रहों की रेखा ३३



ग्रह रेखा चक्र, रेखा प्रद ग्रह कोष्टक

०	लग्न	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
रवि	३-४-६-१०-११-१२	१-२-४-७-९-१०-११	३-६-१०-११	१-२-४-७-९-१०-११	३-५-६-९-१०-११-१२	३-५-९-११	६-७-८	१-२-४-७-९-१०-११
सोम	३-६-१०-११	३-६-८-१०-११	१-३-६-१०-११	२-३-५-६-९-१०-११	१-३-४-५-७-८-१०-११	१-४-७-८-१०-११-१२	३-४-५-७-९-१०-११	३-५-६
मंगल	१-३-६-१०-११	३-५-६-१०-११	३-६-१०-११	१-२-४-७-८-१०-११	३-५-६-११	६-१०-११-१२	६-८-११-१२	१-४-७-८-९-१०-११
बुध	१-२-४-६-८-१०-११	५-६-९-११-१२	२-४-६-८-१०-११	१-२-३-४-५-७-८-९-१०-११	१-३-५-६-९-१०-११-१२	६-८-११-१२	१-२-३-४-५-८-९-११	६-१२ सिवा
गुरु	१-२-४-५-६-७-९-१०-११	१-२-३-४-७-८-१०-११	२-५-७-९-११	१-२-४-७-८-१०-११	१-२-४-५-६-९-१०-११	१-२-३-४-७-८-१०-११	२-५-६-९-१०-११	३-५-६-१२

शुक्र	१-२-३-४-५-८-९-११	८-११-१२	१-२-३-४-५-८-९-११-१२	३-५-६-९-११-१२	३-५-६-९-११	५-८-९-१०-११	१-२-३-४-५-८-९-१०-११	३-४-५-८-९-१०-११
शनि	१-३-४-६-१०-११	१-२-४-७-८-१०-११	३-६-११	३-५-६-१०-११-१२	६-८-९-१०-११-१२	५-६-११-१२	६-११-१२	३-५-६-११
राहु	३-५-७-९-१२	१-२-३-४-७-८-१०	१-३-५-७-८-९-१०-१२	१-३-५-१२	२-४-७-८-१२	१-२-४-७-८-१२	६-७-११-१२	३-५-७-११

नोट— स्वराशि से गिनना चाहिये, ये कुल मिलाने पर ६४ रेखाएं होतो हैं ।

नारचंद्र के अनुसार रेखाओं का फल—

तात्कालिक सर्व ग्रह की सत्तर में इकत्तीस रेखाएँ आवे तो अनुक्रम से १७ नाश, १८ धन क्षय, १९ बंधु पीड़ा, २० क्लेश, २१ मनोव्याधि, २२ दीनता, २३ तीन वर्ग को हानि, २४ द्रव्यनाश २५ सर्वथा द्रव्य क्षय, २६ क्लेश, २७ समता, २८ द्रव्य प्राप्ति, २९ सन्मान, ३० अति सन्मान और ३१ द्रव्य सुख की वृद्धि का फल मिलता है ।

कार्य सिद्धि में ग्रह योग की आवश्यकता—

दैवज्ञवल्लभ—

तिथि-क्षण-भ-वाराणां, साध्यं योगेन सिध्यति ।

तस्मात् सर्वेषु कार्येषु, ग्रहयोगान् सुचिन्तयेत् ॥१॥

तिथि, मुहूर्त, नक्षत्र और वार के कार्य योग से सिद्ध होते हैं । अतः ग्रह योगों का विचार अवश्य करना चाहिये ।

श्री उदयप्रभसूरि के मत में—

१ लाभेऽर्कारौ शुभा धर्मे, श्रीवत्सो यद्यरौ शनिः ।

२ अर्धेन्दुर्विक्रमे मन्दो, रविर्लाभे रिपौ कुजः ॥ १ ॥

ग्यारहवें भुवन में सूर्य और मंगल हो, नवमें भुवन में सौम्य ग्रह हो, छट्ठे स्थान में शनि हो तो श्रीवत्स योग होता है। तृतीय स्थान में शनि, ग्यारहवें स्थान में रवि, षष्ठम स्थान में मंगल हो तो अर्धेन्दु योग होता है । ये दोनों योग अति शुभ हैं।

३ शंखः शुभग्रहैर्बन्धु-धर्मकर्मस्थितैर्भवेत् ।

४ ध्वजः सौम्यै विलग्नस्थैः, क्रूरैश्च निधनाश्रितैः ॥ २ ॥

चतुर्थ, नवम और दशम भुवन में शुभ ग्रह हो तो शंख योग होता है। (३) लग्न में सौम्य और आठवें भुवन में क्रूर ग्रह रहे हों तो ध्वज योग होता है। ये दोनों योग भी अति श्रेष्ठ हैं।

५ गुरुर्धर्मे व्यये शुक्रो, लग्ने ज्ञः श्चेत् तदा गजः।

६ कन्यालग्नेऽलिगे चन्द्रे, हर्षः शुक्रेज्ययोर्मृगे: ॥३॥

नवम भुवन में गुरु, द्वादश भुवन में शुक्र और लग्न में बुध हो तो गजयोग होता है। रत्नमाला में बारहवें भुवन में शुक्र के स्थान पर ग्यारहवें भुवन में शनि कहा हुआ है। लग्न में कन्या राशि, वृश्चिक राशि में चन्द्र, मकर में शुक्र तथा गुरु हो तो हर्ष योग होता है। ये दोनों योग भी अति श्रेष्ठ है।

७ धनुरष्टमगैः सौम्यैः, पापैर्व्ययगतैर्भवेत् ।

८ कुठारो भार्गवे षष्ठे, धर्मस्थेऽर्के शनौ व्यये ॥ ४ ॥

९ मुशलो बन्धुगे भौमे, शनावन्त्येऽष्टमे विधौ।

१० चक्रं च प्राचि चक्रार्धे, चन्द्रात् पाप·शुभैः क्रमात् ॥५॥

११ कूर्मः पुत्रार्थरन्ध्रान्त्ये-ष्वारमन्देन्दुभासकरैः।

१२ वापी पापैस्तु केन्द्रस्थै-र्योगाः स्युर्द्वाविशेत्यमी ॥ ६ ॥

आठमें स्थान में सौम्य और बारहवें स्थान में पापग्रह हो तो धनुषयोग होता है। छट्ठे स्थान में शुक्र, नवम स्थान में सूर्य और बारहवें स्थान में शनि हो तो कुठार योग होता है। रत्नमाला के मत में— नवम स्थान के सूर्य के बदले चौथे स्थान में बुध हो तो कुठारयोग होता है।

चतुर्थ स्थान में मंगल, द्वादश में शनि, अष्टम स्थान में चन्द्र हो तो मुशलयोग होता है। रत्नमाला के मत में चतुर्थ मंगल

के स्थान पर प्रथम स्थान में सूर्य दिखाया गया है। भाव कुण्डली के पूर्वार्ध चक्र में इष्ट नवांश वाले दशम से चतुर्थ भुवन तक प्रथम चन्द्र हो, पीछे स्थानों में पापग्रह और सौम्यग्रह हो तो चक्रयोग होता है। पंचम स्थान में मंगल, द्वितीय स्थान में शनि, अष्ठम स्थान में चन्द्र और द्वादश में सूर्य हो तो कूर्म योग होता है। केन्द्र में पापग्रह यदि रहे हो तो वापीयोग होता है। इस प्रकार बारह योग हैं।

१३-१९ आनन्द-जीव नन्दन-जीमूत जय-स्थिरा-ऽमृता योगाः
ज्ञ-गुरु-सितैः प्रत्येकं, द्विकत्रिकैश्चापि लग्न गतैः ।७।।
योगा यथार्थनामानः, सर्वेषूत्तमकर्मसु ।
ऐश्वर्य-राज्य-साम्राज्य-विधातारः क्रमादमी ।।८।।

बुध, गुरु, शुक्र ग्रहों में से एक, दो या तीन ग्रह लग्न में हो तो आनन्द, जीव, नन्दन, जीमूत, जय, स्थिर और अमृत योग होते हैं। अर्थात् लग्न में बुध हो तो आनन्द, गुरु हो तो जीव, शुक्र हो तो नन्दन, बुध और गुरु हो तो जीमूत, बुध और शुक्र हो तो जय, गुरु और शुक्र हो तो स्थिर तथा बुध, गुरु और शुक्र हो तो अमृत योग होता है। ये योग सर्वोत्तम कार्य में यथार्थ नाम वाले हैं। एक-एक ग्रह वाले योग ऐश्वर्य तथा दो-दो ग्रह वाले योग राज्य प्राप्त कराते हैं और तीन ग्रह वाला योग चक्रवर्ती या सूरिपद प्राप्त कराते हैं।

पूर्णभद्र का मत—

उदय-ट्ठमगे मम्मं, नव-पंचम्मि कूरकंटयं भणियं ।
दसम-चउत्थे सल्लं, कूरउदयत्थितं छिद्दं ।। १ ।।
मम्मदोसेण मरणं, कंटयदोसेण कुलक्खओ होइ ।
सल्लेण राय सत्तू , छिद्दं पुत्तं विणासेइ ।। २ ।।

क्रूर ग्रह प्रथम और अष्टम स्थान में रहे हो, मर्म, पंचम और नवम भुवन में रहे हो तो क्रूरकंटक चतुर्थ तथा दशम स्थान में रहे हो तो शल्य, प्रथम अन्तिम स्थान में रहे हो तो छिद्रयोग होता है। इनमें मर्म दोष से मृत्यु, कंटक दोष से कुल का नाश, शल्य दोष से राजा के साथ वैर और छिद्र दोष से पुत्र का नाश होता है।

यदि सर्वग्रहदृष्टि-र्लग्ने परिपतति दैवतवशेन।
तद् भवति नृपतियोगः, कल्याण परम्पराहेतुः ॥ ३ ॥

अन्योन्यस्योच्चराशिस्थौ, यदि स्यातां ग्रहौ तदा।
राजयोगं जिनाः प्राहु-र्दर्शने तु महाफलम् ॥ ४ ॥

यदि सर्वग्रह दृष्टि दैववश योग से एक साथ लग्न में पड़ती हो तो कल्याण की परम्परा का साधन कराने वाला राजयोग होता है। यदि दो ग्रह परस्पर एक दूसरे के उच्च स्थान में रहे हो तो राजयोग होता है और उसका यदि परस्पर दर्शन भी हो जाय तो बहुत बड़ा फल मिलता है। ऐसी जिनेश्वरों की वाणी है।

हेमहंसगणि कहते हैं—

वर्गोत्तम गते लग्ने, चन्द्रे वा चन्द्र वर्जितैः।
चतुराद्यै ग्रहैर्दृष्टे, नृपा द्वाविंशतिः स्मृताः ॥१॥

बिना चंद्र के चार, पांच या छः ग्रहों की दृष्टिवाले लग्न या चन्द्र वर्गोत्तम नवांश में हो तो बाईस राजयोग होते हैं।

ये बाईस राजयोग इस प्रकार है—

वक्रा-ऽर्कजा-ऽर्क-गुरुभिः सकलै स्त्रिभिश्च,
स्वोच्चेषु षोडश नृपाः कथितैकलग्ने।

द्वयेकाश्रितेषु च तथैकतमे विलग्ने,

स्वक्षेत्रगे शशिनि षोडश भूमिपाः स्युः ।। १ ।।

मंगल, शनि, सूर्य और गुरु ये चार ग्रह या इनमें से कोई तीन ग्रह उच्च स्थान में हो और उनमें से एक ग्रह लग्न में हो तो सौलह राजयोग होते हैं। पुनः चन्द्र स्वयं के घर में और चार ग्रहों में से हर कोई दो ग्रह या एक ग्रह उच्च स्थान में हो और चार में से एक ग्रह लग्न में हो तो भी सौलह राजयोग होते हैं। इस प्रकार अन्य भी कुल बत्तीस राजयोग होते हैं। ये सब श्रेष्ठ राजयोग हैं। इनके अतिरिक्त श्रेष्ठ मध्यम भी राजयोग होते हैं।

लग्न भुवन चक्र

भुवन	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
नाम	लग्न	धन	सहज	सुख	सुत	अरि	स्त्री	मृत्यु	धर्म	व्योम	आय	व्यय
यात्रा नाम	तनु	कोष	भट	यान	मंत्री	अरि	वर्त्म	जीवित	मन	भाग्य	लाभ	मंत्री
दिशा	पूर्व	पूर्व	उत्तर	उत्तर	उत्तर	पश्चिम	पश्चिम	पश्चिम	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	पूर्व
रोग प्रश्न	वैद्य	+	+	औषध	०	●	रोग	●	०	रोगी	०	०
गोचर शुद्धि	बु० गु० शु०	सो०गु० बु०शु०	र०म. बु गु०शु० रा०श०	बु० गु० शु०	बु० गु० शु.	र० म● बु० श० रा	सो०शु० बु०गु०	०	बु०गु० शु०	र०सो० बु०गु० शु०	र०सो. बु म०गु.श० रा०शु०	०
राहु फल	अशुभ	मध्य	शुभ	अशुभ	मध्यम	शुभ	अशुभ	मध्य	मध्य	अशुभ	शुभ	मध्य
ग्रह दिग् बल	गुरु बुध	०	●	चंद्र शुक्र	०	०	शनि	●	०	रविभोम	०	०

दुष्ट योग	गुरु	०	०	०	०	शुक्र	०	भौम	०	०	०	०
श्रीवत्स योग	●	●	●	●	०	शनि	०	०	सौम्य	●	रवि मं.	०
अर्धेन्दु योग	०	●	शनि	०	०	भौम	०	०	●	०	रवि ग०र०	०
शंख योग	०	०	०	शुभ	●	०	०	०	शुभ	शुभ	०	०
ध्वज योग	साम्य	०	०	०	०	●	●	क्रूर	●	०	०	०
गज योग	बुध	०	०	●	०	०	●	०	गुरु	●	शनि	शुक्र
हर्ष योग	कन्या	●	चन्द्र	●	शु. गु.	०	०	०	०	०	०	०
धनुष्य योग	०	●	०	०	०	●	०	सौम्य	०	०	०	पाप
कुठार योग	०	०	●	बुध	०	शुक्र	०	०	सूर्य	०	०	शनि
मूशल योग	सूर्य	●	०	मंगल	०	●	०	चन्द्र	०	●	●	शनि
चक्र योग	पा.सौ.	पा.सौ.	पा.सौ.	०	०	०	●	०	०	चंद्र	पा.सौ.	पा.सौ.
कूर्म योग	०	शनि	०	●	मंगल	०	०	चन्द्र	०	६	०	रवि

वापी योग	पाप	०	•	पाप	०	•	पाप	०	०	पाप	०	०
मर्म योग	क्रूर	०	०	०	०	०	•	क्रूर	०	०	०	मृत्यु करे
क्रूर योग	०	०	०	•	क्रूर	०	०	०	क्रूर	०	०	कुलहन्ता
शल्य योग	०	•	०	क्रूर	०	•	०	०	०	क्रूर	•	नृप वैर
छिद्र योग	क्रूर	०	•	०	०	०	०	०	•	०	पुत्र नाश	क्रूर

चन्द्र की अवस्था और उनका फल—

गय हरिअ मया मोया, हासा किड्डा रई सयणमसणं।
तावा कंपा सुत्था, ससिवत्था बार नामफला ॥ २२ ॥

पइरासि बारसंसा, असुहाउ चए जओसुहोवि ससी।
एयाहिं हवइ असुहो, सुहाहिं असुहो वि होइ सुहो ॥२३॥

चन्द्र की निम्न द्वादश दशाएं हैं— गता, हृता, मृता, मोदा, हासा, क्रीड़ा, रति, शयन, अशन, तापा, कंपा और स्वस्था, जो यथार्थ नाम वाले हैं। प्रत्येक राशि के बारह-बारह अंश हैं। शुभ चन्द्र हो तो भी उसमें से अशुभ अंशों को छोड़ देना चाहिये। क्योंकि अशुभ अंशों से शुभ चन्द्र भी अशुभ हो जाता है और शुभ अंशों के द्वारा अशुभ चन्द्र भी शुभ हो जाता है।

तात्कालिक चन्द्र बल का अवश्य अवलोकन कर लेना चाहिये।

लग्नं देहः षट्कवर्गोऽङ्गकानि,
प्राणश्चन्द्रो धातवः खेचरेन्द्राः।

प्राणे नष्टे देहधात्वङ्गनष्टा,
यत्नेनाऽतश्चन्द्रवीर्यं प्रकल्प्यम् ॥ १ ॥

लग्न शरीर, छः वर्ग अंग, चन्द्र प्राण और ग्रह धातु रूप हैं, उसमें से प्राण के नाश होने पर सारे अवयवों का नाश हो जाता है। अतः चन्द्रबल अवश्य देखना चाहिये। चन्द्र का बल पन्द्रह प्रकार का है उनमें से कोई न कोई बल तो अवश्य ग्रहण करना चाहिये।

श्रीउदयप्रभसूरि के मत में—

लग्ने गुरोर्वरस्याऽथ, ग्राह्यं चान्द्रबलं बुधैः ।
शिष्य-स्थापक-कन्यानां, जीवे-न्दु-कंबलानि च ॥१॥

लग्न में गुरु और वर को चन्द्र का बल अवश्य देखना चाहिये तथा शिष्य प्रतिष्ठा कराने वाले तथा कन्या का गुरु और चन्द्र का बल अवश्य देखना चाहिये ।

जन्म राशि से तृतीय, षष्ठम, दशम और ग्यारहवें भुवन में रहने वाला सूर्य शुभ है । द्वितीय, पंचम और नवम भुवन में रहने वाला सूर्य मध्यम है । वाराही संहिता में कहा गया है कि जन्मादि स्थान में रहने वाला सूर्य अनुक्रम से स्थान नाश, भय, लक्ष्मी, पराभव, दीनता, शत्रुभय, प्रयाण, देहपीड़ा, अशांति, सिद्धि, धनप्राप्ति और व्यय देता है । द्वितीय, पंचम, सप्तम, नवम और एकादशम भुवन में रहने वाला गुरु शुभ है । और भी कहा है—

जन्म से प्राथमिक स्थानों में रहने वाला गुरु अनुक्रम से रोग, धन, क्लेश, खर्च, सुख, भय, राजसम्मान, धनप्राप्ति, लक्ष्मी, अप्रीति, लाभ और हृदय पीड़ा का विस्तार कराता है ।

चन्द्रो जन्मत्रि-षट्-सप्त—दशै-कादशगः शुभः ।
द्वि-पञ्च-नवमोऽप्येवं, शुक्लपक्षे बली यदि ॥ १ ॥

जन्म राशि से प्रथम, तृतीय, षष्ठम, सप्तम, दशम और एकादशम स्थान में रहने वाला चन्द्र शुभ है तथा शुक्ल पक्ष में बलवान हो तो द्वितीय, पंचम और नवम स्थान में रहने वाला चन्द्र भी शुभ है ।

नारचंद्र के अनुसार—

जन्मस्थः कुरुते पुष्टिं, द्वितीये नास्ति निर्वृतिः ।
तृतीये राजसन्मानं, चतुर्थे कलहागमः ॥१॥

पञ्चमेऽर्थपरिभ्रंशः, षष्ठे धान्यसमागमः ।
सप्तमे राज पूजा च, अष्टमे प्राणसंशयः ॥२॥
नवमे कार्यहानिच, सिद्धिश्च दशमे भवेत् ।
एकादशे जयो नित्यं, द्वादशे मृत्युमाविशत् ॥३॥

चन्द्र जन्म राशि का हो तो पुष्टि, जन्म राशि से द्वितीय हो तो मन सन्ताप, तृतीय राज सन्मान, चतुर्थ कलह, पंचम धन नाश षष्ठम धान्य प्राप्ति, सप्तम राज सन्मान, अष्टम प्राण भय, नवम कार्य नाश, दशम सिद्धि, एकादशम विजय और द्वादशम हो तो मृत्यु कारक होता है ।

(देखिये जन्म राशि चक्र)

जन्मराशि चक्रम्

भुवन	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
शुभ ग्रह	चंद्र	बु०गु०	र.च म.	बुध	गुरु	र.च.म.	च०गु०	बु०शु०	गु०शु०	च.बु.रा.	प्रत्येक	
स्थान	शुक्र	शु०	शु.श.रा.	शुक्र	शुक्र	बु श रा.	—	—	—	रा०	—	
शुभ रवि	—	मध्यम	शुभ	—	मध्य	शुभ	—	—	मध्यम	शुभ	शुभ	
रवि फल	[illegible]नक्षय	भय	लक्ष्मी	पराभव	दीनता	शत्रुक्षय	प्रयाण	देहपीड़ा	अशांति	सिद्धि	धनप्राप्ति	
शुभ गुरु	—	शुभ	—	—	शुभ	—	शुभ	—	शुभ	—	शुभ	
गुरु फल	रोग	धन	क्लेश	खर्च	सुख	भय	राजप्रेम	धन	लक्ष्मी	शुभ	लाभ	
शुभ चंद्र	शुभ	गु०शु०	शुभ	—	गु०शु०	शुभ	शुभ	—	गु०शु०	सिद्धि	शुभ	
चन्द्र फल	पुष्टि	पीड़ा	राजमान	कलह	धननाश	धान्याप्ति	राजमान	प्राणभय	कार्यनाश	हृदये		

गमन चन्द्र	मस्तके	हाथ पर	मस्तके	मस्तके	मस्तके	पीठ पर	पादे	पीठ पर	पीठ पर	सुख	
ग० चं. फल	द्रव्य	प्राशापूर्ण	द्रव्य	पूर्णाश	द्रव्य	निराशा	क्लेश	निराशा	निराशा	अर्थंद्	
प्रवेश चंद्र	आरोग्य	धनहानि	धनप्राप्ति	सुखघ्न	पुत्रघ्न	अरिघ्न	स्त्रीघ्न	प्राणघ्न	व्याधिघ्न	शुभ	
ग्राम चंद्र	भय	शुभ	भय	सम	शुभ	भय	भय	सम	शुभ		
शनि	दुष्ट	दुष्ट	उत्तम	दुष्ट	मध्य	उत्तम	मध्य	दुष्ट	मध्यम		

जन्म का चन्द्र शुभ होते हुए भी कुछ स्थानों पर वर्जित है। लल्ल के अनुसार—

गृहप्रवेशमाङ्गल्यं, सर्वमेतत्तु कारयेत् ।
क्षौरकर्म विवादं च, यात्रां चैव न कारयेत् ।।१।।

अपने नक्षत्र में, अपने लग्न में, अपने मुहूर्त में और अपनी तिथि में गृह प्रवेश आदि सारे मांगलिक कार्यों को करना चाहिये किन्तु क्षौर, विवाद और यात्रा का काम नहीं करना चाहिये ।

नारचंद्र को टीका के अनुसार—

यात्रा युद्ध विवाहेषु, जन्मेन्दौ रोगसम्भवे ।
क्रमेण तस्करा भंगो, वैधव्यं मरणं भवेत् ।।१।।

जन्म का चन्द्र हो और यदि कोई यात्रा करे, युद्ध करे, विवाह करे और रोगी हो जाय तो अनुक्रम से चोर भय, पराजय, वैधव्य और मृत्यु प्राप्त होती है । जन्म नक्षत्र में दीक्षा, प्रतिष्ठा तथा यात्रादि वर्जित है । किन्तु मध्याह्नोपरांत या ग्रहों का बलवान लग्न हो तो मध्याह्न पूर्व भी जन्म नक्षत्र का दोष नष्ट हो जाता है । स्त्रियों के चंद्रबल के लिये व्यवहारप्रकाश में कहा है—

कन्या को पैतृक चन्द्रबल सीमंत या लग्नवाली को स्वयं का चंद्रबल और सधवा को पति का चन्द्रबल शुभ है ।

द्वादशचन्द्र भी कुछ कार्यों में शुभ है—

नखच्छेदे च पुण्ये च, राज्ञां च मिलने तथा ।
पाणिग्रहे प्रयाणे च, शशी द्वादशमः शुभः ।।१।।

नखच्छेदन, पुण्य का कार्य, राजा से मिलना, विवाह और प्रवास में बारहवां चन्द्र शुभ है ।

शुभचंद्र भी कितनो ही राशि वालों को घातचन्द्र होजाता है। यथा—

चन्द्र-भूत-ग्रहा नेत्रा, रस-दिग्-वह्नि-सागराः।

वेदा-ऽष्टक-शिवा-ऽऽदित्या, घातचन्द्राः प्रकीर्तिताः ॥१॥

मेषादि बारह राशियों को अपनी राशि से अनुक्रम से— पहला, पांचवां नवमा, दूसरा छट्ठा, दशमा, तीसरा, सातवां, चौथा, आठवां, ग्यारहवां और बारहवां चन्द्र घातचन्द्र है। अतः मेषादि राशिवाले पुरुषों को अनुक्रम से मेष, कन्या, कुम्भ, सिंह, मकर, मिथुन, धन, वृषभ, मीन, सिंह, धन और कुम्भ का चन्द्र कालचंद्र है। मेषादि राशिवाली स्त्रियों को अनुक्रम से— मेष, धन, धन, मीन, वृश्चिक, वृश्चिक, मीन, मकर, कन्या, धन, मिथुन और कुम्भ का चन्द्र घातचंद्र है। मेषादि राशि वालों को अनुक्रम से कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़, पौष, ज्येष्ठ, भाद्रपद, माह, आसोज, श्रावण, वैशाख, चैत्र और फाल्गुन ये घातमास हैं। मेषादि राशि वालों को अनुक्रम से— नंदा, पूर्णा, भद्रा, भद्रा, जया, पूर्णा, रिक्ता, नंदा, जया, रिक्ता, जया और पूर्णा तिथि घात तिथि है। मेषादि राशि वालों को अनुक्रम से— रविवार, शनिवार, सोमवार, बुधवार, शनिवार, शनिवार, गुरुवार, शुक्रवार, शुक्रवार, मंगलवार, गुरुवार और शुक्रवार घात वार हैं।

मघा हस्त स्वात्यनुराधा, मूल-श्रवण-तारकाः।

रेवती रोहिणी भरणी-आर्द्रा-ऽश्लेषाः घातकाः ॥१॥

मेषादि राशि वालों को अनुक्रम से— मघा हस्त स्वाति अनुराधा मूल श्रवण शततारा रेवती रोहिणी भरणी आर्द्रा और अश्लेषा ये घात नक्षत्र हैं।

मेषादि राशि वालों को अनुक्रम से, बव, शकुनि, चतुष्पाद, नाग, बव, कौलव, तितिल, गर, तैतिल, शकुनि, किंस्तुघ्न और चतुष्पाद ये घातकरण हैं ।

मेषादि राशि वालों को अनुक्रम से विष्कंभ शूल परिघ व्याघ धृति शूल शूल व्यतिपात वरियान वैधृति गंड और वैधृति ये घातयोग हैं ।

एतानि मेषादिषु राशिघातान्,
तिथ्यादि वाराणि च ऋक्ष-चन्द्रान् ।
संग्राम-यात्रा-नृपदर्शने च,
वर्ज्येत् शुभे कर्मणि नाऽत्र दोषः ।। १ ।।

इन मेषादि राशिघात— तिथि बार नक्षत्र और राशिघात चंद्र युद्ध यात्रा और राजदर्शन में छोड़ देना चाहिये । अन्य शेष शुभ कार्यों में वर्जित नहीं हैं ।

मेषादि राशि वालों को अनुक्रम से— पहला चतुर्थ तृतीय प्रथम प्रथम प्रथम चतुर्थ प्रथम प्रथम चतुर्थ तृतीय और चतुर्थ ग्रह अशुभ ग्रह है ।

मेषादि राशि वालों को अनुक्रम से— मेष मिथुन कन्या मकर वृषभ सिंह मीन मिथुन सिंह वृश्चिक मेष और कर्क के लग्न घातलग्न हैं ।

रात्रीश-सौम्यौ भृगु-सूर्य-भौमाः,
जीवोऽर्कपुत्रोवृषभादिकानाम् ।
एकैक वृद्धया किल कालचन्द्रात्,
प्रोक्ता मुनीन्द्रैरपि कालखेटाः ।। १ ।।

मुनिन्द्रों के द्वारा कालचन्द्र से एक-एक स्थान की वृद्धि वाले अनुक्रम से— चन्द्र बुध शुक्र रवि भोम गुरु शनि और राहु को घातिग्रह कहा जाता है।

घातचन्द्र जन्म राशि से देखना चाहिये—

जइ नो नज्जइ जम्मरण-रासी तो गणह नामरासीओ।
अवकहडाचक्काओ, सा नज्जइ त्तं पुण पसिद्धं ॥ १ ॥

यदि जन्म राशि नहीं जानी जा सके तो नाम राशि से गिनना चाहिये और यह नाम राशि अवकहडा चक्र से जानी जा सकती है।

राशिघात चक्रम्

रा०	चं०	स्त्री.	मा०	ति०	वा०	न०	क०	यो०	ल०	र०	सो०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०	रा०
मे०	मे०	मे०	का०	नं०	र०	म०	ब०	वि०	मे०	४	१	५	२	६	७	३	८
वृ०	क०	घ०	मा०	पू०	श०	ह०	श०	शू०	मि०	८	५	६	६	१०	११	७	१२
मि०	कु०	ध०	अ०	भ०	सौ०	स्वा	च०	प०	क०	१२	९	१	१०	२	३	११	४
क०	सि०	मी०	पो०	भ०	बु०	नु०	ना०	व्या०	मि०	५	२	६	३	७	८	७	९
सि०	म०	वी०	जे०	ज०	श०	मू०	ब०	धृ०	वृ०	९	६	१०	७	११	१२	८	१
क०	मि०	वी०	भा०	पू०	श०	श्र०	कौ०	शू०	सि०	१	१०	२	११	३	४	१२	५
तु०	ध०	मो०	म०	रि०	गु०	श०	ति०	शू०	मी०	६	३	७	४	८	९	५	१०
वृ०	वृ०	म०	आ०	नं०	शु०	रे०	ग०	व्य०	मि०	१०	७	११	८	१२	१	९	२

घ०	मो०	क०	श्रा०	ज०	शु०	रो०	ति०	व०	सि०	७	४	८	५	९	१०	६	११
म०	सिं०	ध०	वं०	रि०	मं०	भ०	श०	वैं०	वी०	११	८	१२	९	१	२	१०	३
कु०	ध०	मि०	चैं०	ज०	गु०	आ०	क्रि०	गं०	मे०	२	११	३	१२	४	५	१	६
मी०	कु०	कु०	फा०	पू०	शु०	श्ले०	च०	वै०	क०	३	१२	४	१	५	६	२	७

चन्द्र का दूसरा बल नवांश गोचर है। शुभ नवांश में रहा हुआ चंद्र शुभ है। अशुभ अंश में रहा हुआ चंद्र अशुभ है।

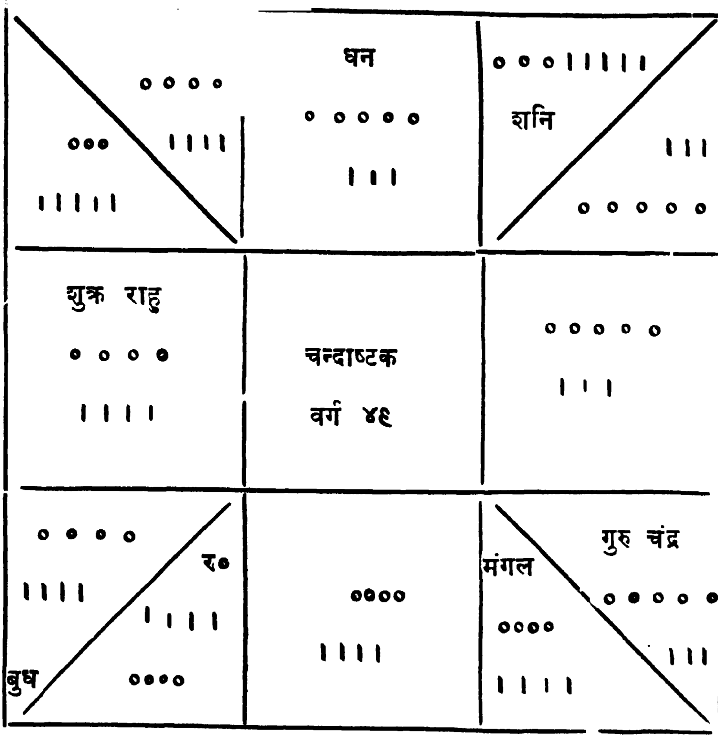
चंद्र का तीसरा बल वामवेध है।

इन्दोस्तनौ त्रि-रिपु-मन्मथ-खाऽऽयगस्य,
धी-धर्म-रिष्य-धन-बन्धु-मृतौ स्थितैश्च।

प्रथम, तृतीय, षष्ठम, सप्तम, दशम और एकादशम भुवन में रहे हुए चंद्र का अनुक्रम से— पंचम, नवम, द्वादशम, द्वितीय, चतुर्थ और आठवें भुवन में रहने वाले ग्रहों से 'वेध' होता है। इनमें प्रथमादि स्थान चन्द्र के शुभ स्थान हैं और पंचमादि भुवन चन्द्र के अशुभ स्थान हैं। शुभ स्थान में चन्द्र शुभ हो जाता है। किन्तु अशुभ स्थान में कोई अन्य ग्रह हो तो चंद्र अशुभ हो जाता है। चन्द्र का चतुर्थ बल चन्द्र का अष्टवर्ग है।

शश्युपचयेषु लग्नात्, साऽऽद्यमुनिस्वात् कुजात्सनवधीस्वे।
सूर्यात् साष्टस्मरगः, त्रिषडायसुतेषु सूर्यसुतात् ॥१॥
ज्ञात् केन्द्रत्रिसुताया-ऽष्टगो गुरोर्व्ययायमृत्युकेन्द्रेषु।
त्रिचतुःसुतनवदश--सप्तमायगः चन्द्रमाः शुक्रात् ॥२॥

जन्म कुण्डली के लग्न से उपचय में रहा हुआ, चन्द्र से उपचय, आद्य और मुनि भुवन में रहा हुआ, मंगल से उपचय, नवम, धी और स्वभुवन में रहा हुआ, सूर्य से उपचय, अष्टम और काम भुवन में रहा हुआ, शनि से तृतीय, षष्ठम, आय और सुत भुवन में रहा हुआ, बुध से केन्द्र, तृतीय, सुत, आय और अष्टम भुवन में रहा हुआ, गुरु से व्यय, आय, मृत्यु और केन्द्र भुवन में रहा हुआ तथा शुक्र से तीन, चार, पांच, नव, दस सात और ग्यारहवें भुवन में रहा हुआ तात्कालिक चन्द्र शुभ है और वह अनुकूल भुवन में शुभ रेखा देता है।



चन्द्र का पांचवां बल अवस्था है । चन्द्र की हरएक राशि में गतादि बारह अवस्थाएं बदलती हैं । हरएक राशि को प्रथम अवस्था स्वयं के अंक प्रमाण के अंक वाली होती है । जो उपरोक्त कही गई है ।

चन्द्र का षष्ठम बल पक्ष है ।

शुक्ल पक्षे बली चंद्र--स्ताराबलमकारणम् ।
पत्यौ स्वस्थे गृहस्थे च, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥१॥

शुक्ल पक्ष में चन्द्र बलवान होता है, अतः तारा बल की आवश्यकता नहीं है क्योंकि पति घर में हो तथा स्वस्थ हो तो स्त्री के स्वातन्त्र्य की आवश्यकता नहीं है ।

सिय पडिवयाओ चंदो मज्जिमबलो मुणेअव्वो ।
तत्तो अ उत्तमबलो, अप्पबलो तईअदसमम्मि ॥१॥

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से दस दिन तक चन्द्र को मध्यम बल जानना चाहिये । पीछे के दस दिन उत्तम बल वाला जानना चाहिये और तीसरे दस दिनों में अल्पबल वाला जानना चाहिये ।

हीन-मध्यो-च्चबलता, तिथिवत्तु हिमद्युतेः ।

चन्द्र का हीन बल, मध्यम बल और उच्च बल तिथि के द्वारा जानना चाहिये, जैसे शुक्ल पक्ष का चन्द्र बलवान है उसी प्रकार शुभ चन्द्र का बल भी शुक्ल पक्ष को मिलता है ।

सितपक्षादौ चन्द्रे, शुभे शुभः पक्षकोऽशुभे त्वशुभः ।
बहुले गोचरशुभदे, न शुभः पक्षोऽशुभे तु शुभः ॥ १ ॥

यदि शुक्ल पक्ष के प्रारम्भ में चन्द्र शुभ हो तो सारा पक्ष शुभ जानना चाहिये और अशुभ चन्द्र हो तो अशुभ जानना चाहिये । यदि कृष्ण पक्ष में गोचर से शुभ चन्द्र हो तो सारा पक्ष अशुभ और अशुभ हो तो शुभ जानना चाहिये ।

चन्द्र का सप्तम बल तारा बल है । कृष्ण पक्ष में चन्द्र के बदले तारा का बल आवश्यक है, उनमें भी षष्ठो, चतुर्थी तथा नवमी तारा हो तो श्रेष्ठ है ।

चन्द्र के आठ बल मित्रगृह तथा सौम्यगृह के योग से आते हैं । चन्द्र आठ मित्र के साथ हो, ९ मित्र के घर हो, १० मित्र

के नवमांश में हो, ११ मित्र की दृष्टिवाले स्थान में हो तो बलवान है । उसी प्रकार १२ सौम्यग्रह के घर में १३ सौम्य के साथ १४ सौम्य के नवांश में १५ सौम्यग्रह की दृष्टिवाले भुवन में रहने वाला चन्द्र बलवान है । मित्र के द्वारा अधिमित्र के योग से भी चन्द्रबल माना जाता है ।

अशुभोऽपि शुभश्चन्द्रः, सौम्य मित्रगृहांशके ।
स्थितोऽथवाऽधिमित्रेण, बलिष्ठेन विलोकितः ॥ १ ॥

सौम्यग्रह या मित्रग्रह के स्थान में या नवांश में रहने वाला अशुभ चन्द्र भी बलवान है । अथवा बलवान अधिमित्र की दृष्टिवाला भी अशुभ चन्द्र शुभ है ।

लल्ल के मत में—

शशिबल संयुत संक्रमाद् बलं भानोः ।
सूर्यबले सति सर्वेऽप्यशुभाः खेचराः शुभदाः ।

चन्द्र बलयुक्त संक्रांति सूर्य का बल होता है और जब सूर्य बलवान होता है तब सारे अशुभ ग्रह भी शुभ फल देने लगते हैं ।

निर्बल चन्द्र के लिये कहा है—

नीचः क्रूरग्रहैर्युक्तो, अस्तगो रिपुक्षेत्रगः ।
वक्री चन्द्रो विबलो, वर्जितोऽयं शुभे समे ॥१॥

नीच क्रूर ग्रह से युक्त, अस्तंगत, रिपु के घर में स्थित तथा वक्री चन्द्र निर्बल होता है अतः शुभ कार्यों में वर्जित है ।

यदि निर्बल चन्द्र अनुकूलता सर्वथा नहीं हो तो शिवचक्र का बल देखना चाहिये । क्योंकि शिवचक्र चन्द्र की प्रतिकूलता के दोष को नष्ट करता है ।

अब 'पंथा राहु' का फलाफल वर्णित किया जा रहा है—

धर्ममार्गगते सूर्ये, अर्थांशे चन्द्रमा यदि ।
तत्र यातुर्भयं तस्य, दुष्टग्रह स्थितो यदि ॥१॥
धर्ममार्गस्थिते सूर्ये, कामांशे चन्द्रमा यदि ।
विग्रहं दारुणं चैव, चौराकुलसमुद्भवम् ॥२॥
धर्ममार्गगते सूर्ये, मोक्षे चन्द्रगते यदि ।
महालाभो भवेत्तस्य, शुभग्रह स्थितो यदि ॥३॥
धर्ममार्गगते सूर्ये, चन्द्र तत्रैव संस्थिते ।
संहारं च भवेत्तत्र, भङ्गजातः प्रजायते ॥४॥

धर्म मार्ग में सूर्य हो और अर्थमार्ग में चन्द्र हो, दुष्ट ग्रह का योग हो तो जाने वाले के लिये भय उत्पन्न करता है । धर्म मार्ग में सूर्य हो और काम में चन्द्र हो तो विशाल युद्ध और चोर का भय होता है । धर्म मार्ग में सूर्य हो और मोक्ष मार्ग में चन्द्र हो, शुभ ग्रह का योग हो तो महान लाभ होता है । धर्म मार्ग में सूर्य हो और चन्द्र भी उसी मार्ग में हो तो संहार तथा नाश होता है ।

अर्थमार्गगते सूर्ये, चन्द्रे कामांशसंस्थिते ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य, सौ(म्य)म्यग्रह स्थितो यदि ॥५॥
अर्थमार्गगते सूर्ये, चन्द्रे मोक्षांशसंस्थिते ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य, प्रियं हर्षश्च संभवेत् ॥६॥
अर्थमार्गगते सूर्ये, चन्द्रो धर्मस्थितो यदि ।
गजलाभो भवेत्तत्र, तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥७॥
अर्थमार्गगते सूर्ये, चन्द्रे तत्रैव संस्थिते ।
प्रथमं जायते तस्य, तत्र भङ्गो भविष्यति ॥८॥

अर्थमार्ग में सूर्य हो और चन्द्र कामांश में हो, यदि सौम्य ग्रह स्थित हो तो सर्व सिद्धिकारक है। अर्थमार्ग में सूर्य हो और चन्द्र मोक्षांश में स्थित हो तो सर्वसिद्धि, प्रिय तथा हर्ष होता है। अर्थमार्ग में स्थित सूर्य हो और चन्द्र धर्म स्थित हो तो गज तथा सर्वतोमुखी लक्ष्मी का लग्न होता है। उसी प्रकार अर्थमार्ग में सूर्य हो तथा वहीं पर स्थित हो तो वहां प्रथम भंग हो जाता है।

यात्रा-युद्धे विवाहे च, वाणिज्ये कृषिकर्मणि।
प्रवेशे सर्वव्यापारे, पन्थाराहुः प्रशस्यते ॥१७॥

यात्रा, युद्ध, विवाह, वाणिज्य कृषि तथा ग्रह प्रवेश सर्व व्यापार सर्व कार्य पंथा राहु प्रशस्त है।

श्रेष्ठ चन्द्र दर्शन के लिये—

दाहिणुच्चो समो चंदो, उत्तरुच्चो हलोवमो।
धणु वक्को अ सूलाभो, मेसासु अ कमुक्कमा ॥१४॥

मेषादि राशि में अनुक्रम से और उत्क्रम से दक्षिण को तरफ ऊंचा, समान, उत्तर दिशा में ऊँचा हल जैसा, धनुष जैसा, वक्र और शूल की तरह नवीन चंद्र उदित हो तो शुभ है। चंद्र शुभ हो तो हरेक प्रकार की शुद्धि होती है और इस पर भविष्य का सत्य ज्ञान भी होता है। कहा है—

यादृशेन शशांकेन, संक्रान्तिर्जायते रवेः।
तन्मासि तादृशं प्राहुः, शुभाऽशुभं फलं नृणाम् ॥ १ ॥

जिस प्रकार के चन्द्र से रवि की संक्रान्ति हो उस मास का वैसा ही मनुष्यों का शुभाशुभ फल कहा गया है।

नारचन्द्र के अनुसार—

विड्वरं स्यात् समे चन्द्रे, सुभिक्षं चोत्तरोन्नते ।
ईति-राजभयं शूले, दुर्भिक्षं दक्षिणोन्नते ॥ १ ॥

उत्तरे भृंगोन्नते वृष्टि-र्दक्षिणे राजविड्वरम् ।
समे महार्घतां याति, ज्ञातव्यं चन्द्रमोदये ॥ २ ॥

समान चन्द्र में विड्वर, उत्तर की तरफ उन्नत होने पर सुभिक्ष, शूल के सम होने पर ईतिभीतियों का भय, दक्षिण की तरफ उन्नत होने पर दुर्भिक्ष होता है । उत्तर की तरफ ऊँची अणी हो तो वृष्टि, दक्षिण को तरफ ऊंची अणी हो तो राजभय तथा समान चन्द्र होने पर अनाज में मँहगाई, इस प्रकार से चन्द्र के उदय का फल जानना चाहिये ।

आकृति के विषय में अन्य भी कहा है—

रक्ते रसाः क्षयं यान्ति, शुक्ले वृष्टि समागमः ।
कृष्णे मृत्युं विजानीयात्, सुभिक्षं पीतवर्णके ॥३॥

श्वेतवर्णे भवेद् वृष्टि-धूम्रे लोको विनश्यति ।
शान्तं रक्ते तु ज्ञातव्यं, अपि(पीत) कृष्णे महद् भयम् ॥४॥

नवीन उदित चंद्र रक्तवर्ण वाला हो तो रसक्षय होता है, श्वेतवर्ण हो तो वृष्टि का समागम होता है, कृष्णवर्ण हो तो मृत्यु का समागम होता है और यदि पीतवर्ण हो तो सुभिक्ष और धान्य की अतुल वृद्धि जानना चाहिये । श्वेतवर्ण में वृष्टि, धूम्रवर्ण में लोगों का नाश, रक्तवर्ण में शांतता (मंदता) आती है तथा कृष्णवर्ण में महान भय की उत्पत्ति होती है ।

अद्द भरणी असलेसा जिट्ठा, अन्नइ साइ सइभिस छट्ठा ।
एहे रिक्खे जइ उग्गमइ मयंका, तो महिमंडल रुलइक रंका ॥५॥

आर्द्रा, भरणी, अश्लेषा, ज्येष्ठा, स्वाति और शतभिषा इन छः नक्षत्रों में जो नवीन चन्द्र उदित हो तो पृथ्वीमंडल में भयंकर हाहाकार प्रवर्तित होता है।

मेष और तुला संक्रान्ति के लिये—

भानूदये विषुवती जगतां विपत्तिः,
मध्यं दिने सकल सस्यविनाश हेतुः।
अस्तंगते सकल सस्य समृद्धि वृद्धिः,
क्षेमं सुभिक्षमतुलं निशिचार्ध रात्रे ॥ ६ ॥

विषुवती संक्रान्ति सूर्योदय में हो तो जगत को महान विपत्ति का सामना करना पड़ता है, मध्याह्न काल में हो तो सारे धान्य का नाश हो जाता है, सूर्यास्त काल में हो तो सकल सस्य को अभिवृद्धि होती है, मध्यरात्रि में हो तो अतुल सुख तथा सुभिक्ष कारक है।

ग्रहनिर्मुक्ते चन्द्रे, सप्ताहान्तर्यदा प्रचुरवृष्टिः।
क्षेमंसुभिक्षमतुलं, भूपाः सुस्थाः सुवृष्टिश्च ॥ ७ ॥

चंद्र ग्रह की युति से पृथक हो जाय उसके बाद सात दिन में यदि प्रचुर वृष्टि हो तो जगत में अतुल सुख और सुभिक्ष होता है। राजा आनंदित होते हैं और वृष्टि भी अनुकूल होती है।

'दिव्यकाल' का अल्प निर्देश त्रैलोक्यप्रकाश के अनुसार—

शुक्रास्ते भाद्रमासे शुभभगणगते वाक्पतौ सौस्थ्यहेतौ,
ज्येष्ठाद्याहे सुवारे शशिसितभगणेषूदिते निश्चगस्ते।
क्रूरे भूपादिवर्गे विघटिनि समये मङ्गले वक्रितेऽपि,
चापाढ्याः पूर्वधिष्ण्ये प्रहरवसुगते जायते दिव्यकालः ॥१॥

भाद्रमास में शुक्रास्त शुभ राशि में गमन,

अनुकूल गुरु, ज्येष्ठा के प्रथम दिवस के वार चंद्र, शुक्र नक्षत्र, रात्रि में उदित अगस्ति, वर्ष का क्रूर राजादि बढता घटता समय, वक्री मंगल, आषाढ़ी पूर्णिमा का पूर्वा नक्षत्र और पूर्ण प्रहर का भोग, ये संयोग हो तो 'दिव्यकाल' होता है ।

विशेष इस प्रकार से है—

शुक्रस्याऽस्तमने वृष्टि-रुदये च बृहस्पतौ ।
चलितांगारके वृष्टि-स्त्रिधा वृष्टिः शनैश्चरे ।। १ ।।

शुक्र के अस्तमन में, गुरु के उदय में, मंगल के राशि के त्याग में और शनि के उदय अस्तमन, वक्रता या चलित में अवश्य वृष्टि होती है । किन्तु अषाढ में बुध का उदय होने पर, श्रावण में शुक्रास्त हो तो दुष्काल पड़ता है और एक राशि पर शुक्र के रहते शनि अस्त हो जाय तो भी अशुभ है ।

चातुर्मास (चौमासा) में आर्द्रा से सात नक्षत्र में कोई ग्रह आवे तब वृद्धि होती है तथा चौमासे मैं चित्रा, स्वाति और विशाखा नक्षत्र में वृष्टि नहीं हो तो उस मास में वृष्टि नहीं होती है । उसी प्रकार ज्येष्ठ शुक्ला प्रतिपदा, दिवालो, और सूर्य के आर्द्रा प्रवेश के दिन सौम्यवार हो तो शुभ है । चातुर्मास में जिस दिन चन्द्र और मंगल एक राशि में मिले तो उन-उन दिनों में वृष्टि होती है । चंद्र, मंगल और गुरु तीनों एक राशि में मिले तो बहुत वृष्टि होती है । उसी प्रकार अन्य भी जाने ।

आषाढ में शुभवार के दिन रोहिणी, अक्षयतृतोया के दिन रोहिणी, श्रावणो पूनम को श्रवण और कार्तिक पूर्णिमा को कृतिका नक्षत्र हो तो शुभ है । उसी प्रकार वर्ष में अगस्ति का तारा रात्रि में उदित हो तो वर्ष शुभ है । मंगल वक्री हो तो भी शुभ है । मंगल के चलित होने पर वृष्टि, बुध के वक्री होने पर जगत में महोदय, शुक्र के वक्री होने पर शांति, शनि के वक्रो होने पर

रोग तथा मंगल, हस्त, मघा, रेवती या आर्द्रा में वक्री हो तो पृथ्वी पर विश्व युद्ध की सम्भावना रहती है ।

नारचंद्र के अनुसार—

यदि बुध, गुरु और शुक्र में कोई भी दो ग्रहों का मिलन हो तो जगत में आनन्द रहता है । शनि और राहु में कोई एक एक राशि पर आये तो अनाज में मंहगाई बढती है तथा रोग पीड़ा भी होती है । यदि सातों ग्रह एक राशि पर एकत्रित हो जाय तो लम्बे समय तक संसार में असन्तोष, बेकारी, युद्ध और मनुष्यों का नाश होता है ।

ताराद्वार—

जम्मा कम्मं च आहाएं, तारा अट्ठट्ठ अंतरे ।
सस्स नाम फला सव्वा, अंतरा इअनामिआ ॥२५॥

तारा नौ है । जन्म, कर्म और आघात ये तीन ताराएं आठ-आठ ताराओं की अन्तरता से आती हैं । ये अपने नाम के अनुरूप ही फल भी देने वाली है । विशेष ज्ञान के लिये—

(तारा कोष्टक देखिये)

तारा कोष्टक

१	पु जन्म-	अ	म	पू.फा.	उ.फा.	ह	चि०	स्वा०	वि०
	१	२	३	४	५	६	७	८	९
२	अ कर्म-	ज्ये०	मू०	पू.षा.	उ.षा.	श्र	ध०	श०	पू.भा.
	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
३	उ०भा० आधान	रे०	अ०	भ०	कृ०	रो०	मृ०	आ०	पु०
	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७
नाम	१	संपत २	विपत् ३	क्षेमा ४	यामा प्रत्यं-शा	साध ना ६	निध ना भृति	मैत्री ८	परम मैत्री

जैसे जन्म नक्षत्र पुष्य हो तो उसमें प्रथम 'नवक' की आठ-आठ नक्षत्र के अन्तर से रहने वाली प्रथम, दशम और उन्नीसवीं तारा का नाम अनुक्रम से जन्म, कर्म और आधान है। ये अपने नाम के अनुरूप फल देती है। तारा खोजने की रीति सारङ्ग के अनुसार—

गणयेत् स्वामिनक्षत्राद्, यावद्धिष्ण्यं ग्रहस्य च ।
नवभिस्तु हरेद् भागं, शेषं ताराः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥

ग्रह स्वामी के नक्षत्र से ग्रह नक्षत्र तक गिन कर उसे नौ से भाग देना चाहिये, जो शेष रहे उसे तारा जानना चाहिये।

वास्तु शास्त्र में तारा उपयोगी है। वास्तु शास्त्र कों नवतारा के नाम— शान्ता, मनोरमा, क्रूरा, विजया, कलहोद्भवा, पद्मिनी, राक्षसी, वीरा, और आनन्दा।

जन्म, कर्म और आधान के मध्य द्वितोया से नवमी तक ताराओं के नाम—

संपई आवई खेमा, जामा साहण निद्धणा।
मित्ती परममित्ती अ, दुट्ठा ति सग पंचमा॥ २६॥

जम्माहाणा विवज्जिज्जा, गमे एयाहि वाहिओ।
कट्ठेण जीवई किण्हे, पक्खे चंदुत्तरा इमा॥ २७॥

संपत्, आपत्, क्षेमा, यामा, साधना, निर्धना, मैत्री और परम मैत्री ये शेष आठ ताराएँ हैं। नव तारा में से तीसरी, सातवीं, और पांचवीं तारा दुष्ट है। जन्म और आधान तारा गमन में वर्जित है तथा तीसरी, पाँचवो, सातवो, जन्म और आधान तारा में रोगी हुआ हो तो मुश्किल से जिन्दा रह सकता है। ये ताराएँ कृष्ण पक्ष में चन्द्र से अधिक श्रेष्ठ है।

जैसे जन्म नक्षत्र से २-११-२० वां नक्षत्र यह दूसरो संपत् तारा, ३-१२-२१ वां नक्षत्र यह तीसरी विपत् तारा, ४-१३-२२ वां नक्षत्र यह चौथी क्षमा ५-१४-२३ वां नक्षत्र यह पांचवीं यामा, ६-१५-२४ वां नक्षत्र यह छट्ठी साधना, ७-१६-२५ वां नक्षत्र यह सातवीं निर्धना, ८-१७-२६ वां नक्षत्र यह आठवीं मैत्री और ९-१८-२७ वां नक्षत्र यह नवमी परम मैत्री तारा कही जाती है।

लल्ल के मत में—

यद्यपि स्याद् बली चन्द्र-स्तारा तथाप्यनिष्टदा।

यदि चंद्र बलवान भी हो जाय तो भी अनिष्ट देने वाली ताराएँ अनिष्ट देती हैं ।

आधान के लिये लल्ल का मत—

यात्रा-युद्ध विवाहेषु, जन्मतारा न शोभना ।
शुभान्यशुभकार्येषु, प्रवेशे च विशेषतः ।। १ ।।

जन्म तारा यात्रा, युद्ध और विवाह में श्रेष्ठ नहीं है । किन्तु अन्य शुभ कार्यों में शुभ है और प्रवेश कार्य में विशेष शुभ है किन्तु क्षुरकर्म, विवाद, युद्ध, यात्रा, विवाह कार्य और रोगोत्पत्ति में अशुभ है । जन्म नक्षत्र के द्वारा आधान नक्षत्र के लिये भी जान लेना चाहिये ।

कर्म, सम्पत और मैत्री तारा मध्यम है, क्षेमा, साधना एवं परममैत्री तारा श्रेष्ठ है ।

शेषासु तारासु व्याधिः, साध्यो नृणां भवति जातः ।
व्याधिवदवबोद्धव्याः, सर्वारम्भाश्च तारासु ।। २ ।।

मनुष्य को शेष ताराओं में उत्पन्न व्याधि साध्य हो जाती है. ताराओं में सारे आरम्भ व्याधिवत् शुभाशुभ फलवाले जानने चाहिये ।

ऋक्षं न्यूनं तिथिर्न्यूना, क्षपानाथोऽपि चाऽष्टमः ।
तत्सर्वं शमयेत्तारा, षट्-चतुर्थ-नवस्थिताः ।। ३ ।।

चाहे नक्षत्र अशुभ हो, तिथि अशुभ हो और चन्द्र भी आठवां हो, इन सबका छट्ठी, चौथी और नवमी तारा शमन कर देती है ।

दुष्ट तारा के लिये लल्ल का मत—

प्रत्यरे जन्मनक्षत्रे, मध्याह्नात् परतः शुभम् ।

सातवीं तारा और मध्याह्नोपरान्त काल शुभ है ।

शुक्ल पक्ष में चन्द्र का बल देखा जाता है जबकि कृष्ण पक्ष में चन्द्र के बदले तारा का बल देखा जाता है । कहा है—

चन्द्राद् बलवती तारा, कृष्णपक्षे तु भर्तरि ।
विकले प्रोषिते च स्त्री, कार्यं कर्तुं यतोऽर्हति ॥ १ ॥

कृष्ण पक्ष में चन्द्र से भी अधिक तारावल रहता है । क्योंकि स्वामी विकलांश हो या उपस्थित न हो तो स्त्री उसका कार्य कर सकती है ।

व्यवहारप्रकाश में भी कहा है—

कृष्णस्याऽष्टम्यर्धादनन्तरं तारकाबलं योज्यम् ।
प्रतिपत्प्रान्तोत्पन्नं, सन्ध्याकालोदयं यावत् ॥ १ ॥

कृष्ण पक्ष की अष्टमी के अर्द्धभाग से प्रारम्भ होकर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के अंत का सन्ध्याकाल जब तक उदय हो तब तक तारा का बल ग्रहण करना चाहिये ।

योगद्वार—

चउ छट्ठ नवम दसमं, तेरस वीसं च सूररिक्खाओ ।
ससिरिक्खं होइ तया, रविजोगो असुहसयदलणो ॥२॥

सूर्य के नक्षत्र से चौथा, छट्ठा, नवमां, दशमा, तेरहवां और बीसवां चन्द्र नक्षत्र हो तो रवियोग होता है और बहुत से अशुभ योगों को नष्ट करता है । त्रिविक्रम के मत में योगों में दुष्टयोग, सामान्ययोग, सुयोग, सिद्धियोग और अमृतसिद्धियोग ये पांच

वर्ग हैं, जिनका फल अनुक्रम से— अत्यन्त असिद्धि, दैवात् सिद्धि, विलंब से सिद्धि, इच्छित सिद्धि और इच्छाधिक सिद्धि है ।

नारचंद्र के मत में रवि नक्षत्र से सत्ताइस नक्षत्रों में किये गये कार्य का फल इस प्रकार है—

रविरिक्खम्मि अ मरणं, बीए कलहं भयं च तह तइए ।
होइ चउत्थे सुक्खं, पुत्तवहं पंचमे रिक्खे ॥१॥
छट्ठे जिणेइ सत्तु, मित्तविणासं च सत्तमे रिक्खे ।
मरणं अट्ठमरिक्खे, पूआलाहो अ नवमम्मि ॥२॥
दसमम्मि लाभसिद्धि, इक्कारसमे पडेइअ पयाओ ।
बारसमे अइदुहिओ, तेरसमे अइसुही होइ ॥३॥
चउद्दसमे नाइभेओ, वज्जपाओ भवेइ पन्नरसमे ।
सोलसमे धनहाणी, सत्तरमाइ तिन्निओ ॥
॥ धणहरणाईणि कुव्वन्ति ॥४॥
बीसइमो रविभोगो, रज्जं पकरइ हीणवंसस्स ।
सम्मेमिणं मुणिऊणं, जइअव्वं सुकलपक्खम्मि ॥५॥
अइआइं सत्र वज्जह, दिणमग्गेण तिव्वदुक्खाइं ।
सो तेण होइ दुहिओ, जो ठावइ कीलमात्तंपि ॥६॥
इति रवियोग फलम् ।

सूर्य नक्षत्र में मृत्यु, सूर्य नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र में कलह तीसरे में भय, चौथे में सुख, पांचवे में पुत्रवध, छट्ठे में शत्रु जय, सप्तम में मित्र हानि, अष्टम में मृत्यु, नवम में पूजा लाभ, दशम में लाभ सिद्धि, ग्यारहवें में स्थान भ्रष्ट, बारहवें में अतिदुःख, तेरहवें में सुख, चौदहवें में ज्ञातिभेद, पन्द्रहवें में वज्रपात, १६ में

धनहानि, १७, १८ तथा १९ में धनहरण, २० में हीनवंशवाले को भी राज्यलाभ तथा सूर्य नक्षत्र से २१, २२, २३, २४, २५, २६ तथा सत्ताइसवें नक्षत्र में काम करने से तीव्र दुःख आदि फल मिलते हैं अर्थात् कील मात्र भी रोपित करे तो दुःखी होता है।

सूर्य नक्षत्र से इष्ट चन्द्र नक्षत्र तक होने वाले सत्ताइस योगों में चौथा, छट्ठा, नवमा, दशमा, तेरहवां और बीसवें चन्द्र से होने वाले योग महासिद्धि को करने वाले रवियोग कहे जाते हैं। इन योग के लिये यतिवल्लभ में कहा गया है— शुद्ध लग्न के बल के समान रवि का बल है। नारचंद्र के अनुसार— सिंह के भय से पलायित हजारों हस्ति जैसे दिखाई नहीं देते वैसे ही रवियोग से नष्ट ग्रह भी आकाश में दृष्टिगत नहीं होते।

हर्षप्रकाश के अनुसार रवियोग का फल—

एयाणं फलं कमसो, विउलं सुक्खं ४ जयं च सत्तूणं ६।
लाभं च९ कज्जसिद्धि१०, पुत्तुप्पत्तो अ१३ रज्जं च२० ॥१॥

इन छः रवियोगों का फल अनुक्रम से निम्न प्रकार से है— चौथे में विपुल सुख, छट्ठे में शत्रु जय, नवमें में लाभ, दशवें में कार्य सिद्धि, तेरहवें में पुत्र जन्म और बीसवें में राज्य प्राप्ति है। शेष योगों में कितने हो दुष्ट योग हैं और कितने ही मध्य योग हैं। आरम्भसिद्धि में कहा गया है— सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र पहला, पांचवां, सातवां, आठवां, ग्यारहवां, पन्द्रहवां और सोलहवां हो तो मृत्यु योग होता है।

नारचन्द्र के अनुसार—

विद्युन्मुख शूलाऽशनि, केतू-ल्का वज्र-कम्प-निर्घाताः।
ङ ज ढ द ध फ ब भ संख्ये रविपुरत उपग्रहा धिष्ण्ये ॥१॥

आश्लेषा में कखादि संकेतों से अंक की सूचना की गई है। अतः सूर्य नक्षत्र से पंचम, अष्टम, १४वां, १८वां, १६वां, २२, २३ और २४वां चन्द्र नक्षत्र उपग्रह संज्ञा वाला है। उनका नाम अनुक्रम से— विद्युन्मुख, शूल, अशनि, केतू, उल्का, वज्र, कंप और निर्घात् है।

विवाहादि कार्य में इन आठों ग्रहों का अनुक्रम से— पुत्र मरण, पतिमरण, वज्रपात, पतिनाश, धननाश, दुःशीलता, स्थानभ्रंश और कुलक्षय है। उदयप्रभसूरिजी तो सूर्य नक्षत्र से सातवां, १५वां, २१वां तथा पच्चीसवां चन्द्र नक्षत्र भी उपग्रह के रूप में बताते हैं।

नारचंद्र टिप्पणी में भी सातवें उपग्रह को अति ही दुष्ट माना है।

सूर्यर्क्षात् सप्तमं ऋक्षं, भस्मयोगं तु तद् भवेत्।
यत्किञ्चित् क्रियते कार्यं, तत्सर्वं भस्मसाद् भवेत् ॥१॥

सूर्य नक्षत्र से सातवां नक्षत्र हो उसे भस्मयोग कहते हैं। इस नक्षत्र में किया हुआ कार्य सर्वनाश कराता है।

ज्योतिषहीर—

चन्द्र नक्षत्र से पन्द्रहवां नक्षत्र दण्डयोग है जो महान अशुभ है। इसी प्रकार पातयोग तथा आडलयोग भी नेष्ट है।

नरपति जयचर्या—

सूर्यभाद् गणयेन्दोर्भं, सप्तभिर्भागमाहर।
शून्यं द्वौ वा न शेषो चे-दाडलो नास्ति निश्चितम् ॥१॥

सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक के अंक गिनकर उसमें सात का भाग देना चाहिये, यदि शेष में शून्य या दो का अंक न रहे

तो आडलयोग नहीं है, नहीं तो शेषयोग है । इस योग का भी शुभ कार्यों में त्याग करना चाहिये । यात्रा में यह योग विशेषकर के छोड़ना चाहिये ।

मुहूर्तचिंतामणि में कहा गया है—

सूर्य नक्षत्र से छट्ठा, १३वां, २०वां, २७वां नक्षत्र भ्रमणयोग है । यह भी यात्रा तथा शुभ कार्यों में वर्जित है । इसी प्रकार सघोरिष्ट, कुल्य, हिबरादियोग है ।

कुमारयोग—

सोमे भोमे बुहे सुक्के, अस्सिणाइं बिइंतरा ।
पंचमी दसमी नंदा, सुहो जोगो कुमारओ ॥ २६ ॥

सोम, मंगल, बुध या शुक्र में से एक वार हो, दो-दो के अन्तर से रहने वाला अश्विनी आदि नक्षत्र में से एक नक्षत्र हो और पंचमी, दशमी या नंदा में से एक तिथि हो तो कुमार योग होता है । ★कुमारयोग तिथि, वार और नक्षत्र इन तीनों से होता है ।

कुमारयोग के बल के लिये नारचंद में कहा है—

कुमारोदयवेलायां, लाभो भवति पुष्कलः ।
रोगी भव्यो जयो युद्धे, यात्रा भवति सिद्धिदा ॥१॥

★ योगः कुमारनामा, शुभः कुजज्ञेन्दुशुक्रवारेषु ।
अश्वाद्यैर्द्वयन्तरितै-र्नन्दादशपञ्चमीतिथिषु ॥ (आरम्भ० १।३५)
राजयोगो भरण्याद्यैर्द्व्यन्तरैर्भैः शुभावहः ।
भद्रा तृतीयाराकासु, कुजज्ञभृगुभानुषु ॥ (आरम्भ० १।३६)
त्रयोदश्यष्टमी रिक्ता, स्थविरे स्याद् गुरुशनौ ॥ (नार०)

बङ्गालमुनिभिः प्रोक्तः कुमार योगो दिनेसदोषेऽपि ।
ग्रस्मिन् कार्यं दीक्षा विवाहयात्रा प्रतिष्ठादि ।।२।।

कुमारयोग के प्रारम्भ के समय में बहुत लाभ होता है। उस वक्त में हुआ रोगी शीघ्र अच्छा हो जाता है। युद्ध में गया विजय प्राप्त करता है, प्रवास भी फलदायक है। बंगाल मुनि के अनुसार कुमारयोग दूषित दिन होने पर भी दीक्षा, विवाह, प्रतिष्ठा और यात्रा में ग्राह्य है। लग्नशुद्धि में कहा गया है—यदि विरुद्ध योग न हो तो कुमारयोग द्वारा गृह प्रवेश, मित्रता, धर्म, शिल्प और विद्या आदि शुभ कार्य करने चाहिये।

राजयोग—

सूरे सुक्के बुहे भोमे, भद्दा तीया य पुण्णिमा ।
बिन्तरा भरणीमुक्खा, राजजोगो सुहावहो ।। ३० ।।

रवि, शुक्र, बुध या मंगलवार को भद्रा तीज या पूनम हो और दो-दो के अन्तर वाले भरणी आदि नक्षत्र हो तो सुखकारक राजयोग होता है। यह योग भी शुभ तथा मांगलिक कार्यों में सुखकर है। सामान्यतया हरेक ग्रंथों में कुमारयोग से राजयोग को बलिष्ट माना गया है। इस योग का दूसरा नाम तरुणयोग है।

रवि, कुमार और राजयोग के लिये नारचन्द्र टिप्पणी में कहा गया है—

रविजोगे राजजोगे, कुमारजोगे असुद्धदिग्रहे वि ।
जं सुहकज्जं किरइ, तं सव्वं बहुफलं होई ।। १ ।।

अशुभ होने पर भी रवियोग, राजयोग और कुमारयोग में जो शुभ कार्य किये जाते हैं वे कार्य बहुत फलदायक होते हैं।

ज्योतिषहीर में कहा गया है—

गृहप्रवेशो मैत्री च, विद्यारम्भादिसत्क्रिया ।
राजपट्टाभिषेकादि, राजयोगेऽभिधीयते ।। १ ।।

ग्रहप्रवेश, मैत्री, विद्यारंभ आदि सत्कार्य और राजा का पट्टाभिषेक आदि राजयोग में किये जाते हैं ।

स्थविरयोग—

गुरुवार या शनिवार, रिक्ता या अष्टमी तिथि और दो-दो के अन्तर में रहने वाली कृतिका आदि नक्षत्र एक ही दिन आये तो स्थविरयोग होता है । इस योग में पुनः दूसरी बार नहीं करने जैसे कार्य, व्याधि का उपचार और अनशन आदि कार्य करने चाहिये । इस योग में किये गये कार्य का पुनरावर्तन नहीं रहता अतः जो-जो कार्य एक ही बार करने के हों वे कार्य स्थविरयोग में किये जाते हैं ।

पाकश्री ग्रंथ में कहा है—

अणसणखिलवाहिरिणं, रिउरणदिव्वं जलासए बंधो ।

स्थविरयोग में अनशन, व्याधि, छेद ऋण प्रतिक्रियात्मक कार्य, शत्रु वध, युद्ध दिव्य परीक्षा और जलाशय बांधना आदि कार्य करने चाहिये । कुमार, राज तथा स्थविर तीनों शुभ योग हैं । तिथि, वार और नक्षत्र से होने वाले अन्य शुभाशुभ योग निम्न प्रकार से हैं ।

मुहूर्तचिंतामणी के अनुसार—

वर्जयेत् सर्वकार्येषु, हस्तार्कं पञ्चमीतिथौ ।
भौमाऽश्विनीं च सप्तम्यां, षष्ठयां चन्द्रेन्दवं तथा ।।१।।

बुधाऽनुराधां चाष्टम्यां, दशम्यां भृगुरेवतीम् ।
नवम्यां गुरुपुष्यं चै-कादश्यां शनिरोहिणीम् ॥२॥

पंचमी रविवार को हस्तनक्षत्र हो, सप्तमी भौमवार को अश्विनी नक्षत्र हो, षष्ठी सोमवार को मृगशीर्ष नक्षत्र हो, अष्टमी बुधवार को अनुराधा नक्षत्र हो, दशम शुक्रवार को रेवती नक्षत्र हो नवमी गुरुवार को पुष्य नक्षत्र हो तथा एकादशी शनीवार को रोहिणी नक्षत्र हो ता मृत्यु योग होता है। इस मृत्युयोग में शुभकार्य का त्याग करना चाहिये।

अमृतसिद्धि योग में पंचमी आदि सात तिथि अनुक्रम से आने पर यह योग होता है। अतः यह अमृतसिद्धि योग का यह घातक है।

हेमहंसगणि के अनुसार— (आरंभसिद्धि टीका)

कत्तियपभइ चउरो, सणिबुहससिसूरवारजुत्त कमा ।
पंचमि बीइ इगारसी, बारसि अबला सुहे कज्जे ॥१॥

शनिवार, बुधवार, सोमवार और रविवार को अनुक्रम से पंचमी, बीज, एकादशी और द्वादशी तिथि हो तथा कृतिका, रोहिणी, मृगशरा और आर्द्रा ये कृतिकादि चार नक्षत्र हो तो शुभ कार्य को निर्बल करने वाला 'अबलायोग' होता है।

नारचंद्र में जन्म विषयोग के लिये कहा है—

शन्यश्लेषा द्वितीयाभिः, सप्तमी भोमवारुणी ।
कृतिका द्वादशीसूर्ये, रेवत्यां विषसंज्ञकम् ॥१॥

बीज और शनिवार को अश्लेषा हो, सप्तमी भोमवार को शतभिषा नक्षत्र हो, द्वादशी और रविवार को कृतिका नक्षत्र हो या रेवती का गंडांतयोग हो तो विषयोग होता है। अन्यत्र कहा है— ये तीनों तिथि, वार और नक्षत्र किसी भी प्रकार परस्पर योग प्राप्त

करें, तो कन्या विषयोग होता है । यह जन्मविषयोग, तीन गंडांत, भौमवासर, चतुर्दशी, अभिजित्, मूल, ज्येष्ठा और अश्लेषा में जन्मा हुआ बालक 'विषबालक' कहा जाता है । जो अधिकतर कुटुम्ब का नाश करता है ।

ज्योतिष हीर में कहा है—

तिथिवार रिक्खइक्कं, मिलिअंकाइ कहिय सव्वंकं ।
पण इगारस तेरस, सत्तर ओगणिस तेवीसं ॥ १ ॥

पणवीस गुणतीसा, इगतीस सइतीस एगयालीसा ।
तेयाली सइताला, पमुहा सव्वेहिं मंगल्लं ॥ २ ॥

तिथिवार और नक्षत्र इन तीनों का योग करने पर सर्वाङ्क योग होता है। इनमें पांच ग्यारह तेरह सत्रह उन्नीस तेइस पच्चीस उनतीस एकत्रीस सैंतीस इकत्तालीस तियालीस तेंतालीस और सैंतालिस का अंक आवे तो वह मङ्गलकारण सर्वाङ्क योग है ।

अब शुभाशुभ कार्य को बढाने वाले द्विपुष्कर त्रिपुष्कर और पंचक के विषय में लिख रहे हैं ।

मंगल गुरु सणि भद्दा,
मिग चित्त धणिट्ठिआ जमलजोगो ।
कित्ति पुण उ-फ विसाहा,
पू-भ-उ-खाहिं तिपुक्करओ ॥ ३२ ॥
पंचग धणिट्ठअद्धा,
मयकिअ वज्जिज्ज जामदिसि गमणं ।
एसु तिसु सुहं असुहं,
बिहिअं दुति पण गुणं होइ ॥ ३३ ॥

भद्रा तिथि वाला मंगल, गुरु या शनिवार को मृगशर चित्रा और धनिष्ठा नक्षत्र हो तो यमल योग होता है और कृतिका पुनर्वसु उत्तराफाल्गुनी विशाखा पूर्वाभाद्रपद या उत्तराषाढा नक्षत्र हो तो त्रिपुष्कर योग होता है ।

धनिष्ठा के आधे भाग से रेवती पर्यन्त पंचम कहे जाते हैं । इसमें मृतक कार्य तथा दक्षिण दिशा में गमन को वर्जित करना चाहिये । इन तीनों योगों में किये गये कार्य दुगुने तिगुने और पांचगुने होते हैं । आरम्भसिद्धि में कहा गया है— अकस्मात् यदि किसी की मृत्यु हो जाय तो शव के साथ दर्भ के चार पुत्तल और रखने चाहिये और उनका भी शव के संस्कारों की तरह ही संस्कार कर शव के साथ अग्निसात् कर लेना चाहिये । जिससे मरने वाले के गोत्र में अन्य किसो की मृत्यु की संभावना नहीं रहती । ऐसा गरुड़ पुराण में दहनविधि में कहा गया है ।

पंचक में इष्ट कार्य करने का निशेध नहीं है, क्योंकि पंचक के नक्षत्रों में दीक्षा दी जा सकती है । जिनमंदिर का खात मुहूर्त, जिनबिंब प्रवेश, जिनेश्वर प्रतिष्ठा, और यात्रा भी की जा सकती है । पंचक में दक्षिण दिशा में गमन का निषेध है । किन्तु श्रवण और रेवती नक्षत्र में सर्वकाल में सर्व दिशा में यात्रा की जा सकती है ।

व्यवहारसार –

धनिष्ठा धननाशाय, प्राणघ्नी शततारका ।
पूर्वायां दण्डयेद् राजा, उत्तरा मरणं ध्रुवम् ॥१॥
अग्निदाहश्च रेवत्या-मित्येतत् पञ्चके फलम् ॥

धनिष्ठा में कार्य करने से धन का नाश, शततारा में कार्य करने से प्राण का नाश, पूर्वाभाद्रपद में कार्य करने से राजदंड,

उत्तरा में कार्य करने से निश्चय ही मृत्यु होती है और रेवती में कार्य करने से अग्निदाह होता है।

'सप्तविचार' के अनुसार—

मकर और कुम्भ का चन्द्र हो अर्थात् उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र ये 'शरण पंचक' हैं। इस शरण पंचक का अवश्य त्याग करना चाहिये।

योग यंत्रक

योग का नाम	वार	तिथि	नक्षत्र
कुमार योग	सोम मंगल बुध शुक्र	१-५-६-१०-११	अ० रो० पुन० म० ह० वि० मू० श्र० पू० भा०
राजयोग	रवि भोम बुध शुक्र	२-३-७-१२-१५	भ० मृ० पुष्य० पू० फा० चि० अनु० पूषा० ध० उभा०
स्थविरयोग	गुरु शनि	४-८-९-१३-१४	कृ० आ० अश्ले० उफा० स्वा० ज्ये० उषा० श० रे०
द्विपुष्कर	मंगल गुरु शनि	भद्रा	मृ० चि० धनि०
त्रिपुष्कर योग	मंगल गुरु शनि	२-७-१२	कृ० पुन० उफा० वि० पूभा० उषा०

प्राचीन हस्तलिखित पत्र के आधार पर—

अमृत सिद्धिघ्न मृत्युयोग

रवि	५	हस्त
सोम	६	मृगशर
मंगल	७	अश्वीनी
बुध	८	अनुराधा
गुरु	९	पुष्य
शुक्र	१०	रेवती
शनि	११	रोहिणी

अबला योग

रवि	१२	आर्द्रा
सोम	११	मृगशर
बुध	२	रोहिणी
शनि	५	कृतिका

विषयोग

शनि	२	अश्लेषा
मंगल	७	शतभिषा
रवि	१२	कृतिका

विष्कंभादिक की वर्जित घड़ियां—

पण छस्सग नव घडिआ,
विक्खंभ दुगंड सूल वाघारं ।
परिहद्धदिणं वज्जे,
विहिइ विईपाय सयलदिणं ।। ३८ ।।

विष्कंभ, दोगंड, शूल और व्याघात की पांच, छः, सात और नव घड़ियां वर्जित हैं, परिघ का आधा दिवस वर्जित है तथा वैधृति और व्यतिपात का सम्पूर्ण दिवस वर्जित है ।

निरन्तर विष्कंभादि सत्ताइस योग क्रमशः आते रहते हैं, उनके नाम आरम्भ सिद्धि में निम्न प्रकार से हैं—

विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान्, सौभाग्यः शोभनस्तथा ५ ।
अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलं तथैव च ६ ।।१।।
गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव, व्याघातो हर्षणस्तथा १४ ।
वज्रं सिद्धिर्व्यतिपातो, वरियान् परिघः शिवः २० ।।२।।
सिद्धः साध्यः शुभः शुक्लो, ब्रह्मा चैन्द्रोऽथ वैधृतिः २७ ।
इति सान्वयनामानो, योगाः स्युः सप्तविंशतिः ।।३।।

विष्कंभ, प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, अतिगंड, सुकर्मा, धृति, शूल, गंड, वृद्धि ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतिपात, वरियान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्मा, एन्द्र और वैधृति ये नामानुसार गुणवाले सत्ताइस योग हैं। इनमें विष्कंभ, अतिगंड, शूल, गंड, व्याघात, वज्रपात, व्यतिपात, परिध और वैधृति ये नो योग अशुभ हैं । इनका शुभ कार्य में त्याग करना चाहिये।

नारचन्द्र टिप्पणी में इन योगों की विशेष क्रूरता के लिये लिखा है—

विक्खंभ सूल गंडे, अइगंडे वज्ज तहय वाघाए ।
वइधिइ सूराइकमा, अइदुट्ठा मूलजोगाओ ।। १ ।।

रविवारादि सात वारों के साथ अनुक्रम से विष्कंभ, शूल, गंड, अतिगंड, वज्रपात, व्याघात और वैधृति ये सात योग आये तो ये मूल स्वभाव से भी अधिक दुष्ट हैं ।

किन्तु यदि अशुभ योगों को कदाचित् लेना पड़े तो आदि की जो वर्ज्य घड़ियां हैं उन्हें अवश्य त्याग देना चाहिये । यथा विष्कंभ की पाँच घड़ियां, गंड अतिगण्ड की छः, शूल की सात, और व्याघात की नव वर्जित है । परिघ योग का अर्धभाग वर्जित है । वैधृति तथा व्यतिपात की हरेक घड़ी वर्जित है । श्रीउदय

प्रभसूरि के मत में वज्रयोग भी दुष्ट है और उसकी नव घड़ियां वर्जित हैं ।

वैधृति और व्यतिपात के लिये लल्ल का मत—

विष्ट्यामङ्गारके चैव, व्यतिपातेऽथ वैधृते (मध्याह्नात्परतः शुभं)

विष्टि, अङ्गारक, व्यतिपात और वैधृति योग में मध्याह्नोपरान्त काल शुभ है ।

आनन्दादिक उपयोग फल—

अस्सिणि मिग अस्सेसा,
हत्थऽणुराहा य उत्तरासाढा ।
सयभिस कमेण एए,
सूराइसु हुन्ति मुहरिक्खा ॥ ३५ ॥

निअवारे निअरिक्खे,
मुहगणिए जत्तियं ससिरिक्खं ।
तावंतिमोवओगो,
आनंदाई सनामफलो ॥ ३६ ॥

अश्विनी, मृगशिर, अश्लेषा, हस्त, अनुराधा, उत्तराषाढा और शतभिषा ये सात नक्षत्र अनुक्रम से रवि आदि वारों के आनन्दादि उपयोग के लिये मुख नक्षत्र है । इनमें स्वयं के वार के दिन अपने मुख नक्षत्र से जितना चन्द्र नक्षत्र आवे उतना ही आनन्दादि उपयोग जानना चाहिये । अर्थात् अपने-अपने मुख नक्षत्र से जितनी संख्या में नक्षत्र हो उतनी ही संख्या वाला योग होगा यह जानना चाहिये । ये अपने नाम के अनुरूप ही फल देने वाले होते हैं ।

आणंद कालदंड, परिजा शुभ सोम धंस धज वच्छो ।
वज्जो मुग्गर छत्तो, मित्तो मणुन्नो य कंपो य ॥ १ ॥
लुंपक पवास मरणं, वाही सिद्धि सूल अमिग्र मुसलं ।
गज मातंग खय खिप्पं, थिरो य वद्धमाण परियाणं ॥२॥

आनन्द काल दण्ड, प्राजापत्य, शुभ सौम्य, ध्वांक्ष, ध्वज, श्रीवत्स, वज्र, मुद्गर, छत्र, मित्र, मनोज्ञ, कम्प, लुम्पक, प्रवास, मरण, व्याधि, (काल) सिद्धि, शूल अमृत मुशल गज मातंग क्षय क्षिप्र, (चर) स्थिर और वर्द्धमान ये अट्ठाइस प्रकार के उपयोग जानने चाहिये ।

ये नाम के अनुरूप ही फल देते हैं । यथा—

आनन्दो धनलाभाय, कालदण्डे महद् भयम् ।
प्राजापत्यस्तु पुत्राय, शुभे सर्वं शुभं भवेत् ॥ १ ॥
सौम्ये सर्व क्रिया सिद्धिः, ध्वाङ्क्षो क्षुद्राय मानसे ।
ध्वजेन कोटिरर्थः स्यात् श्रीवत्साद् रत्नसंचयः ॥ २ ॥
वज्रो वज्रभयं दद्याद् मुद्गरान्मरणं ध्रुवम् ।
छत्रं नृपसुखं दद्याद्, मित्रसमागमः ॥ ३ ॥

इन अट्ठाइस योगों में कालदण्ड ध्वांक्ष वज्र मुद्गर कम्प लुम्पक प्रवास मरण व्याधि शूल मुशल मातङ्ग और क्षय योग अशुभ है । शेष शुभ है ।

नारचन्द्र के प्रमाणानुसार यदि अशुभ योगों का सर्वथा त्याग न कर सके तो सारे कुयोगों की दो घड़ियां छोड़ देनी चाहिये तथा उत्पात मृत्यु और काल की सात घड़ियां छः घड़ियाँ तथा पांच घड़ियां वर्जित करनी चाहिये ।

ये योग वार और नक्षत्र के योग से होते हैं। प्रथम में तीन योगों से होने वाले योग दर्शाये गये हैं।

ज्योतिषहीर में सर्वाङ्कयोग दिया हुआ है वह इस प्रकार है—

योग चक्र

	नाम	रवि	सोम	भोम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१	आनन्द	अश्वि	मृग०	अश्लेषा	हस्त	अनु०	उषा०	शत०
२	कालदण्ड	भरणी	आ०	मघा	चित्रा	ज्ये०	अ०	पुभा०
३	प्राजापत्य	कृतिका	पुन०	पुफा०	स्वाति	मूल	श्र०	उभा०
४	सुरोत्तम	रोहिणी	पुष्य	उफा०	वि०	पुषा०	ध०	रेवती०
५	सौम्य	मृग०	अश्ले०	हस्त	अनु०	उषा०	शत०	अश्वि०
६	ध्वांक्ष	आ०	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अ०	पुभा०	भरणी
७	ध्वज	पुन०	पुफा०	स्वाती	मूल	श्रवण	उभा०	कृतिका
८	श्रीवत्स	पुष्य	उफा०	वि०	पुषा०	ध०	रे०	रोहीणी
९	वज्र	अश्ले०	हस्त	अनु०	उषा०	शत०	अश्वि	मृग०
१०	मुद्गर	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अ०	पुभा०	भ०	आ०
११	छत्र	पुफा०	स्वाती	मूल	श्रवण	उभा०	कृ०	पुन०
१२	मित्र	उफा०	वि०	पुषा	धनिष्ठा	रेव०	रो०	पुष्य
१३	मनोज्ञ	हस्त	अनु०	उषा०	शत०	अश्वि	मृ०	अश्लेषा
१४	कंप	चित्रा	ज्येष्ठा	अ०	पुभा०	भ०	आ०	मघा

१५	लुम्पक	स्वाति	मूल	श्रवण	उभा०	कृ०	पुन०	पुफा०
१६	प्रवास	वि०	पुषा०	ध०	रेवती	रो०	पुष्य	उफा०
१७	मरण	अनु०	उषा०	शत०	अश्वि०	मृ०	अश्ले	हस्त
१८	व्याधि-काण	ज्येष्ठा	अभि०	पुभा०	भरणी	आ०	मघा	चित्रा
१९	सिद्धि	मूल	श्रवण	उभा०	कृतिका	पुन०	पुफा०	स्वाति
२०	शूल (भ)	पुषा०	ध०	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उफा०	विशाखा
२१	अमृत	उषा०	शत०	अश्विनी	मृग०	अश्ले	हस्त	अनु०
२२	मुशल	अभि०	पुभा०	भरणी	आ०	मघा	चि०	ज्ये०
२३	गज	श्रवण	उभा०	कृतिका	पुन०	पुफा०	स्वाति	मूल
२४	मातङ्ग	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उफा०	वि०	पुषा०
२५	राक्षस	शत०	अश्विनी	मृग०	अश्लेषा	हस्त	अनु०	उषा०
२६	चर	पुभा०	भरणी	आ०	मघा	चित्रा	ज्ये०	अ०
२७	स्थिर	उभा०	कृतिका	पुन०	पुफा०	स्वाति	मूल	श्रवण
२८	वर्धमान	रे०	रोहिणी	पुष्य	उफा०	वि०	पुषा.	धनिष्ठा

चैत्रादि गत मास को दुगने कर उसमें चालू मास के गत दिवस मिलाने पर और उसमें सात से भाग देना चाहिये, भाग देने पर जो शेष रहे उनका इस प्रकार से नाम है—

सिरियं कलहे य आणंदं, मिय धम्म तपस विजयं।

श्री, कलह, आनन्द, मृत्यु, धर्म, तपस और विजय इन सातों योगों के नामानुरूप ही फल है।

प्रथम वार तथा तिथि का फल—

नवमेगट्ठमी सूरे, सोमे बीग्रा नवमिग्रा ।
भोमे जयाय छट्ठी ग्र, बुहे भद्दा तिही सुहा ।। ३७ ।।
गुरु एगारसी पुन्ना, सुक्के नंदा य तेरसी ।
सणिम्मि ग्रट्ठमी रित्ता, तिही वारेसु सोहणा ।। ३८ ।।

रविवार को नवमीं, प्रतिपदा ग्रौर ग्रष्टमी, सोमवार को द्वितीया ग्रौर नवमी, भोमवार को जया ग्रौर छट्ठ, बुधवार को भद्रा गुरुवार को एकादशी ग्रौर पूर्णा, शुक्रवार को नंदा ग्रौर तेरस तथा शनिवार को ग्रष्टमी ग्रौर रिक्ता तिथि शोभना है । इसमें तिथि तथा वार से होने वाले शुभ योग बताये गये है ।

जिस-जिस तिथि ग्रौर वार के शुभ योग कहे गये हैं वे ग्रपने-ग्रपने वार के इष्ट कार्य के साधक हैं, क्योंकि सौम्य तिथि या वार से होने वाले शुभ योग सौम्य कार्य के साधक हैं । जबकि क्रूर तिथि ग्रौर वार से होने वाले शुभ योग क्रूर कार्य को साधते हैं । जैसे मंगलवार को सिद्धि योग हो तो उसमें मंगलवार के ग्रारम्भ-समारम्भ के क्रूर कार्य सिद्ध होते हैं, किन्तु कृषि, व्यापारादि सोमवार को. विद्या, यात्रादि गुरुवार को ग्रौर दीक्षा ग्रादि शनिवार को सिद्धि देने वाले होते हैं । इसी प्रकार प्रसंगानुकूलता प्रतिकूलता जाननी चाहिये ।

नारचंद्र टिप्पणी—

नवमी चउत्थीइं चउद्दसीइं, जइ सणिवार लहिज्ज ।
एकइ कज्जइ निग्गया, कज्जसयाइं करिज्ज ।।१।।

नवमी, चतुर्थी और चौदस को यदि शनिवार हो तो एक कार्य के लिये निकले व्यक्ति को सैंकड़ों कार्य का लाभ सहज होजाता है ।

शुभकारक नक्षत्र—

रेवस्सिणी धणिट्ठा य, पुण पुस्स तिउत्तरा ।
सूरे सोमम्मि पुस्सो अ, रोहिणी अणुराहया ।। ३९ ।।

भोमे मिगं च मूलं च, अस्सेसा रेवई तहा ।
बुहे मिगसिरं पुस्सा–सेसा सवण रोहिणी ।। ४० ।।

जीवे हत्थऽस्सिणी पू–फ, विसाहावुग रेवई ।
सुक्के उ–फा उ–खा हत्थं, सवणाणु पुणस्सिणी ।।४१।।

सणिम्मि सवणं पू–फा, महा सयभिसा सुहा ।
पुव्वत्ततिहिसंजोगे, विसेसेण सुहावहा ।। ४२ ।।

रविवार को रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, पुनर्वसु, पुष्य और तीन उत्तरा, सोमवार को पुष्य, रोहिणी और अनुराधा, भोमवार को मृगशिर, मूल, अश्लेषा और रेवती, बुधवार को मृगशिर, पुष्य, अश्लेषा श्रवण और रोहिणी, गुरुवार को हस्त, अश्विनो, पूर्वा-फाल्गुनी, विशाखाद्विक या रेवती शुक्रवार को उत्तराफाल्गुनी, उत्तरा षाढा, हस्त, श्रवण, अनुराधा, पुनर्वसु और अश्विनी, शनिवार को श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, मघा और शतभिषा नक्षत्र शुभ है और उप-रोक्त तिथियों का संयोग हो जाय तो विशेष शुभ है ।

लग्न शुद्धि और नारचंद्र के शुभयोगों में भी कितने हो नक्षत्रों का फेरफार है । आरम्भसिद्धि में कहा है—

एक साथ शुभ तथा अशुभ योग हो तो उनमें अशुभ योग का बल नष्ट होता है ।

अमृतसिद्धि योग के लिये कहा है—

हृत्थं मिगऽसिणी चेवा-ऽणुराहा पुस्स रेवई ।
रोहिणी वारजोगेणा-ऽमिअसिद्धिकरा कमा ॥ ४३ ॥

हस्त, मृगशरा, अश्विनी, अनुराधा, पुष्य रेवती और रोहिणी अनुक्रम से सातों वारों के साथ अमृतसिद्धि योग करने वाले हैं। अर्थात् रविवार को हस्त, सोमवार को मृगशरा, मंगल को अश्विनी, बुधवार को अनुराधा, गुरुवार को पुष्य, शुक्रवार को रेवती और शनिवार को रोहिणी नक्षत्र हो तो अमृतसिद्धि देने वाला अमृतयोग होता है।

हर्षप्रकाश में कहा है—

भद्रा संवर्तकाद्यं श्चेत्, सर्वदुष्टेऽपि वासरे ।
योगोऽस्त्यमृतसिद्धयाख्य, सर्व दोषक्षयस्तदा ॥ १ ॥

भद्रा और संवर्तकादि से दुष्ट हुए दिन भी यदि अमृत सिद्धि योग होता है तो सारे दूषणों को नष्ट करने वाला होता है।

रत्नमाला भाष्य के अनुसार अमृतसिद्धि योग में किये हुए कार्यों की सिद्धि अवश्य होती है। कुछ आचार्यों का मत है कि—

इन सातों अमृतसिद्धि योगों में अनुक्रम से पंचमी से एकादशो तक की सात तिथियां हो तो मृत्यु योग होता है। यह हम भी तिथि, वार और नक्षत्र इन तीनों के योग में बता चुके हैं।

मुहूर्त चितामणो में भी कहा है—

गृह प्रवेशे यात्रायां, विवाहे च यथाक्रमम् ।
भौमेऽश्विनी शनौ ब्राह्मं, गुरौ पुष्यं च वर्जयेत् ॥ १ ॥

ग्रह प्रवेश, यात्रा और विवाह में अनुक्रम से— भौमवार अश्विनी हो, शनिवार को राहिणो हो और गुरुवार को पुष्य हो

तो वर्ज्य है। विवाह की तरह दीक्षा में भी गुरु पुष्य शुभ नहीं है। इस प्रकार से कुछ कार्यों में निषिद्ध अमृतयोग अशुभ है।

उत्पातादि चार योग —

वारेसु कमसो रिक्खा, विसाहाइ चऊ चऊ ।
उप्पाय मच्चुकाणक्ख-सिद्धि जोगावहा भवे ॥ ४४ ॥

वारों के साथ रहने वाले अनुक्रम से विशाखादि चार-चार नक्षत्र अनुक्रम से उत्पात, मृत्यु, काणाक्ष और सिद्धि योग वाले हैं। अर्थात् आनन्दादि अट्ठाइस उपयोग में निर्दिष्ट प्रवास, मरण, व्याधि और सिद्धि योग का दूसरा नाम उत्पात, मृत्यु, काणाक्ष और सिद्धि है और यह हरेक कार्य में विशेष महत्ता वाला होने से पुनः गिनाये गये हैं। अतः अशुभयोगों का शुभ कार्य में त्याग करना चाहिये। यदि कार्य किये बिना चल ही न सके तो नारचंद्र टिप्पणी में भी कहा गया है—

सर्वेषां हि कुयोगानां, वर्जयेद् घटिकाद्वयम् ।
उत्पातमृत्युकाणानां, सप्त षट् पञ्च नाडिकाः ॥ १ ॥

सारे कुयोगों की दो घड़ियां छोड़ देना चाहिये तथा उत्पात, मृत्यु और काण योग के अनुक्रम से सात, छः और पांच घड़ी वर्जित कर लेना चाहिये। सिद्धि योग सारे कार्यों में शुभ ही है।

यमघण्ट तथा जन्म नक्षत्र के विषय में—

म वि आ मू कि रो ह,
सुराइसु वज्जणिज्ज जमघंटा ।

भ चि उ-ख घ उ-फा जे रे,
इअ असुहा जम्मरिक्खा य ॥ ४५ ॥

रवि आदि सात वारों के साथ अनुक्रम से मघा, विशाखा आर्द्रा, मूल, कृतिका, रोहिणी और हस्त नक्षत्र हो तो यमघंट नाम का वर्ज्य योग होता है तथा भरणी, चित्रा, उत्तराषाढा, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्र हो तो अशुभ है तथा रवि आदि के जन्म नक्षत्र भी अशुभ हैं ।

रवि को मघा, सोम को विशाखा, मङ्गल को आर्द्रा, मूल, कृतिका, रोहिणी और हस्त नक्षत्र हो तो यमघंट नाम का वर्ज्य दोष होता है तथा भरणी, चित्रा, उत्तराषाढा, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्र हो तो अशुभ है और रवि आदि के जन्म नक्षत्र भी अशुभ है । यमघंट योग अत्यन्त दुष्ययोग है । लल्ल के मत में—

यमघण्टे गते मृत्युः, कुलोच्छेदः करग्रहे ।
कर्तुर्मृत्युः प्रतिष्ठायां, पुत्रो जातो न जीवति ॥१॥

यमघण्ट में यात्रा गमन करने से मृत्यु होती है । विवाहादि शुभ कार्य करने से कुलच्छेद होता है, प्रतिष्ठादि करने से प्रतिष्ठाकार को मृत्यु संभावित है और पुत्र जन्म हो जाय तो वह जीवित नहीं रहता ।

यदि अत्यन्तावश्यक कार्य हो तो और यमघंट के अतिरिक्त सानुकूलता हो तो यमघन्ट की अतिदुष्ट घड़ियों को छोड़ देना चाहिये जिससे इस दोष का परिहार हो जाता है ऐसा भी मत है । कुछ आचार्यों का मत है कि आरम्भ की यमघन्ट की नौ घड़ियों को छोड़ देनी चाहिये ।

बुधवार तथा शनिवार को यमघण्ट के अन्त्य की तीस-तीस घड़ियां त्याज्य है । शेष रवि आदि पांच वारों को आदि की अनुक्रम से पन्द्रह, छः, ग्यारह, साढेसात और साठ घड़ियों का त्याग करना चाहिये ।

लग्न शुद्धि में यमघण्ट को दूषित घड़ियों का विवरण—

पनरस तेरऽट्ठारस, एगा सग सत्त अट्ठ घडिआओ ।
जमघंटस्स उ दुट्ठा, रविमाइसु सत्तवारेसु ॥ १ ॥

रवि आदि सात वारों में अनुक्रम से यमघंट की दुष्ट घड़ियां पन्द्रह, तेरह, अठारह, एक, सात और आठ है । आश्लेषा में यमघंट का परिहार कहा गया है किन्तु व्यतिपात और वैधृति में तो सर्वथा त्याग करना चाहिये ।

कहीं 'वज्रमूशल' योग के बारे में कहा गया है कि रवि को भरणी, सोमवार को चित्रा, मंगलवार को उत्तराषाढा, बुधवार को धनिष्ठा, गुरुवार को उत्तराफाल्गुनी, शुक्रवार को ज्येष्ठा, शनिवार को रेवती नक्षत्र हो तो उक्त कुयोग होता है । इसके फल के लिये हीर ज्योतिष में कहा गया है—

गह जम्मरिसो एए, वज्जे विवाह किरिए विहवं ।
गमणारंभे मरणं, चेइयठवणेविद्धंसं ॥१॥

सेवाइ हवइ निप्फल, करसणे अफलो य दाहं गिहपवेसे ।
विज्जारंभे य जडे, वत्थुवावर भसमसायं ॥२॥

शुभ कार्य में इस नक्षत्र का त्याग करना चाहिये, क्योंकि इसमें विवाहादि करने से वैधव्य मिलता है । गमन-प्रयाण करे तो मृत्यु । चैत्य की प्रतिष्ठा करे तो चैत्य का ध्वंस । सेवा करे तो निष्फल । कृषि में अफल । गृह प्रवेश करे तो अग्निदाह । विद्या का आरम्भ करे तो जड़भरत रहे । किसी वस्तु का प्रयोग करे तो भस्मसात हो जाता है । इस योग में दीक्षा ग्रहण करने पर भी उसे छोड़नी पड़ती है ।

जन्म नक्षत्र कुयोग—

विशाखा कृतिकाप्यानि, श्रवणो भाग्य मिज्यभम् ।

येवतियाम्यमश्लेषा, जन्मर्क्षाण्यर्कतः क्रमात् ।। १ ।।

रवि आदि नवग्रह के जन्मनक्षत्र अनुक्रम से विशाखा, कृतिका, उत्तराषाढा, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, मृगशर, रेवती, भरणी एवं अश्लेषा हैं ।

लल्ल के अनुसार—

क्रूर ग्रह, उल्का आदि से पीड़ित नक्षत्र का ग्रह कुण्डली के लग्न में आवे तो अशुभ है । अन्य ग्रन्थों में शत्रुयोग, चरयोग जो स्थिर तथा प्रणय कार्य के अशुभ हैं । इसी प्रकार यमद्रंष्ट्रा योग भी कुयोग है । जो शुभ कार्य में वर्जित है ।

वर्ज्ययोग, कर्कयोग—

गुरि सयभिस सणि उत्तर-साढा एया विवज्जए पायं ।

बारसि एगेगहीणा, सूराइसु कक्कजोगु चए ।।४६।।

गुरुवार को शतभिषा और शनिवार को उत्तराषाढा नक्षत्र हो तो ये प्रायः करके वर्ज्य है तथा रवि आदि वारों के दिन द्वादशी आदि कोई हीन तिथि हो तो कर्क योग होता है ।

गुरुवार को शतभिषा होने पर चरयोग तथा शनिवार को उत्तराषाढा हो तो यमघण्ट होता है । कर्कयोग को लाने को अन्य विधि यह है कि वार तथा तिथि की संख्या मिलाकर तेरह का अंक आये तब कर्कयोग होता है । कर्क योग का शुभ कार्य में त्याग करना चाहिये । इसका अन्य नाम क्रकयोग भी है ।

अशुभ तिथियों वारों से संलग्न में—

छट्ठि सत्तमि इगार, चउद्दसी
सूरि, सोमि सगबार तेरसी ।
मंगले इग इगारसी,
बुहे वज्जए इग चउद्दसी जया ॥४७॥
छट्ठि चउत्थि सहभद्दया,
गुरु सुक्कि बीअ सह तीइ रित्तया ।
पुन्न सत्तमि सणिम्मि सव्वहा,
वज्जए इअ तिही विसेसओ ॥४८॥

रविवार को छट्ठ, सातम, ग्यारस और चौदस, सोमवार को सप्तमी, द्वादशी और त्रयोदशी, मङ्गलवार को प्रतिपदा व एकादशी बुधवार को प्रतिपदा, चतुर्दशी और जया, गुरुवार को छठ, चतुर्थी और भद्रा, शुक्रवार को द्वितीया, तृतीया और रिक्ता तथा शनिवार को पूर्णा और सप्तमी तिथि विशेषकर वर्जित है ।

रविवार को छट्ट, सातम, एकादशी और चौदश हो तो अशुभ है । इसी प्रकार उपरोक्त प्रकार से अन्य दिन भी ।

इन वार और तिथियों के सारे कुयोगों के निम्न प्रकार से नाम हैं ।

नारचंद्र के अनुसार—

रविवार को नन्दा, सोम को भद्रा, मङ्गल को नंदा, बुध को जया, गुरु को भद्रा, शुक्र को रिक्ता, शनि को पूर्णा तिथि हो तो मृत्यु योग होता है । रवि आदि सात वारों के विषय में अनुक्रम से द्वादशी, एकादशी, पंचमी, तृतीया, षष्ठी, तृतीया और नवमी

तिथि हो तो दग्ध योग होता है। रविवार को सातम, सोमवार को छट्ठ, भोमवार को पंचमी, बुधवार को चतुर्थी, गुरुवार को तृतीया, शुक्रवार को द्वितीया और शनिवार को प्रतिपदा हो तो फांकडुधर नाम का योग होता है। इसका दूसरा नाम चौथ का घर भी है। यह ग्राम प्रवेश, यात्रा, चातुर्मास प्रवेश और विहार में वर्जित है। कुछ आचार्यों के मत में चन्द्र बलवान होने पर भी फांकडां योग हो तो इसका त्याग करना चाहिये।

नारचंद्र ज्योतिष के मत में—

प्रतिपत् तृतीया सौम्ये, सप्तमी शनिसूर्ययोः।
षष्ठी गुरौ द्वितीया च, शुक्रे संवर्तको भवेत् ॥१॥

बुधवार को प्रतिपदा और तृतीया, शनिवार को और रवि-वार को सप्तमी, गुरुवार को छट्ठ तथा शुक्रवार को द्वितीया हो तो संवर्तक योग होता है। यह योग भी अशुभ है।

ज्योतिषहीर के मत में—

सोमवार को सप्तमी या तेरस, भोमवार को चौदश, गुरुवार को नवमी, शुक्रवार को तृतीया, शनिवार को पंचमी हो तो भी संवर्तक योग होता है।

योग चक्र

	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
सिद्धियोग	अश्विनी	रोहिणी	मृग०	रोहिणी	अश्विनी	अश्विनी	मघा
	पुनर्वसु	पुष्य	अश्ले०	मृग०	पूफा०	पुनर्वसु	पूफा०

	पुष्य उत्तरा रेवती	अनु०	मूल रेवती	पुष्य अश्ले० श्रवण	हस्त विशाखा अनु० रेवती	उफा० हस्त अनु० उषा० श्रवण	श्रवण शत०
सिद्धियोग (आ०सि०)	अश्विनी रोहिणी मृग० पुन० पुष्य उफा० हस्त मूल उषा० धनिष्ठा उभा० रेवती	रोहिणी मृग० पुष्य उफा० हस्त अनु० श्रवण शत०	अश्विनी कृतिका मृग० पुष्य अश्लेषा उफा० वि० मूल उभा० रेवती	कृतिका रोहिणी मृग० पुष्य उफा० हस्त अनु० ज्येष्ठा पुषा० श्रवण	अश्विनी पुन० पुष्य अश्लेषा पुफा० स्वाति वि० अनु० पुषा० धनिष्ठा पुभा० रेवती	अश्विनी मृग० पुन० पुफा० हस्त अनु० पुषा. उषा० श्रवण ध० रेवती	अश्वि० रोहिणी पुष्य मघा स्वाति अनु० श्रवण धनिष्ठा शत०
अमृतासाद्ध	हस्त	मृगशर	अश्विनी	अनु०	पुष्य	रेवती	रोहिणी
उत्पात	विशाखा	पुषा०	धनि०	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उफा०
मृत्यु	अनुराधा	उषा०	शत०	अश्विनी	मृग०	अश्ले.	हस्त

रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	
काण	ज्येष्ठा	अभिच	पू०भा०	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
सिद्धि	मूल	श्रवण	उ०भा०	कृतिका	पुन०	पू०फा०	स्वाती
यमघंट	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृतिका	रोहिणी	हस्त
यमघंट		अश्विनी	मघा	आ० पू०फा०	श्रवण	स्वातो	षा०रे०
वज्रमुशल	भरणी	चित्रा	उ०षा०	धनिष्ठा	उ०फा०	ज्येष्ठा	रेवती
त्याज्य					शत०		उ०षा०
शत्रु	भरणी	पुष्य	उ०षा०	आर्द्रा	विशाखा	रेवती	शत०
चर	उषा०	आर्द्रा	विशाखा	रोहिणी	शत०	मघा	मूल
यम-	मघा	मूल	कृतिका	पुन०	अश्विनी	रोहिणी	श्रवण
दंष्ट्रा	धनिष्ठा	विशाखा	भरणी	रेवती	उ०षा०	अनु०	शत०
क्रकच-कर्क	१२	११	१०	९	८	७	६
दग्ध	१२	११	५	३	६	३	९
चौथघर	७	६	५	४	३	२	१
संवर्तक	७	(७-१३)	(१४)	१-३	६(९)	२(३)	(७५)
मृत्यु	६-७	७-१२		१-३-८	४-६	२-३	७
योग	१-१४	१३	१-११	१३-१४	भद्रा	रिक्ता	पूर्णा
सिद्धि	११-८	२-९	६	भद्रा	पूर्णा	१३	८
योग	९		जया		११	नंदा	रिक्ता

योग चक्र

नाम	रवि	सोम	भोम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
अश्विनी	सिद्धि	यम	अमृत	मृत्यु	दंष्ट्रासि०	सिद्धि	
भरणी	शत्रुवज्र		दंष्ट्रा	काण			
कृतिका			दंष्ट्रा	सिद्धि	यम		
रोहिणी		सिद्धि		चरसिद्धि	उ०	यमदंष्ट्रा	अमृत
मृगशर		अमृत	सिद्धि	सिद्धि	मृत्यु		
आर्द्रा		चर	यम	यमशत्रु	काण		
पुनर्वसु	सिद्धि			दंष्ट्रा	सिद्धि	सिद्धि	
पुष्य	सिद्धि	शत्रुसि.		सिद्धि	अमृत	उत्पात	
अश्लेषा			सिद्धि	सिद्धि		मृत्यु	
मघा	यमदंष्ट्रा		(यम)			काणचर	सिद्धि
पु०फा०				(यम)	सिद्धि	सिद्धि	सिद्धि
उ०फा०	सिद्धि				वज्र	सिद्धि	उत्पात
हस्त	अमृत				सिद्धि	सिद्धि	मृत्युयम
चित्रा		वज्र					काण
स्वाती						यम	सिद्धि
विशाखा	उत्पात	यमदंष्ट्रा	चर		शत्रुसि.		
ज्येष्ठा	काण					वज्र	
मूल	सिद्धि	दंष्ट्रा	सिद्धि	यम			चर

अनुराधा	मृत्यु	सिद्धि		अमृत	सिद्धि	दंष्ट्रासि.	
पुर्वाषाढा		उत्पात					यम
उत्तराषाढा	चरसिद्धि	मृत्यु	वज्रशत्रु		दंष्ट्रा	सिद्धि	यम त्याज्य
अभि०		काण					
श्रवण		सिद्धि		सिद्धि	(यम)	सिद्धि	दंष्ट्रासि०
धनिष्ठा	दंष्ट्रा		उत्पात	वज्र			
शतभिषा			मृत्यु		त्याज्य चर		शत्रु दंष्ट्रासि.
पूर्वाभाद्रपद			काण				
उत्तरा०भा०	सिद्धि		सिद्धि				
रेवती	सिद्धि		सिद्धि	उ०दंष्ट्रा	सिद्धि	अमृतशत्रु	यम वज्र

यम— यमघंट   वज्र— वज्रमुशल
दंष्ट्रा— यमदंष्ट्रा   उ०— उत्पात

गणांतयोग तथा उसका फल—

चरमाइम तिहिलग्गरिक्ख, मज्झेगअद्धदोघडिआ ।
तिदुसत्तंतरि मुत्तुं, पुणो पुणो तिविह गंडंतं ।। ४६ ।।

नट्ठं न लब्भए अत्थ, अहिदट्ठो न जीवइ ।
जाओ वि मरइ पायं, पत्थिओ न निअत्तइ ।। ५० ।।

गडांत योग, तिथि गडांत योग, लग्न गडांत और नक्षत्र गडांत ये तीन प्रकार के योग हैं । ये तिथि आदि में तीसरे-तीसरे भाग में दो-दो के अन्तर की सन्धि से आते हैं, अर्थात् जैसे तिथि

पन्द्रह है और उसके तीसरे-तीसरे भाग में पंचमी, दशमी और पूर्णिमा है तो पंचमी और षष्ठी, दशमी और एकादशी तथा पूर्णिमा और प्रतिपदा की संधि में तिथि गडांत योग आते हैं। इसीप्रकार लग्न और नक्षत्र में भी तीसरे-तीसरे भाग में समझना चाहिये।

लग्नगडांत भी अन्तिम मीन लग्न की आखिरी पन्द्रह पल और प्रथम मेष लग्न की आदि की पन्द्रह पल इस प्रकार मध्य की आधी घड़ी का आता है, किन्तु लग्न बारह हैं! अर्थात् बाद में दो-दो लग्नों का अन्तर छोड़ने पर कर्क और सिंह तथा वृश्चिक और धन लग्न की संधि में भी आधी-आधी घड़ी का लग्न गंडात आता है।

इसी प्रकार अन्तिम नक्षत्र रेवती और प्रथम नक्षत्र अश्विनी के मध्य की दो घड़ियां और पश्चात् के सात-सात नक्षत्र रखने पर अश्लेषा और मघा तथा ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र की संधि से दो-दो घड़ी नक्षत्र गंडांत आता है।

योग नाम	घड़ी	मध्य स्थान		
लग्न गण्डांत	०॥	मीन-मेष	कर्क-सिंह	वृश्चिक-धन
तिथि गण्डांत	१	१५-१	५-६	१०-११
नक्षत्र गण्डांत	२	रेवती-अश्विनी	अश्लेषा-मघा	ज्येष्ठा-मूल

गण्डांत योग जन्म, गर्भाधान, यात्रा, व्रत, विवाह और गृहारम्भ तथा प्रवेश आदि शुभ कार्य में अशुभ है। इस योग में गुमी हुई वस्तु मिलती नहीं, सर्प डंश हो जाय तो जिन्दा नहीं रह सकता, इस योग में जन्मा बालक जीवित नहीं रहता तथा यात्रा,

परदेश चला जाय तो वह जीवित नहीं रहता । किन्तु प्राय: से तात्पर्य यहां यह है कि यदि जन्म के समय गण्डांत हो तो वह माता, पिता, कुल या बालक का ही नाश करता है । यदि बालक गण्डांत योग में जिन्दा रह जाय तो वह भविष्य में राज्य सेवा तथा अतुल सुख को भोगने वाला होता है । (देखिये गाथा ३१ का विवेचन)

वज्रपात योग—

बीआणुराह तीआ, तिगुत्तरा पंचमीइ महरिक्खं ।
रोहिणि छट्ठी करमूल, सत्तमी वज्जपाओऽयं ॥ ५१ ॥

द्वितीया को अनुराधा, तृतीया को तीन उत्तरा, पंचमी को मघा, छट्ठ को रोहिणी तथा सप्तमी को हस्त या मूल हो तो वज्र-पात योग होता है ।

नारचंद्र टिप्पणी में भी कहा है—

अनुराधा द्वितीया च, तृतीया उत्तरात्रयम् ।
पञ्चमि मघसंयुक्ता, हस्ते मूले च सप्तमी ॥ १ ॥
षष्ठी च रोहिणी चैव, चित्रा-स्वाती त्रयोदशी ।
एषु योगेषु यत्कार्यं, षष्ठे मासे मृतिर्भवेत् ॥ २ ॥

द्वितीया को अनुराधा, तृतीया को तीन उत्तरा, पंचमी को मघा, सप्तमी को हस्त या मूल, षष्ठी को रोहिणी, त्रयोदशी को चित्रा या स्वाति हो और उसमें यदि मनुष्य कार्य करे तो छः मास में ही मृत्यु हो जाती है ।

ज्योतिषहीर में कहा है—

अट्ठमीसंयुता रोहिणी या ।

अष्टमी से युक्त रोहिणी हो तो वज्रपात योग होता है। हर्षप्रकाश में भी कहा है कि वज्रपात में कार्य करने वाले की मृत्यु हो जाती है।

तिथि और नक्षत्र के दूसरे अशुभ योग इस प्रमाण से है—(नारचंद्र टिप्पणी)

चतुः पञ्चनवत्र्यष्ट-दिने कालमुखी क्रमात्।
त्र्युत्तराभिर्मघाग्नेय-मैत्र्यब्राह्मभयोगतः ॥ १ ॥

चौथ के दिन तीन उत्तरा हो, पंचमी को मघा हो, नवमी को कृतिका हो, द्वितीया को अनुराधा हो तथा अष्टमी को रोहिणी नक्षत्र हो तो कालमुखी नाम का योग होता है। आरम्भसिद्धि के मत में इस योग में कार्य करने वाला छः महिने में मृत्यु को प्राप्त करता है। यदि इस कुयोग का त्याग न हो सके तो कहा है—

यमघण्टे नवाष्टौ च, कालमुख्यां विवर्जयेत्।

यमघंट में नौ तथा कालमुखी में आठ घड़ी का त्याग अवश्य कर लेना चाहिये।

प्रतिपदा को मूल, पंचमी को भरणी, अष्टमी को कृतिका नवमी को रोहिणी तथा दशमी को अश्लेषा हो तो ज्वालामुखी योग होता है। ज्वालामुखी योग में जन्मा हुआ अवश्य मृत्यु को प्राप्त करता है, चूड़ा पहने तो विधवा हो जाती है और विवाह करे तो अवश्य मृत्यु होती है। कहा है—

एएहि जोगजाला, जम्मं जो हवइ सो मरइ बालो।
उववसइ गेहसाला, परिहरइ वरइ जयमाला ॥ १ ॥

ज्वालामुखी में जन्म ले तो मृत्यु हो जाती है, घर तैयार

करें तो नष्ट हो जाता है और ज्वालामुखो योग का त्याग करें तो जयमाला का वरण करता है ।

तिथि के विषय में मृतकावस्था वाले योग—

मूलऽद्दसाइचित्ता,
असेससयभिसय कित्तिरेवइआ ।
नंदाए भद्दाए,
भद्दवया फग्गुणी दो दो ।। ५२ ।।

विजयाए मिग सवणा,
पुस्सस्सिणि भरणि जिट्ठ रित्ताए,
आसाढदुग विसाहा,
अणुराह पुणव्वसु महा य ।। ५३ ।।
पुन्नाइ करधणिट्ठा,
रोहिणि इअ मयगवत्थ रिक्खाइं ।
नंदिपइट्ठापमुहे,
सुहकज्जे वज्जए मइमं ।। ५४ ।।

नंदा तिथि को मूल, आर्द्रा, स्वाति, चित्रा, अश्लेषा, शतभिषा, कृतिका या रेवती, भद्रातिथियों, दो भाद्रपद या दो फाल्गुनी विजया तिथियां— मृगशर, श्रवण, पुष्य अश्विनी, भरणी या ज्येष्ठा रिक्ता तिथियां— दो आषाढा, विशाखा, अनुराधा, पुनर्वसु या मघा और पूर्णा तिथियां— हस्त, धनिष्ठा या रोहिणी हो तो ये मृतक अवस्था वाले नक्षत्र कहे जाते हैं । बुद्धिमान व्यक्तियों को इनमें नंदि, प्रतिष्ठा आदि प्रमुख कार्य वर्जित करने चाहिये ।

हरेक योग की दुष्ट घड़ियों का त्याग करना चाहिये । यथा—

सर्वेषां कुयोगानां, वर्जयेद् घटिकाद्वयम् ।

श्रीउदयप्रभसूरि के मत में—

यत्प्रातिकूल्यं वाराणां, तिथिनक्षत्रसंभवम् ।
हूणबङ्गखसेष्वेव, तत् त्यजेदिति केचन ।। १ ।।

तिथि और नक्षत्र से उत्पन्न हुई वार की प्रतिकूलता हूण देश, बङ्ग देश और खस देश में त्याज्य है । मुहूर्तचिंतामणीकार का भी यही मत है ।

हर्षप्रकाश के मत में—

कुतिथि, कुवार, कुयोग विष्टि, जन्म नक्षत्र और दग्धतिथि ये सब मध्याह्न के पश्चात् अवश्य शुभ हो जाते हैं ।

ज्योतिषहीर में—

थिविरो य राजजोगं, कुमारजोगं य अमिअसिद्धिजोगं ।
सव्वंकं रविजोगं, एए हि हणइ अवजोगं ।। १ ।।

स्थविरयोग, राजयोग, कुमारयोग अमृतसिद्धियोग, सर्वाङ्कयोग और रवियोग इन सारे योगों द्वारा अवयोग हनित होता है ।

श्रीउदयप्रभसूरि भी कहते हैं—

कुयोग और सिद्धियोग एक ही दिन आए तो सिद्धियोग की जय होती है ।

तिथि योग चक्र

योग का नाम	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
क्रकच	•	•	०	•	•	श०	शु०	गु०	बु०	मं०	सो०	र०	•	०	•
दग्ध	•	०	बु.शु०	०	मं०	गु०	०	०	श०	०	सो०	र०	•	०	०
चौथ का गृह	श०	शु०	गु०	बु०	मं०	सो०	र०	•	०	•	०	०	०	०	०
संवर्तक	बु०	शु०	बु०	•	श)	गु०	र०श.	०	गु०				(सो)	मं०	
मृत्यु योग	मं०गु.	गु.शु०	गु.शु०	गु.शु०	श०	र०गु०	र.सो. गु०शु.	बु०	शु०	श०	र०म.	सो.गु.	सो.बु.	र०बु.	ब०
सिद्धि योग	र.श.	सो बु.	मं०	श०	गु०	मं शु०	बु०	र.मं. श०	र.सो. २०	गु०	मु०शु.	बु०	मं.शु.	श०	गु०
वज्रपात		अनु०	उत्त०		म०	रो०	ह०मू.						चि. स्वा०		
कालमुखी			अनु०	उत्त.	म०			रो०	क०						
ज्वालामुखी	मू०				म०			कृ०	रो०	श्ले०					
वर्ज्य							भरणी		पुष्य	श्ले०			चि०		

तिथि मृत्युयोग

नंदा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा
कृतिका आर्द्रा	पुर्वाफाल्गुन	अश्विनी	पुनर्वसु	रोहिणी
अश्लेषा	उत्तराफाल्गुन	भरणी	मघा विशाखा	हस्त
चित्रा स्वाती	पुर्वभाद्रपद	मृगशर	अनुराधा	धनिष्ठा
मूल रेवती	उत्तराभाद्रपद	पुष्य ज्येष्ठा	पुर्वाषाढा	
शतभिषा		श्रवण	उत्तराषाढा	

नक्षत्रों की तीक्ष्णादि संज्ञा और उनका फल—

जिट्ठद्दाऽसेस मूलं च, तिक्खा रिक्खा विग्राहिग्रा ।
मिऊणि मिग चित्ता य, रेवई अणुराहया ॥ ५५ ॥
पुस्सो अ अस्सिणीहत्थं, अभीई लहुआ इमे ।
उग्गाणि पंच रिक्खाणि, तिपुव्वा भरणी मेहा ॥५६॥
चरा पुणव्वसु साई, सवणाइतिअं तहा ।
धुवाणि पुण चत्तारि, उत्तराणि अरोहिणी ॥ ५७ ॥
विसाहा कित्तिआ चेव, दो अ मिस्सा विग्राहिग्रा ।
तिक्खे तिगिच्छं कारिज्जा, मिऊ गहणधारणे ॥ ५८ ॥
लहू चरे सुहारंभो, उग्गरिक्खे तवं चरे ।
धुवे पुरपवेसाई, मिस्से संधिकिग्रं करे ॥ ५९ ॥

ज्येष्ठा, आर्द्रा, अश्लेषा और मूल नक्षत्र तीक्ष्ण है, मृगशर चित्रा, रेवती और अनुराधा नक्षत्र मृदु है, पुष्य, अश्विनी, हस्त

और अभिजित् नक्षत्र लघु है, तीन पुर्वाभरणी और मघा नक्षत्र उग्र है, पुनर्वसु, स्वाति और श्रवणादि नक्षत्र चर है, तीन उत्तरा और रोहिणी ये चार नक्षत्र ध्रुव है, तथा विशाखा और कृतिका नक्षत्र मिश्र है ।

इनमें तीक्ष्ण नक्षत्रों में चिकित्सा कार्य करना चाहिये, मृदु नक्षत्र में वस्तु का ग्रहण तथा धारण करना चाहिये । लघु और चर नक्षत्रों में शुभ कार्यों का प्रारम्भ करना चाहिये, उग्र नक्षत्र में तपश्चर्या का आरम्भ करना चाहिये तथा ध्रुव नक्षत्रों में नगर प्रवेश करना एवं मिश्र नक्षत्रों में संधि का कार्य करना चाहिये ।

विशेष ज्ञातव्य के लिये नक्षत्र द्वार में से देखा जा सकता है ।

।। इति संज्ञाखण्डः समाप्तः ।।

कार्य खण्ड

—★—

गमनद्वार— (प्रथम प्रस्थान मर्यादा)

दसधणु उवरिं सयपंच,
मज्झि पत्थाणि जाव दिण ति-चऊ ।
थायव्वं लग्गतिहो-
खणरिक्खससिबलं घित्तुं ।। ६० ।।

लग्न, तिथि, क्षण, नक्षत्र और चन्द्र का बल ग्रहण करके उसीमें यात्रा का मुहूर्त साधने के लिये प्रस्थान (प्रस्ताना) रख सकते हैं । अतः लग्नादि की अनुकूलता देखकर समीप से समीप दस धनुष्य की दूरी पर तथा दूर से दूर पांच सौ धनुष्य के अन्दर प्रस्थान रखना चाहिये और भी प्रस्थान तीन या चार दिन तक रखा जाने पर उस समयान्तर में अवश्य प्रस्थान (यात्रा) कर लेनी चाहिये, नहीं तो चार दिन के पश्चात् पुनः नया मुहूर्त देखना पड़ता है तथा नवीन प्रस्थान रखना पड़ता है ।

आरम्भसिद्धि में सामान्य वर्ग, मांडलिक राजा, पृथ्वीपति राजा इनके लिये अनुक्रम से पांच, सात और दस दिन का विधान बताया गया है । प्रस्थान के दिन श्रवण नक्षत्र हो तो उसी दिन, धनिष्ठा, पुष्य या रेवती हो तो दूसरे दिन, अनुराधा या मृगशीर्ष नक्षत्र हो तो तीसरे दिन, हस्त नक्षत्र हो तो चौथे दिन और अश्विनी या पुनर्वसु नक्षत्र हो तो पांचवें दिन प्रयाण करना चाहिये ।

यह प्रस्थान राजा तथा आचार्य को स्वयं करना चाहिये तथा उसमें चन्दनार्चित शस्त्र, दर्पण, अक्षमाला, पुस्तक तथा श्वेत वस्त्र आदि रखे जा सकते हैं। किन्तु शंख, मदिरा, औषध, तेल, नमक गुड़, उपान, श्यामवस्त्र, जीर्ण वस्त्र या जीर्णशीर्ण वस्तु नहीं रखना चाहिये।

प्रयाण में अनुकूल लग्नादि का फल—

पहि कुसलु लग्गि तिहि कज्ज,
सिद्धि लाभं मुहूत्तओ होइ ।
रिक्खेणं आरोग्गं,
चंदेणं सुक्खसंपत्ती ॥ ६१ ॥

प्रयाण में शुभलग्न हो तो मार्ग में कुशलता रहती है। शुभ तिथि हो तो कार्य की सिद्धि होती है, शुभ मुहूर्त हो तो लाभ प्राप्त होता है तथा शुभ नक्षत्र हो तो शरीर में आरोग्यता रहती है एवं शुभ चन्द्र हो तो सुख संपत्ति प्राप्त होती है।

लल्ल के मत में— स्वलग्न का यात्रा में त्याग करना चाहिये।

तात्कालिक प्रयाण कुण्डली में रवि ३-१०-११ वें भुवन में हो, सोम १-६-८ के अतिरिक्त कहीं भी हो, भोम ३-१०-११ भुवन में हो, बुध तथा गुरु ६ के अतिरिक्त किसी भी स्थान में हो, शुक्र ६-७ के अतिरिक्त किसी भी भुवन में हो, शनि ३-११ स्थान में हो, जन्म कुण्डली में षष्ठम, एकादशम स्थान में रहे हुए ग्रह लग्न में हो, जन्म लग्नपति का मित्र ग्रह, जन्मराशि का मित्र ग्रह, दशापति का मित्र, सद्यः सफल, जन्मलग्न का बलवान ग्रह, जन्मेश का कारक, आदि तथा सौम्य ग्रह बलवान हो, लग्न वीर्य

का बल हो, लग्न केन्द्र ग्रह वाला हो, दिक्पति केन्द्र में हो, यायी ग्रह बलवान हो तो राजा को प्रयाण करना हितकारक है।

प्रयाण में शुभ तिथि शुभ है। १–२–३–४–५–७-१०-११-१३ ये तिथियां निर्दोष हो तो प्रयाण करना चाहिये।

रत्नमाला के मत में—

अभिजिद् विजयो मैत्रः सावित्रो बलवान् सितः।
वैराजश्चेति सप्त स्युः, क्षणाः सर्वार्थसाधकाः ॥१॥

सारे मुहूर्तों में ८ अभिजित, ११ विजय, ३ मैत्र, ५ सावित्र १० बल, २ श्वेत और ६ वैराज ये सात मुहूर्त सर्व कार्य के साधक हैं।

उदयप्रभसूरि के मत में—

चौराणां शकुनैर्यात्रा, नक्षत्रैश्च द्विजन्मनाम्।
मुहूर्तैः सिद्धयेऽन्येषां, राज्ञां योगैश्च ते त्वमी ॥ १ ॥

चोर शकुनों के आधार पर प्रयाण करता है, ब्राह्मण नक्षत्र का बल देखकर यात्रा करते हैं, शेष मुहूर्त के बल से यात्रा करते हैं और राजा योग का बल देखकर युद्ध यात्रा करता है तो वह सिद्धिप्रद है।

शकुन के लिये कहा गया है— मुनि कुम्भ कन्या गाय दधि आदि वस्तुओं से हैं। यदि शकुन श्रेष्ठ न हो या अपशकुन हो जाय तो सोलह श्वासोश्वास तक स्थिर रह कर चलना चाहिये और तीसरी बार भी अपशकुन हो जाय तो प्रयाण नहीं करना चाहिये।

प्रयाण की अशेष शुद्धि में अयन मास तिथि बार नक्षत्र योग और दिशा की शुद्धि देखनी चाहिये।

अयन के लिये कहा गया है—

सूर्य मकरादि छः राशि में हो तो उत्तर और पूर्व दिशा में गमन करना चाहिये और सूर्य कर्कादि छः राशियों में हो तो दक्षिण और पश्चिम दिशा में गमन करना चाहिये, चन्द्र मकरादि छः राशियों में हो तो उत्तर तथा पूर्व दिशा में, कर्कादि छः राशियों में हो तो दक्षिण तथा पश्चिम में रात्रि में प्रयाण करना चाहिये। यह लल्ल का मत है। रविवार और सोमवार से अयन दोष का परिहार होता है।

प्रयाण की शुभ तिथियों तथा उनका फल—

पाडिवए पडिवत्ती,
नत्थि विपत्ति भणन्ति बोश्राए।
तइग्राइ अत्थसिद्धि,
विजयंगो पंचमी भणिग्रा ॥ ६२ ॥
सत्तमिग्रा बहुलगुणा,
मग्गा निक्कंटया दसमिग्राए।
ग्रारुग्गिग्रा इगारसि,
तेरसि रिउणो निविज्जिणइ ॥ ६३ ॥

गमन में प्रतिपदा लाभ कराती है, द्वितीया विपत्तियों का नाश करती है, तृतीया अर्थ सिद्धि देती है, पंचमो विजयप्रद है, सप्तमी बहुगुणा है, दशमी निष्कंटक मार्ग करती है, एकादशी आरोग्य प्रद है तथा त्रयोदशी शत्रु पर विजय कराती है। इसमें भी शुक्ला प्रतिपदा से कृष्णा तथा कृष्णा त्रयोदशी से शुक्ला त्रयोदशी अधिक फल देती है।

वर्जित तिथियां—

चाउद्दसिं पन्नरसिं, वज्जिज्जा अट्ठमिं च नवमिं च ।

छट्ठि चउत्थि बार-सिं च दुन्हं पि पक्खाणं ॥ ६४ ॥

प्रयाण में दोनों पक्ष की चौदश, पूर्णिमा, अष्टमी, नवमी षष्ठो, चतुर्थी तथा द्वादशी तिथि वर्जित है ।

इनके लिये कहा है—

स्वीकुर्यान्नवमीं क्वाऽपि, न प्रवेश-प्रवासयोः ।

किसी-किसी कार्य में नवमी तिथि को ग्रहण करना चाहिये किन्तु प्रवास में इसे कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये । इसी प्रकार षष्ठी तथा द्वादशी भी यात्रा में विशेष अशुभ है । चौदस भी अशुभ है । कहा है—

पूर्णिमायां न गन्तव्यं, यदि कार्यशतं भवेत् ।

कितना ही कार्य क्यों न हो पूर्णिमा तिथि को कभी यात्रा नहीं करना चाहिये । शुक्ला प्रतिपदा भी वर्ज्य है । इसी प्रकार पक्ष छिद्र, वृद्धितिथि, क्षयतिथि, क्रूरतिथि तथा दग्धा एवं जन्मतिथि का भी त्याग करना चाहिये ।

प्रयाण में वर्जित बार—

वज्जे वारतिअं कूरं, पडिवाय चउद्दसी ।

नवमट्ठमी इमाहि तु, बुहो वि न सुहो गमे ॥ ६५ ॥

गमन में तीन क्रूर वार, प्रतिपदा, चतुर्दशो, नवमी और अष्टमी को आया हुआ बुधवार श्रेष्ठ नहीं है । अर्थात् प्रयाण करने में सोमवार, बुधवार, गुरुवार तथा शुक्रवार शुभ हैं । रवि मंगल तथा शनि अशुभ हैं ।

गमनेऽर्कादयो वाराः, क्रमशः कुर्वते फलम् ।
नैस्वं धनं रुजं द्रव्यं, जयं चैव श्रियं वधम् ।। १ ।।

प्रयाण करने में रवि आदि सात वार अनुक्रम से निर्धनता धन रोग द्रव्य जय लक्ष्मी और वध रूपी फल प्रदान करते हैं ।

अन्यत्र लौकिक उक्ति भी है—

शनि सूतो रबि उठतो, मंगल भगतो जाण ।
सोमे शुक्रे सुरगुरु, जातो म करिश हाण ।। १ ।।
शनि अंमारई जो गया, आईच्चिं विणवित्त ।
भोली मुद्ध कि बाउली नाहंकि चाहइ वत्त ।। १ ।।

राजा के प्रयाण में रविवार को शुभ गिना गया है ।

हर्षप्रकाश के अनुसार—

प्रतिपदा, अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी से भी अशुभ बुधवार गिना गया है ।

शुभाशुभ योग—

दसम्मि पंचमि तेरसि बीअगो,
भिगुसुओ गमणेऽतिसुहावहो ।
गुरु पुणव्वसु पुस्स विसेसओ,
सयभिसा अणुराह बुहे तहा ।। ६६ ।।

प्रयाण में दशम, पंचमी, तेरस या द्वितीया के दिन शुक्र हो तो अत्यन्त सुखदायक है । गुरु पुष्य या पुनर्वसु नक्षत्र हो तो वह विशेष सुखावह है एवं बुधवार को शतभिषा और अनुराधा हो तो भी शुभ है ।

आडलयोग के लिये कहा है—

डलो यात्रासु रोधकृत् ।

अर्थात् आडल यात्रा में रोध उत्पन्न करता है । इसी प्रकार रविवार तथा रोहिणी नक्षत्र का सिद्धियोग भी यात्रा में वर्जित है ।

मतिवल्लभ में कहा है—

चैत्राद्या द्विगुणा मासा, वर्तमानदिनैर्युताः ।
सप्तभिस्तु हरेद् भागं, यच्छेषं तद्दिनं भवेत् ।। १ ।।
श्रीदिनः कलहश्चैव, नन्दनः कालकर्णिका ।
धर्मः क्षयो जयश्चेति, दिना नामसदृक्फलाः ।। २ ।।

चैत्र से प्रारम्भ होकर बीते मासों को द्विगुणा कर उनमें रविवार से चलते वार तक के दिन मिलाने चाहिये फिर सात का भाग देना चाहिये और जितने अङ्क शेष रहे उतना ही इष्ट दिन जानना चाहिये । अनुक्रम से उन सातों दिनों के नाम— १ श्रीदिन २ कलह ३ नंदन ४ कालकर्णिका ५ धर्म ६ क्षय और ७ जय है । इन हरेक दिनों का अपने अपने नामानुरूप फल है ।

प्रयाण नक्षत्र—

सव्वादिसि सव्वकालं, सिद्धिनिमित्तं विहारसमयम्मि ।
पुस्सस्सिणि मिग हत्था, रेवइ सवणा गहेयव्वा ।। ६७ ।।

कितने ही नक्षत्र ऐसे हैं कि वे सर्वदिशामुख वाले सारे काल में सानुकूलता वाले हैं । ये सर्व दिशा में तथा सर्व काल में ग्रहण करने योग्य है । ये विहार, यात्रा में शुभ है ये हैं— पुष्य, अश्विनी, मृगशर, हस्त, रेवती और श्रवण नक्षत्र जो ग्रहण करने चाहिये ।

सर्वतामुखी नक्षत्रों के लिये यह विशेषता है कि श्रवण में दक्षिण में दिक्शूल, पुष्य में पश्चिम में दिक्शूल, हस्त और रेवती में उत्तर में दुष्ट योग होता है। दुष्ट योगों का तथा निषिद्ध योगों का त्याग श्रेयस्कर है।

प्रयाण काल--

धुवेहि मिस्सेहि पभायकाले,
उग्गेहि मज्झन्हिलहू परन्हे।
मिऊपग्रोसे निसिमज्झि तिक्खे,
चरे निसंते न सुहो विहारो ॥ ७१ ॥

ध्रुव और मिश्र नक्षत्रों में प्रभात के समय, उग्र नक्षत्रों में मध्याह्न काल में, लघु नक्षत्रों में अपराह्न काल में, मृदु नक्षत्रों में प्रथम रात्रि में (प्रथम पहर) तीक्ष्ण नक्षत्र में, मध्य रात्रि में चर नक्षत्र में रात्रि के अन्त में विहार करना चाहिये।

लल्ल के मत में—

निषिद्ध काल में यात्रा करने से अवश्य हानि होती है, अतः त्याग करना चाहिये।

श्रीउदयप्रभसूरि के मत में—

तीक्ष्ण नक्षत्र में मध्याह्न को और उग्र नक्षत्र में मध्यरात्रि में यात्रा नहीं करनी चाहिये। विजययोग में भी दक्षिण में जाना हितकर नहीं है।

यदि तिथि दिन बलवान् हो तो दिन में तथा निर्बल हो और नक्षत्र बलवान् हो तो रात्रि में प्रयाण करना चाहिये।

लल्ल के मत में—

निर्गमान्नवमे चाऽह्नि, प्रवेशं परिवर्जयेत् ।
शुभे नक्षत्रयोगेऽपि, प्रवेशाद् वाऽपि निर्गमम् ॥ १ ॥

नक्षत्रयोग शुभ होने पर भी प्रयाण के दिन से नवम दिन पुर प्रवेशादि नहीं करने चाहिये । उसी प्रकार प्रवेश के दिन से नवम दिन तक यात्रा प्रयाण नहीं करना चाहिये ।

मुहूर्तचिंतामणी के अनुसार—

प्रवास और प्रवेश में परस्पर नवमा दिवस, नवमी तिथि, नवमा वार और नवमा नक्षत्र वर्जित करना चाहिये ।

प्रयाण में उत्पात आदि से उत्पन्न दुर्दिन का त्याग करना चाहिये ।

श्रीउदयप्रभसूरि के मत में—

अकालिकोषु विद्युत—र्गजितवर्षासु वसुमतीनाथः ।
उत्पातेषु च भौमा—ऽन्तरिक्षदिव्येषु न प्रवसेत् ॥ १ ॥

असमय में बिजली की गर्जन या वर्षा हो तो राजा को प्रयाण स्थगित करना चाहिये । इसी प्रकार आकाश, वायु तथा पृथ्वी के उत्पातों में भी यात्रा करनी श्रेष्ठ नहीं है । ऐसे समय में सात दिन तक यात्रा वर्जित है और भूकम्प, ग्रहण इन्द्रधनुष, रजच्छद, अभ्रच्छद आदि उत्पाद भी यात्रा के लिये शुभ नहीं है। मान्य पुरुषों के मना करने पर, पत्नी को नाराज कर, बालकों को रोता छोड़ कर, किसी को मारकर, मैथुन करके, ऋतुमती भार्या को छोड़कर, अपशुकन की परवाह नहीं करके, सूतक में, उसो प्रकार उत्सव, भोजन स्वधर्मीवात्सल्य आदि मांगलिक कार्यों को पूर्णाहुति पूर्व यात्रा नहीं करनी चाहिये । चैत्र या वैशाख में केतु दर्शन

शुभ है। अन्य महिनों में केतु दर्शन हो गया हो तो सोलह दिन तक प्रयाण नहीं करना चाहिये—यह वराह का मत है।

सिद्धि की इच्छा रखने वाले पुरुष को चंद्रबल या तारा बल देख प्रयाण करना चाहिये।

त्रिविक्रम के मत में—

त्यजेत् कुतारां प्रस्थाने।

प्रयाण में कुतारा अर्थात् प्रथम, तृतीय, और सातवीं अवश्य छोड़नी चाहिये।

लल्ल कहते हैं—

यात्रायुद्धविवाहेषु, जन्मतारा न शोभना ॥१॥
यच्च न जन्मनि कार्यं, वर्जनीयं तदाधाने ॥ १ ॥

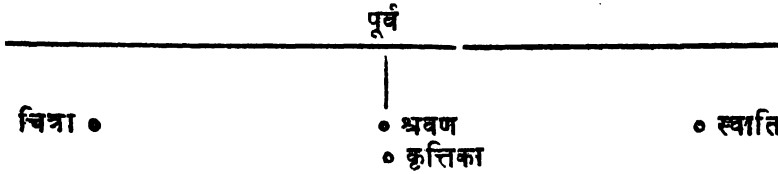
यात्रा, युद्ध और विवाह में जन्मतारा शुभ नहीं है। उसी प्रकार आधान में भी जन्म तारा में निषिद्ध कार्य नहीं करना चाहिये।

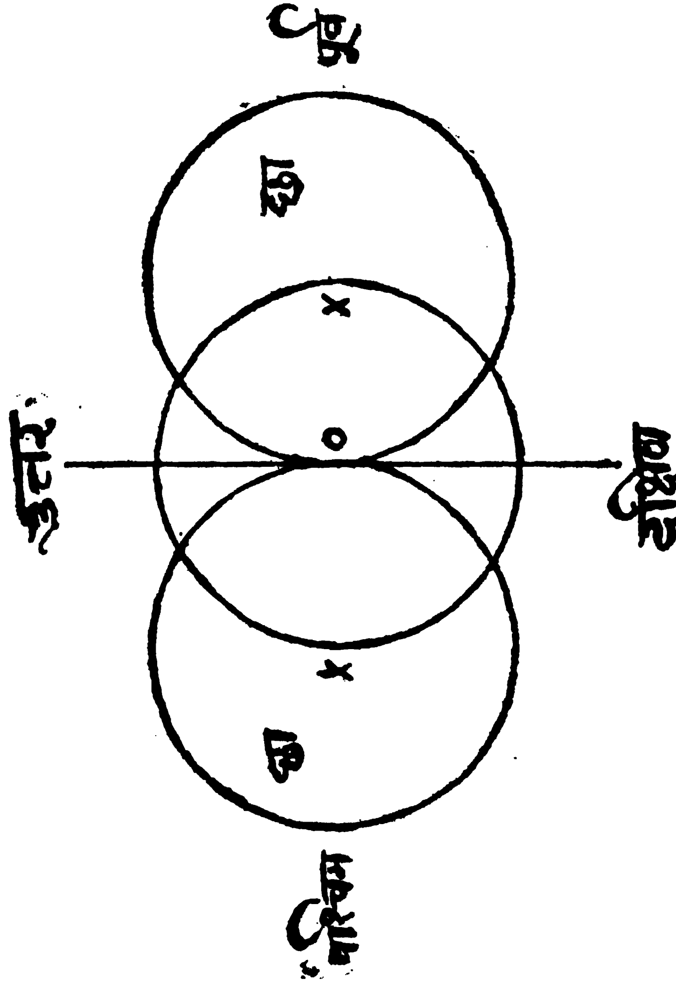
दिशा की हेतु शुद्धि के परिघादि स्वरूप—

पुव्वाइसु सग सग,
कित्तिआइं दिसि रिक्ख सदिसि हुन्ति सुहा।
घर दिसि मज्झा बायग्गि,
परिहरेहा न लंघिज्जा ॥ ७२ ॥

पूर्वादि दिशा में कृतिकादि सात-सात नक्षत्र हैं। ये दिशा के नक्षत्र कहे जाते हैं। जो स्वयं दिशा में प्रयाण करने वाले को सुख देने वाले हैं। पास को दिशा में प्रयाण करने वाले को

मध्यम है। अर्थात् चित्रा और स्वाति नक्षत्र का मध्य भाग, मेष का सूर्य तुला का सूर्य, कृतिका नक्षत्र और श्रवण नक्षत्र के उदय स्थान ये बराबर पूर्व दिशा में हैं।





इशान	पूर्व	अग्नि
उत्तर	दिनचक्र	दक्षिण
वायव्य	पश्चिम	नैऋत्य

पूर्व, अग्नि, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर और इशान ये आठ दिशाएं हैं। इनमें पूर्वादि चार दिशाएं तथा चार विदिशा अग्नि आदि हैं। इन्हें कोण भी कहते हैं। ये दिशाओं का ही अनुसरण करते हैं। आठों दिशाओं के स्वामी क्रमशः सूर्य शुक्र, भोम, राहु, शनि, चन्द्र, बुध और गुरु है।

मेष, सिंह और धन राशि को पूर्व दिशा है। वृष, कन्या और मकर राशि की दक्षिण दिशा है। मिथुन, तुला और कुम्भ राशि की पश्चिम तथा कर्क वृश्चिक और मीन राशि की उत्तर दिशा है। इन दिशाओं के एक-एक भुवन तथा विदिशाओं के दो दो भुवन हैं।

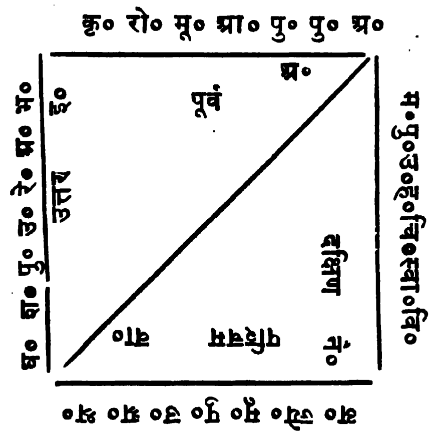
स्थानांगसूत्र में कहा गया है—

पूर्व दिशा में कृतिका, रोहिणी, मृगशर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा नक्षत्र के द्वार हैं। दक्षिण दिशा में मघा पुर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी हस्त चित्रा स्वाति और विशाखा नक्षत्र के द्वार हैं। पश्चिम में अनुराधा ज्येष्ठा मूल पूर्वाषाढा उत्तराषाढा अभिजित् और श्रवण नक्षत्र के द्वार हैं तथा उत्तर दिशा में धनिष्ठा शत-भिषा पुर्वाभाद्रपद उत्तराभाद्रपद रेवती अश्विनी और भरणी नक्षत्र के द्वार हैं। जिस दिशा में नक्षत्र का द्वार हो वह दिशा उस नक्षत्र की तथा पास की स्वजन दिशा कही जाती है।

प्रयाण में वायव्य और अग्निकोण के परिघ का किसी प्रकार उल्लंघन नहीं करना चाहिये ।

परिघ के परिहार के लिये कहा है—

शुभ ग्रह वाला बलवान् यात्रा लग्न हो तो परिघ का भी उल्लंघन किया जा सकता है, किन्तु क्षत्र दिक् शूल तथा दिक् कील का अवश्य त्याग करना चाहिये ।



दिक्शूल—

सूलं पुव्वि सणी सोमो, दाहिणाए दिसा गुरु ।
पच्छिमाइ रवी सुक्को, उत्तराए कुजो बुहो ॥ ७३ ॥

शनि और सोम को पूर्व में, गुरु को दक्षिण में, रवि और शुक्र को पश्चिम में तथा मंगल और बुधवार को उत्तर में शूल होता है । इसका दूसरा नाम नग्नकाल भी है ।

दिक्शूल में प्रयाण अशुभ है, अतः दिक्शूल को वामभाग या पीछे रखकर प्रयाण करना चाहिये जिससे लाभ होता है ।

नारचंद्र में भी कहा है—

न गुरौ दक्षिणां गच्छेद्, न पूर्वां शनिसोमयोः ।
शुक्रार्कयोः प्रतीचीन, नोत्तरां बुधभोमयोः ।। १ ।।

गुरु को दक्षिण में प्रयाण निषेध है, शनि और सोम को पूर्व दिशा में नहीं जाना चाहिये, शुक्र और रविवार को पश्चिम में नहीं जाना चाहिये, बुध और मंगलवार को उत्तर दिशा में नहीं जाना चाहिये ।

प्रयाण में विदिक्शूल की अपेक्षा दिक्शूल की शुद्धि अवश्य देखनी चाहिये ।

विदिक्शूल के विषय में—

ईसाणे अ बुहो मंदो, अग्गोई अ गुरूरवी ।
नेरइए ससी सुक्को, भूमो वाए विवज्जए ।। ७४ ।।

इशान में बुध और शनिवार, अग्नि में गुरु और रवि, नैऋत्य में सोम तथा शुक्र और वायव्य में भोमवार वर्जित करना चाहिये ।

वार के आश्रित कोण में जो शूल होता है उसे विदिक शूल कहा जाता है । बुधवार तथा शनिवार को ईशान में विदिक शूल, रवि और गुरु को अग्नि में, सोम और शुक्र को नैऋत्य तथा मंगलवार को वायव्य कोण में विदिकशूल होता है । प्रयाण में इसे वर्जित करना चाहिये । यथा—

बुध शनि	पूर्व सो० श० षाढा० ज्ये०	रवि० गुरु०
मं० बु० ह० फाल्गु० वि०	दिक विदिक शूल	गुरु० वि० श्र० ध० पू० भा०
भोग	रवि० शुक्र० रो० पुष्य० मूल	सोम० शु०

वार के शूल का परिहार—

चंदणं दहि मट्टी अ, तिल्लं पिट्ठं तहा पुणो ।
तिल्लं खलं च चंदिज्जा, सूराई सूलमुत्तरो ॥ ७५ ॥

रवि आदि सातों वारों में अनुक्रम से चंदन, दही, मिट्टी, तेल, आटा, तेल तथा खल का तिलक करने से यह दोष समाप्त हो जाता है ।

नारचंद्र में भी कहा है—

रवि तंबोल मयंक दप्पण, धाणा चावउ धरणिनंदणु ।
गुलराउत्तह दहि गुरुवारइ, राइ चावओ सुक्करवार ।
सणिसर वारइ वायविडिंग चावइ, सव्वे कज्ज करि घर आवइ ।

दिशाशूल के सम्मुख जाना हो तो रवि को ताम्बूल, सोम को दर्पण देखकर, मंगल को धनिया चबाना, बुध को गुड़ खाना, गुरु को दही खाना, शुक्र को राई खाना तथा शनि को वावडिग चबाने चाहिये जिससे कार्य सिद्ध हो जाय।

नक्षत्रशूल—

उदयदिसि भसूलं दो असाढा य जिट्ठा,
धणिसवणविसाहा पुव्वभद्दा जमाए।
अह वरुणदिसाए रोहिणी पुस्स मूलं,
सुर गिरिदिसि हत्थो फग्गुणी दो विसाहा ॥ ७६ ॥

दो आषाढ तथा ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो पूर्व में, धनिष्ठा, श्रवण, विशाखा, और पूर्वभाद्रपद नक्षत्र हो तो दक्षिण में, रोहिणी पुष्य तथा मूल नक्षत्र हो तो पश्चिम में और हस्त दो फाल्गुनी या विशाखा नक्षत्र हो तो उत्तर दिशा में नक्षत्रशूल होता है।

उदयप्रभसूरि पुष्य हस्त और विशाखा में नक्षत्रशूल होने का नहीं मानते हैं। पूर्णभद्राचार्य श्रवण विशाखा पुष्य और हस्त में शूल होने का नहीं मानते हैं जबकि नारचंद्रसूरि पुष्य और हस्त में भी नक्षत्र शूल हो ऐसा मानते हैं। जिस दिशा में नक्षत्र शूल हो उस दिशा में प्रयाण नहीं करना चाहिये।

व्यवहारप्रकाश—

त्यजेल्लग्नेऽपि शूलर्क्षं, शूलर्क्षे नास्ति निवृतिः।

शुद्ध लग्न होने पर भी नक्षत्र शूल का त्याग करना चाहिये।

श्रीउदयप्रभसूरि के मत में—

बलवान लग्न हो तो परिघ का उल्लंघन किया जा सकता है किन्तु नक्षत्र शूल का नहीं। उसी प्रकार दिक् कील का भी त्याग करना चाहिये।

ज्येष्ठा भाद्रपदा पूर्वा, रोहिण्युत्तरफाल्गुनी।
पूर्वादिषु क्रमात् कीला, गतस्य तेषु नाऽऽगतिः ॥ १ ॥

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में अनुक्रम से ज्येष्ठा पुर्वाभाद्रपद, रोहिणी और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र कील की तरह है। अतः इनमें प्रयाण करने वाला पुनः लौटता नहीं है।

अन्य भी कहा है—

उत्तर हत्था दक्खिण चिता, पुव्वा रोहिणी सुणरे मिता।
पच्छिम सवणा मे कर गमणा, हरिहर बंभ पुरंदर मरणा ॥१॥

हे मित्र! उत्तर की तरफ हस्त नक्षत्र में, दक्षिण तरफ चित्रा नक्षत्र में, पूर्व तरफ रोहिणी नक्षत्र में और पश्चिम तरफ श्रवण नक्षत्र में गमन नहीं करना चाहिये। यहां तक कि विष्णु इन्द्र और ब्रह्मा भी नहीं बच सकते।

वत्सवार—

मीणाइ तिसंकंती, पच्छिमाइसु उग्गइ।
वच्छो गमे पवेसे वि, न सुहो पिट्ठिसंमुहो ॥ ७७ ॥

वत्स मीनादि तीन संक्रान्तियों में पश्चिम दिशा में उदित होता है। ये प्रयाण में और प्रवेश में सन्मुख या पीछे हो तो श्रेष्ठ नहीं है। वत्स आकाश में भ्रमणशील आकृति विशेष वाला ताराग्रह है। यह पृथक-पृथक दिशा में उदित होता रहता है। यह वत्स प्रयाण में या प्रवेश में सन्मुख या पीछे हो तो शुभ नहीं है।

उदयप्रभसूरि के मत में—

सन्मुखोऽयं हरेदायुः, पृष्ठे स्याद् धननाशकः ।
वामदक्षिणयोः किन्तु, वत्सो वाञ्छितदायकः ॥ १ ॥

यह वत्स सम्मुख हो तो आयु का नाश करता है, पीछे हो तो धन का नाश करता है, किन्तु वाम या दक्षिण हो तो इच्छित फल प्रदान करने वाला होता है ।

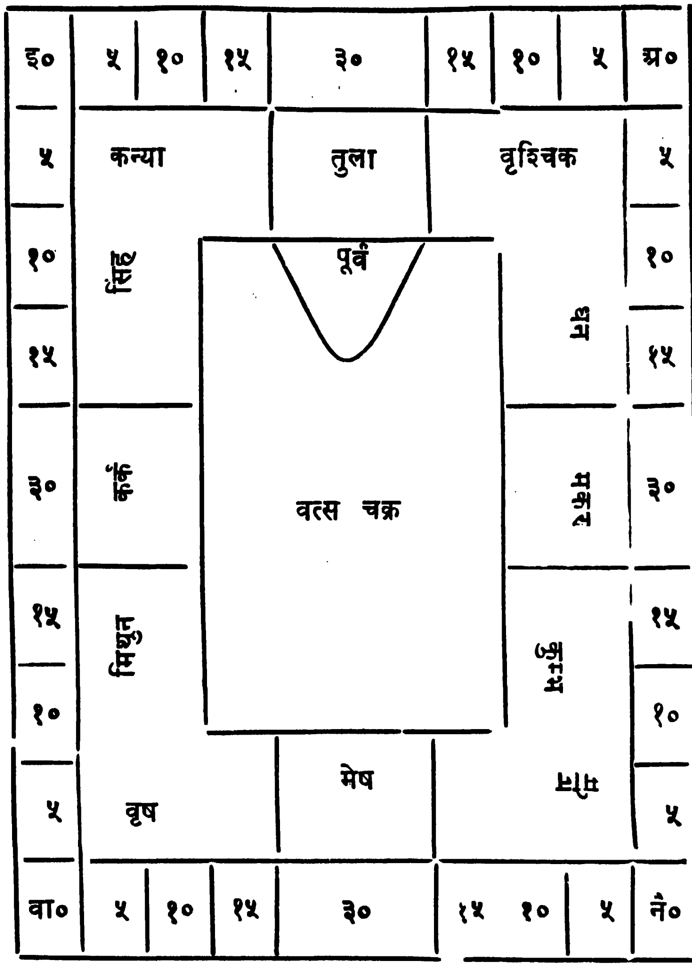
शिल्प ग्रन्थों में प्रमाण—

सन्मुख वत्स वास्तु द्वार तथा प्रवेश में निषिद्ध है ।

लल्ल के मत में—

एक ही नगर में कार्य हो, दुष्काल हो, राष्ट्र विप्लव हो विवाह हो और तीर्थ यात्रा का कार्य हो तो वत्स तथा शुक्र का विचार नहीं करना चाहिये ।

(देखिये वत्स चक्र)



संक्रान्ति को आश्रित कर प्रत्येक ग्रहों का पृथक-पृथक दिशाओं में वास होता है ।

सूर्य— मीन मेष वृष का पूर्व में, मिथुन कर्क और सिंह का दक्षिण में, कन्या तुला और वृश्चिक का पश्चिम में तथा धन मकर और कुम्भ का उत्तर में होता है । सोम मङ्गल बुध गुरु

शुक्र शनि ग्रह सिंह कन्या और तुला संक्रान्ति का हो तो पूर्व में, वृश्चिक धन और मकर संक्रान्ति हो तो दक्षिण में, कुम्भ मीन और मेष संक्रांति हो तो पश्चिम में तथा वृषभ मिथुन और कर्क संक्रांति का हो तो उत्तर में है। राहु— धन मकर और कुम्भ का हो तो पर्व में, मोन मेष और वृष का हो तो दक्षिण में, मिथुन कर्क और सिंह का हो तो पश्चिम में तथा कन्या तुला और वृश्चिक का हो तो उत्तर में होता है।

योगिनो—

इगनवगाइकमा तिहि,
पुव्वुत्तरअग्गिनेरदाहिणए।
पच्छिम वाइ साणे,
जोइणि सा वामपिट्ठिसुहा ॥ ७८ ॥

दिणदिसि धुरि चउघडिया,
परओ पुव्वुत्तदिसिहि कमसो।
तक्कालजोइणी सा,
वज्जेयव्वा पयत्तेणं ॥ ७९ ॥

प्रतिपदा और नवमी से प्रारम्भ होकर आठ तिथियों में, अर्थात् प्रतिपदा से अष्टमो नवमो से पूर्णिमा तक पूर्वादि आठ दिशाओं में वास करती है। क्रम इस प्रकार है— एकम, नवमो पूर्व में, बीज व दशमो उत्तर में, तीज और ग्यारस को अग्नि में, चोथ और बारस को नैॠत्य में, पांचम और तेरस को दक्षिण में, छट्ठ और चौदश पश्चिम में, सातम और पूर्णिमा वायव्य में, आठम और अमावस इशान में जोगिनी रहती है। यह प्रयाण में वाम

तरफ श्रेष्ठ है । सम्मुख तथा दक्षिण को तरफ अशुभ है । पीछे तथा वाम भाग में जय दिलाने वाली है ।

योगिनी सुखदा वामे, पृष्ठे वा[illegible]दायिनी,
दक्षिणे धनहन्त्रीच, संमुखे मरणप्रदा ॥ १ ॥

जोगिनी वाम भाग में सुखप्रद, पृष्ठ भाग में वांछित फल देने वाली, दक्षिण में धन नष्ट करने वाली और सन्मुख मृत्यु देने वाली है ।

मुहूर्तचिंतामणी के अनुसार—

दक्षे पृष्ठे योगिनी रा[illegible]युक्ता, गच्छेद् युद्धे शत्रुलक्षं निहन्ति ।

दक्षिण और पीछे राहु के साथ यदि योगिनी रही हो तो युद्ध में लाखों शत्रुओं का नाश कराने वाली होती है । तात्कालिक योगिनी भी वर्ज्य है ।

नारचन्द्र के मत में—

यदि आवश्यक कार्य में जाना हो तो योगिनी की दृष्टि वाली दिशा को वर्जित कर प्रयाण करना चाहिये ।

उद्धं पनरस घडिआ, दसवामे दाहिणे अ दस पासे ।
अहे दस संमुह पनरस, जोइणीदि[illegible]ओ वज्जिज्जा ॥१॥

योगिनी की दृष्टि ऊँची पन्द्रह घड़ी, वाम भाग में दश घड़ी, दक्षिण भाग में दस घड़ी नीचे दस घड़ी और सन्मुख भाग में पन्द्रह घड़ी होती हैं । इस आधार पर त्याग करना चाहिये ।

राहु विचार—

उदयत्थमणा चउ चउ,
घडियाइं राहु पुव्वदिसि तत्तो ।
सिद्धीए दिसि छट्ठि,
गओ सुहो पुट्ठिदाहिणओ ॥ ८० ॥

राहु हमेशा सूर्य के उदय के समय और अस्त काल में चार घड़ी तक पूर्व दिशा में होता है । उसके बाद सिद्धि के लिये छट्ठी–छट्ठी दिशा में जाता है जो दक्षिण तथा पृष्ठ भाग में हो तो शुभ है ।

नारचंद्र में भी कहा है—

अष्टासु प्रथमाद्येषु प्रहरार्धेष्वहर्निशम् ।
पूर्वस्यां वामतो राहु-स्तुर्यां तुर्यां व्रजेद् दिशम् ॥ १ ॥

राहु सदा पहले से प्रारम्भ होकर आठों प्रहरों में अनुक्रम से पूर्व दिशा से वाम भाग की चौथी–चौथी दिशा में जाता है । कई ग्रंथों में काल राहु आदि कई भेद बताए गए हैं ।

प्रयाण काल में राहू दक्षिण की तरफ तथा पृष्ठ भाग में हो तो शुभ है ।

नारचंद्र के अनुसार—

जयाय दक्षिणो राहुः ।

अन्यत्र कहा गया है— रवि, वत्स और राहू सम्मुख हो तो आयुष्य हरता है ।

संमुहराहा गमणं, न कीरइ विग्गह होइ पिट्ठणायं ।
गिहबार पमुहायं, वज्जे किरइ ता असुहायं ॥ १ ॥

चो० ४ गुरुवार	चो० १ शनिवार धन मकर कुम्भ	चो० मंगलवार
चो० ७ सोमवार कन्या० तु० वृ०	पूर्व राहू चार स्थापना	चो० ३ शुक्रवार मी० मे० वृष
चो० २ गुरुवार	चो० ५ बुधवार मिथुन कर्क सिंह	चो० ८ रविवार

शिवचार—

चितुत्तरिगदुमासा,
दिसि विदिसि विसिट्टि सिवु तम्रो उदया ।
सिट्टि अढाई परिण घडि,
दिसि विदिसिं पुट्टिमुट्टि सुहो ।। ८१ ।।

शिव चैत्रमास और उत्तर दिशा से प्रारम्भ होकर वैशाख और ज्येष्ठ में वायव्य में, अषाढ में पश्चिम में, श्रावण और भाद्र-पद में नैऋत्य में, आसोज में दक्षिण में, कार्तिक और मार्गशोर्ष में अग्निकोण में, पोष में पूर्व में तथा माह और फागण में इशान

दिशा में रहता है। यह प्रत्येक दिशा में ढाई-ढाई घड़ी और विदिशा में पांच-पांच घड़ी फिरता है।

यह नित्य भ्रमणशील शिव प्रयाण में पीछे या दक्षिण भाग में हो तो शुभ है तथा यह विवाद, युद्ध संघर्ष, जुगार (द्यूत) व प्रवास में जय देता है तथा अशुभ स्वरोदय, अपशुकन, भद्रादि दोषों को नष्ट करता है।

महा फागुण घ० ५	पूर्व पोष घ० २।।	कार्तिक मागशर घ० ५
चैत्र घ० २।।	शि व च क्र	आसोज घ० २।।
वैशाख जे० घ० ५	अषाढ घ० २।।	श्रावण भाद्रपद घ० ५

रविचार—

रवि रत्तिअंतपहराओ,
पुव्वाइसु दुन्नि दुन्नि पहर कमा।
दाहिणपुट्ठि विहारे,
व मो पुट्ठि पवेसि सुहो ।। ८२ ।।

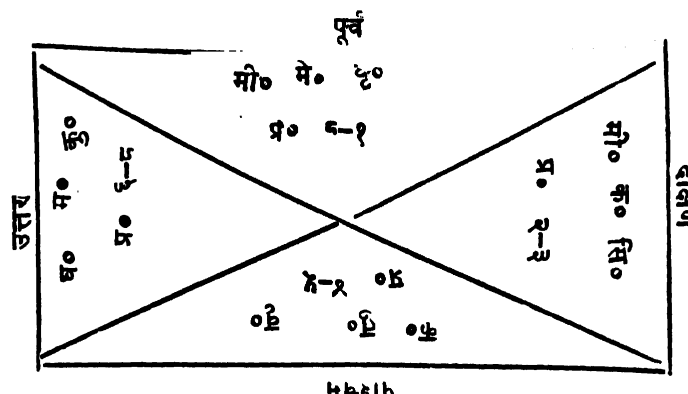
सूर्य रात्रि के अन्तिम प्रहर तथा दिन के प्रथम प्रहर में पूर्व दिशा में परिभ्रमण करता है। यह रात्रि के अन्तिम प्रहर से दो-दो प्रहर पूर्वादि चारों दिशाओं में रहता है। यह विहार में दक्षिण की तरफ या पीछे रहे तो शुभ है।

लल्ल दक्षिण सूर्य के लिये कहता है—

न तस्याऽङ्गारको विष्टि-र्न शनैश्चरजं भयम्।
व्यातीपातो न दुष्येच्च, यस्याऽर्को दक्षिण स्थितः ॥१॥

जिसको प्रवास में दक्षिण का सूर्य हो उसे मंगल विष्टि और शनि का भय अन्तराय नहीं पहुँचाता। व्यतिपात भी दुष्ट नहीं रहता।

अयन विभाग में तो सूर्य मकरादि छः राशि में हो तो उत्तर तथा पूर्व में और कर्क आदि छः राशि में हो तो दक्षिण व पश्चिम दिशा में दिवस का प्रयाण शुभ कहा गया है।



चन्द्रचार—

उदयवसा अहवा दिसि—
दारभवसओ हवे ससीऊदओ ।
सो अभिमुहो पहाणो,
गमणे अमिआइं वरसंतो ।। ८३ ।।

उदय के वश से अथवा दिशा के वश से अथवा द्वार नक्षत्र के वश से चन्द्र का उदय कहा जाता है अर्थात् पूर्व में उगना, दिशा में वास करना, पूर्वादि द्वार वाले नक्षत्रों के साथ रहना यह अमृत को बरसाता हुआ चंद्र प्रयाण में सम्मुख हो तो प्रधान है ।

इसके लिये कहा है—

मेषे च सिंहे धनपूर्वभागे, वृषे च कन्या मकरे च याम्ये ।
युग्मे तुले कुम्भसु पश्चिमायां, कर्कालिमीनेषु तथोत्तरस्याम् ॥१॥

चन्द्र— मेष, सिंह और धन का हो तब पूर्व में, वृषभ, कन्या और मकर का हो तब दक्षिण में, मिथुन, तुला और कुम्भ का हो तब पश्चिम में तथा कर्क, वृश्चिक और मीन का हो तब उत्तर में होता है । इस प्रकार सम्मुख आया चन्द्र नक्षत्र के वश से सम्मुख माना जाता है ।

अमृत बरसाने वाला चन्द्र अर्थात् स्निग्ध, स्पष्ट, अग्रसित उच्च स्थान में रहा हो और सन्मुख हो तो श्रेष्ठ है ।

नारचन्द्रानुसार—

संमुखे अर्थलाभं च, दक्षिणे सुखसंपदः ।
पश्चिमे कुरुते मृत्युं, वामे चन्द्रो धनक्षयम् ।। १ ।।

चंद्र प्रयाण में सम्मुख हो तो अर्थ लाभ, दक्षिण में हो तो सुख सम्पदा तथा पश्चिम में (पीछे को तरफ) हो तो मृत्यु-कारक और वाम भाग में हो तो धन क्षय करता है।

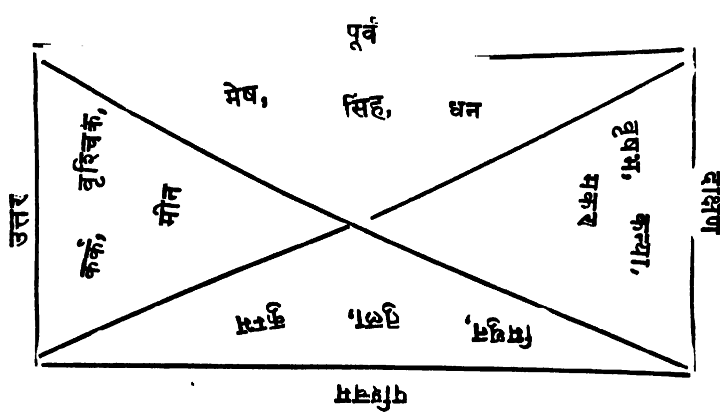
अन्यत्र भी कहा है—

करण भगण दोषं वार संक्रान्तिदोषं,
कुतिथि कुलिक दोषं याम यामार्धदोषम् ।
कुजशनिरविदोषं राहुकेत्वादिदोषं,
हरति सकलदोषं चन्द्रमाः संमुखस्थः ॥ १ ॥

(समयोचित पद्यमालिका)

सम्मुख का चंद्रमा— करण, नक्षत्र, वार, संक्रांति, कुतिथि कुलिक, प्रहर, चौघड़िया (याम), मंगल, शनि, रवि, राहू और केतु आदि के समस्त दोषों को हर लेता है।

अयन विभाग में तो चंद्र आदि छः राशियों में हो तो उत्तर तथा पूर्व में और कर्म आदि छः राशियों में हो तो दक्षिण तथा पश्चिम में रात्रि का प्रयाण शुभ कहा गया है।



शुक्र चार हैं उसके बारे में—

जहिं उग्गइ जहिं दिसि,
भमइ जहिं च दारभिट्ठाइं ।
तिहुं परिसंमुह सुक्क पुण,
उदउ जि इक्कु गण्णइ ॥ ८४ ॥

शुक्र जिस दिशा में उगता है, जिस दिशा में परिभ्रमण करता है और जिस द्वार के सम्मुख रहता है, ये तीनों प्रकार का शुक्र सम्मुख का शुक्र कहा जाता है। किन्तु जो उदय का शुक्र है वह एक ही गिना जाता है। शुक्र अस्त होने के बाद पूर्व या पश्चिम दिशा में उगता है। पूर्व तथा पश्चिम में उदित शुक्र सम्मुख रहे तो अशुभ है तथा प्रयाण निषिद्ध है। श्रीउदयप्रभसूरि के मत में यात्रा में तीनों ही प्रकार का शुक्र वर्जित है।

नारचंद्र में भी कहा है—

अग्रतो लोचनं हन्ति, दक्षिणो ह्यशुभप्रदः ।
पृष्ठतो वामतश्चैव, शुक्रः सर्वसुखावहः ॥ १ ॥

सम्मुख का शुक्र नेत्र नाश करता है, दक्षिण का शुक्र अशुभ है, पृष्ठ भाग तथा वाम भाग का शुक्र सर्व सुख देने वाला है।

जीर्णपत्र में कहा गया है—

गर्भिणी च सबाला च, नववधूर्भूप एव च ।
पदमेकं न गच्छन्ति, शुक्रे सन्मुख-दक्षिणे ॥ १ ॥
गर्भिणी स्रवते गर्भं, सबाला म्रियते ध्रुवम् ।
नववधूर्भवेद् वन्ध्या, नृप शीघ्रं विनश्यति ॥ २ ॥

सन्मुख और दक्षिण का शुक्र हो तो गर्भिणी स्त्री, पुत्रवती स्त्री, नवपरिणिता और राजा एक पद भी नहीं जा सकते और कदाचित प्रयाण कर भी ले तो गर्भिणी का गर्भ श्राव, पुत्रवती की मृत्यु, नवपरिणिता वन्ध्या और राजा नष्ट हो जाता है ।

सन्मुख शुक्र का अपवाद—

एकग्रामे पुरे वासे, दुर्भिक्षे राजविड्वरे ।
विवाहे तीर्थयात्रायां, प्रतिशुक्रं न विद्यते ॥ १ ॥

एक ही ग्राम, एक ही पुर, दुर्भिक्ष, राजा के उपद्रव, विवाह और तीर्थ यात्रा में शुक्र का निषेध नहीं है ।

सड बोले नहीं दोसं, गामं इग पुर इगेहि वासक्से ।
विवाहे कंतारे विदुर निव देवजाईहि ॥ १ ॥

एक ही ग्राम, पुर, स्वगृह, निवास, विवाह, वन, भय, राज कार्य तथा देवयात्रा इनमें शुक्र दोष नहीं है ।

लल्ल के मत में भी उपरोक्त तथा नववधू प्रवेश और देश के विप्लव में शुक्र का विचार नहीं करना चाहिये ।

त्रिविक्रम के मत में भी नवबिवाहिता स्त्री को छोड़ कर अन्य गृह प्रवेश में या यात्रा में शुक्र दक्षिण का और बुध को छोड़ना चाहिये ।

पौष्णाश्विनीं पादमेकं, यदा वहति चन्द्रमाः ।
तदा शुक्रो भवेदन्धः, संमुखं गमनं शुभम् ॥ १ ॥

जब चंद्रमा रेवती नक्षत्र से अश्विनी नक्षत्र के प्रथम पाद तक होता है तब शुक्र अंधा होता है । अतः उस समय प्रयाण निषिद्ध है ।

प्रतिकूलता के लिये कहा है—

प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं, प्रत्यंगारकमेव च ।

अपि शुक्रसमो राजा, हतसैन्यो निवर्तते ।। १ ।।

प्रतिकूल शुक्र, प्रतिकूल बुध और प्रतिकूल मंगल हो तो शुक्र के समान राजा भी अपना सैन्य नष्ट कराकर लौटता है ।

दैवज्ञवल्लभ में कहा है कि प्रतिकूल बुध में तो कभी भी प्रयाण करना ही नहीं चाहिये ।

पाश तथा काल—

सियपडिवयाउ पुव्वा—

इसु पासु दसदिसिहिं कालु तयभिमुहो ।

कुज्जा विहारि वामो,

पासो कालो उ दाहिणओ ।। ८५ ।।

शुक्ला प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर पूर्वादि दशों दिशाओं में पाश होता है और उसके सन्मुख काल रहता है । विहार में पाश को वाम रखना चाहिये तथा काल को दक्षिण भाग में रखना चाहिये ।

मुहूर्तचिंतामणि में भी कहा है—

दक्षिणस्थः शुभः कालः, पाशो वामदिशि स्थितः ।

वास्तुग्रंथों में भी कहा है—

शुक्ला प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर दस-दस तिथियों में अनुक्रम क्रम से पूर्व, अग्नि, दक्षिण, नैऋत्य, उर्ध्व, पश्चिम, वायव्य उत्तर, ईशान और अधोदिशा में पाश होता है और पाश के संमुख

की दिशा में दिक्काल होता है। इनमें स्नान मुहूर्त तथा ध्वजारोपणादि कार्य नहीं किये जाते।

ज्योतिषसार के अनुसार—

दिणवारं पुव्वाई, कमेण संहारि जत्थ ठाणि सणी।
कालं तत्थ वि आणसु, तत्संमुहु पासो-भणइ इगे ॥ १ ॥

शनिवार को पूर्व, शुक्रवार को अग्नि, गुरुवार को दक्षिण बुधवार को नैऋत्य, मंगलवार को पश्चिम, सोमवार को वायव्य कोण और रविवार को उत्तर दिशा में काल होता है। ईशान में काल नहीं होता मात्र पाश होता है।

हंसचार—

पुण्णनाडि दिसापायं, अग्गे किच्चा सया विऊ।
पवेसं गमणं कुज्जा, कुणन्तो साससंगं ॥ ८६ ॥

यहां सूरीश्वर नाड़ी और श्वास के ऊपर प्राण वायु देख कर प्रयाण का प्रमाण बताते हैं। प्राण का अन्य नाम हंस है। विद्वान् पुरुष पूर्ण नाड़ी तरफ के पैर को आगे करके श्वास की संगति के प्रवेश और गमन करते हैं।

स्वरोदय शास्त्र के अनुसार—

षट्शताऽभ्यधिकान्याहुः, सहस्त्राण्येकविंशतिम्।
अहोरात्रे नरे स्वस्थे, प्राणवायोर्गमागमः ॥ १ ॥

एक दिन और रात्रि में स्वस्थ मनुष्य इक्कीस हजार छः सौ श्वासोच्छ्वास लेता है।

प्राणायामो गतिच्छेदः श्वासप्रश्वासयोर्मतः ।
रेचकः पूरकश्चैव, कुम्भकश्चेति स त्रिधा ॥ २ ॥

श्वास और उच्छ्वास की गति का छेद हो प्राणायाम है। इसके रेचक, पूरक तथा कुम्भक ये तीन प्रकार हैं ।

वायोः प्रक्षेपणं रेचः, पूरणं स तु पूरकः ।
नाभिपद्मे स्थिरीकृत्य, रोधनं स तु कुम्भकः ॥ १ ॥

वायु का बाहर निकालना रेचक, वायु का अन्तर में खींचना पूरक तथा वायु को नाभिकमल में रोककर रखना कुम्भक कहा जाता है ।

प्राणायाम का पृथक-पृथक फल—

इडा पिङ्गला सुषुम्णा, वामदक्षिणमध्यगा ।
शशिसूर्यशिवानां या, शान्तिक्रूरत्वशून्यदा ॥ ४ ॥

वाम नासिका, दक्षिण नासिका और मध्य में चंद्र रवि और शिव की इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाम की तीन नाड़ियां हैं जो अनुक्रम से शांति क्रूरता और कार्य की निष्फलता देती है ।

दोनों नासिकाओं का पवन चलता हो तो सुषुम्ना कही जाती है ।

षट्त्रिंशद्गुरुवर्णानां, या वेला भणने भवेत् ।
सैववायोः सुषुम्णायां-नाड्यां संचरतो लगेत् ॥५॥

छत्तीस गुरुवर्ण बोलते समय जितना समय लगता है अर्थात् (१४ सेकण्ड) उतना समय सुषुम्ना में वायु को संचरित होने में लगता है तथा एक नाडी से दूसरी नाडी में संचरित होने में भी उतना ही समय लगता है।

सार्धं घटीद्वगं नाडि-श्चन्द्रार्कयोरर्कोदयात् ।
शुक्लात् त्रीणि त्रीणिदिना-वि तयोरुदयः शुभः ॥६॥

चंद्र और सूर्य की नाड़ी सूर्योदय से २॥-२॥ घड़ी तक रहती है, उसमें शुक्ल पक्ष से तीन-तोन दिन अनुक्रम से चंद्रनाड़ी और सूर्यनाड़ी का उदय हो तो शुभ ।

नाड़ी तरफ का अंग पूर्ण कहा जाता है, किसी एक नाड़ी में वायु चलता हो किन्तु आवश्यक प्रसंग पर दूसरी नाड़ी में भी विशेष रीति से वायु का संचार किया जा सकता है ।

निरुरुत्सेद् वहन्तीं यां, वामां वा दक्षिणामथ ।
तदंगं पीडयेत् सद्यो, यथा नाडीतरा भवेत् ॥ ७ ॥

यदि चलती हुई वाम या दक्षिण की नाड़ी को रोकने की इच्छा हो, दूसरी नाड़ी वहन नहीं हो वहां तक उसे दबा कर रखना चाहिये जिससे कुछ ही समय में नाड़ी की चाल दूसरी तरफ हो जाती है ।

अग्रे वामे शशिक्षेत्रं पृष्ठ दक्षिणयो रवे ।
लाभालाभौ सुखं दुखं, जीवितं ज्ञायते ततः ॥८॥

आगे तथा वाम भाग में शशि का क्षेत्र है तथा पीछे और दक्षिण तरफ रवि का क्षेत्र है । जिससे लाभ, अलाभ, सुख, दुख जीवन और मृत्यु आदि जाने जासकते हैं ।

अरघट्टीघटन्याद्, नाड्यां वायुस्तु संचरेत् ।
पीतश्वेताऽरुणश्यामै-र्बिन्दुभिर्ज्ञायते मरुत् ॥ ९ ॥

रेहट की घड़ियों की तरह दोनों नाड़ियों में वायु का

संचार होता है और यह वायु पीत, श्वेत, लाल तथा काले बिन्दु से जाना जाता है।

भूमि जलानलानिला-काशतत्त्वानि स्युः क्रमात् ।
पीतश्वेताऽरुणनील-श्यामवर्णानि नित्यशः ॥ १० ॥

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश ये पाँच तत्व अनुक्रम से पीत, श्वेत, लाल, हरित और श्याम रंग वाला है।

पृथ्व्याः पलानि पञ्चाशत्, चत्वारिंशत् तथाऽम्भसः ।
अग्नेस्त्रिशत तथा वायो-र्विंशतिर्नभसो दश ॥ ११ ॥

पृथ्वीतत्व के पल ५०, जलतत्व के ४०, अग्नितत्व के ३०, वायुतत्व के २० और आकाशतत्व के १० हैं।

(१) पृथ्वीतत्वः— इस तत्व में पृथ्वी का बीज है। वज्रचिन्ह चतुष्कोणाकृति स्वर्णवर्ण, पीतवायु, मन्दगति शीतोष्णस्पर्शादि।

(२) जल तत्वः— वरुणाक्षर, अर्धचन्द्र गोलाकृति, सुधा श्वेत वर्ण, वायु–श्वेतशीत, तेजगति, सोलह अंगुल प्रमाण।

(३) अग्नितत्वः— उच्चज्वाल भीमस्वरूप, त्रिकोणाकृति, स्वस्तिक चिन्ह, रक्त वर्ण, अग्नि बीज, चार अंगुल प्रमाण।

(४) वायुतत्वः— चंचल, दुःखप्रद ध्वजाकृति, हरित कान्ति, शीतोष्ण, हरित, अष्टांगुल प्रमाण।

(५) आकाशतत्वः— शून्याकार, कृष्णवर्ण, वायु समझा नहीं जा सके ऐसी गति वाला, विचित्र, रूप में १० पल तक बहा करे ऐसो वायु।

नाम	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश
रंग	पीत	श्वेत	रक्त	हरित	कृष्ण
आकृति	चतुष्कोण	अर्ध चन्द्र	त्रिकोण	ध्वजा	कण
गति	सन्मुख	नीचे	ऊपर	आंसी	स्थिर
अन्तर	१२	१६	४	८	१
कालपल	५०	४०	३०	२०	१०
स्वाद	मधुर	कषाय	तिक्त	अम्ल	कटु
गुण	गुरु	•	उष्ण	गतिमय	स्थिर
दिशा	१ पश्चिम	पूर्व	दक्षिण	उत्तर	गड़बड़
,,	२ दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	स्थिर
दशा	निरोगी	बल	दुर्बल	साधारण	रोग
प्रभाव	सुख	शीतलता	उष्णता	उड़ना	प्रकाश
शब्द	हं	दं	रं	यं	नं
प्रश्न	वनस्पति	जीवन	धातु	यात्रा	ठठ्ठा
उचितकृत्य	धैर्य	तीव्रता	श्रम	शक्ति	अभ्यास
लग्नफल	राज्य	धन	हानि	उद्वेग	मृत्यु
कार्य	मृत्युकार्य	शांतिक	उच्चाटन	स्तम्भन	समाधि
स्वभाव	स्थिर	चर	सम	शीघ्रता	विचित्र
कार्यफल	सिद्धि	सिद्धि	मृत्यु	क्षय	निष्फल
स्वामी	बुध रवि	सोम राहू	शुक्र मंगल	गुरु शनि	शनि शनि

स्थान	जंघा	पैर	स्कंध	नाभि	मस्तक
शुभाशुभ	शुभ	शुभ	मध्यम	विमध्यम	अशुभ
कार्यसिद्धि	मन्द	शीघ्र	श्रम से	नहीं	०
कार्यफल	शांतता	शीतलता	संताप	चंचलता	धर्मेच्छा

चलती हुई नाड़ी की तरफ का पांव आगे करके सूर्य को दक्षिण रख कर और जिनेश्वर को प्रदक्षिणा कर प्रयाण करने से दिनशुद्धि बिना भी कार्यसिद्धि मिलती है।

अतः प्रयाण में सूर्य को दक्षिण या पीछे रखना चाहिये। विवेकविलास में लिखा है कि दक्षिण या वाम जिस नासिका द्वार में पवन चलता हो उस तरफ का पांव आगे करके अपने घर में से बाहर निकलना चाहिये। जिससे हानि, क्लेश, उद्वेग, पीड़ा, उपद्रव नहीं होते। कुछ आचार्यों का मत है—दूर देश में जाना हो तो चन्द्र नाड़ी में और नजदीक के देश में जाना हो तो सूर्य नाड़ी में पैर आगे करके प्रयाण करना चाहिये। किंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि चन्द्रनाड़ी हो तो पूर्व, उत्तर में तथा सूर्य-नाड़ी हो तो पश्चिम, दक्षिण में प्रयाण नहीं करना चाहिये क्यों कि उन दिशा में दिग्शूल होता है।

और भी यदि बालक पुरुष, या स्त्री सामने या दक्षिण तरफ छींक करे तो अशुभ, पीछे या वाम भाग में शुभ होती है। इसी प्रकार उत्साह, आयम्बिल तप भी सिद्धिप्रद है।

चैत्यद्वार :—

चेइअसुअं धुआमिउ-करपुस्स धणिट्ठसयमिसासाई।
पुस्सति उत्तररेरो··करमिगसवणे सिलनिवेसो ॥ ८७ ॥

ध्रुव, मृदु, हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा, और स्वाति-नक्षत्र में चैत्यसूत्र करना चाहिये । तथा पुष्य, तीन उत्तरा, रेवती, रोहिणी, हस्त, मृगशिर और श्रवण नक्षत्र में शिलास्थापन करना चाहिये ।

प्रथम जिनमन्दिर या गृहनिर्माण कराने के लिए नैमिक पुरुष के पास जा कर अनुकूल मुहूर्त में कार्य का आरम्भ कराना चाहिये तथा ज्योतिर्विद् को भी सम्पूर्ण रूप से अनुकूल ग्रहों का योग देख कर शुभ मुहूर्त निकालना चाहिये ।

भुवनदिशा:— घर का द्वार जिस दिशा तरफ हो, उस दिशा को पूर्व दिशा कल्पित करके फिर अनुक्रम से अग्नि से ईशान पर्यन्त दिशाएं होतीं हैं । सामान्य रीति से वास्तु का जन्ममास भाद्रपद, जन्मतिथि तृतीया, जन्मवार शनि, जन्मनक्षत्र कृतिका का प्रथम पाद, जन्मयोग व्यतिपात, जन्मकरण विष्टि और जन्मकाल रात्रि का आदि भाग है ।

घर के नाम :—

(१) ध्रुव— चारों तरफ बिना वृद्धि का।

(२) धन्य— द्वार को तरफ की दिशा में वृद्धि वाला ।

(३) जय— द्वार के दक्षिण तरफ वृद्धि वाला।

(४) नन्द— द्वार के तरफ तथा दक्षिण की तरफ वृद्धि वाला।

(५) खर— पछीत (पछवाड़ा की तरफ) वृद्धि वाला।

(६) कोत— बाहर की तरफ और पछीत में वृद्धि वाला।

(७) मनोरम—द्वार की जीमणी (दक्षिण) तरफ और पीछे के भाग में वृद्धि वाला घर।

(८) सुमुख— बाहर की तरफ, दक्षिण तरफ और पीछे वाला वृद्धि वाला घर ।

(९) दुर्मुख— द्वार की वाम में वृद्धि वाला।

(१०) क्रूर— द्वार तरफ और वाम तरफ वृद्धि वाला।

(११) विपक्ष—दक्षिण तरफ और वाम तरफ वृद्धि वाला ।

(१२) धनद— द्वार तरफ, दक्षिण तरफ, और वाम तरफ वृद्धि वाला ।

(१३) क्षय— द्वार के पछवाड़े और वाम तरफ वृद्धि वाला।

(१४) आक्रन्द— द्वार के आगे पीछे और वाम तरफ वृद्धि वाला।

(१५) विपुल द्वार के अतिरिक्त तीनों दिशाओं में वृद्धि वाला ।

(१६) विजय— चारों तरफ वृद्धि वाला घर ।

इन भेदों का नामानुरूप गुण है, इनमें खर, दुर्मुख, क्रूर क्षय तथा आक्रन्द जाति के घर अशुभ है । तथा गृहपति के स्वयं के नाम के प्रथम अक्षर वाला उसके लिए अशुभ है । इसके उप-भेद १४०, १५२, १७२ तक है ।

(१) क्षेत्रफल :—

धनुष, गज, अंगुल, हाथ गजादि से स्थान का क्षेत्रफल निकालना चाहिये। लम्बाई×चौड़ाई से क्षेत्रफल निकालना चाहिये। यदि पूर्णाङ्क माप हो तो अंगुल से वृद्धि-हानि कर लेनी चाहिये, विषम आयज नहीं आना चाहिये ।

देवालय की भित्तियाँ क्षेत्रफल के अन्दर ही बनानी चाहिये।

शिल्प-ग्रन्थों के आधार पर जिनमन्दिर के गर्भग्रह में या घर में जालियां रखने का निषेध है । फिर भी मतमतांतर से सहमति हो जाय तो द्वार की ऊँचाई तथा घोड़े की ऊँचाई को ध्यान में रख कर यह कार्य किया जा सकता है । गणादि भी देख लेना चाहिये । देवगण श्रेष्ठ है। मनुष्यगण भी मान्य है । इन सबके लिए व्यवहार - प्रकाश में लिखा है :—

गृहेषु यो विधिः कार्यो, निवेशन प्रवेशयोः ।
स एव विदुषा कार्यो, देवतायतनेष्वपि ॥ १ ॥

देवालयं वा भवनं मठः स्याद्, भानोः करैर्वायुभिरेव भिन्नम् ।
तन्मूलभूमौ परिवर्जनीयं छाया गता तस्य गृहस्थ कूपे ।३।३५।

सूचिमुखं भवेच्छिद्रं, पृष्ठे यदा करोति च ।
प्रासादे न भवेत्पूजा गृहे क्रीडन्ति राक्षसाः ॥ ४ ॥ ३० ॥

पृष्ठे गवाक्षं न कर्त्तव्यं, वामांगे परिवर्जयेत् ।
अग्रतश्च भवच्छ्रेष्ठं, जायमानं सदा जयम् ॥ ४ ॥ ४३ ॥

'शिल्प दीपक' के अनुसार घर के साथ मनुष्य का नामांक फल निकालना चाहिये । आय की रीति । यह ध्रुवांक—

अ, ख, ड और भ अक्षरों का १४ है।

आ, ग, ढ, म का २७ ।

इ, घ, ण, य का २ ।

ई, ङ, त, र का १२।

उ, च, थ, ल का १५ ।

ऊ, छ, द, व का ८

ए, ज, ध, श का ४

ऐ, झ, न, ष का ३

ओ, भ, प, स का ५

औ, ट, फ, ह का ६

क ठ ब क्ष का ९ ध्रुवाँक है।

मनुष्य के नाम के आदि अक्षर के ध्रुवांक को मनुष्य के नाम के अक्षरों के साथ गुणा करने से नामांक फल आता है और उसमें ८ का भाग देने से मनुष्य का आय आता है। उसके साथ घर का आय अनुकूल हो तो रखना चाहिये नहीं तो बदल देना चाहिये।

जैसे गुणचन्द्र का आदि अक्षर 'ग' है और उसका ध्रुवांक २७ है। नाम के अक्षर ४ हैं, इनको गुणा करने से नामांकफल १०८ होते हैं, इनमें ८ का भाग देने पर भाग में १३ तथा शेष ४ रहते हैं। अर्थात् गुणचंद्र का चौथा श्वान आय आता है। अब उसके घर में ध्वांक्षाय आय तो गुणचंद्र की मृत्यु होगी। अतः उसका त्याग करके अन्य आय लेना चाहिये।

(२) आयः— क्षेत्रफल को आठ से भाग देने पर शेषांक प्रमाण में पूर्व, अग्नि आदि दिशा के बल वाले, १ ध्वज, २ धुम, ३ सिंह, ४ श्वान, ५ बैल (गाय), ६ खर, ७ गज (हाथी), ८ ध्वांक्ष। इस प्रकार आठ आय आते हैं। ये आय निम्न घर में श्रेष्ठ हैं। (१ - ३ - ५ - ७)

गज का आयः— प्रासाद, प्रतिमा, यन्त्र, मण्डप, शुचिस्थान, पताका, छत्र, चामर, वापि, कूप, तड़ाग, अभिषेक स्थल, आभूषण

देवालय धर्मशालादि में शुभ है। वृष, सिंह, और गज के आय प्रासाद और नगर के घर में विशेष श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ आयों में परिवर्तन सम्भव है। जैसे वृष के स्थान में गज, सिंह और ध्वज का आय, गज के स्थान में सिंह और ध्वज का आय तथा सिंह के स्थान में ध्वज का आय लाया जा सकता है।

(३) गृह जन्मनक्षत्र:— क्षेत्रफल के अंक को आठ से गुणा करके सत्ताइस का भाग देने पर जो अंक आवे वह अश्विनी से प्रारम्भ हो कर जितनी संख्या वाला नक्षत्र हो उतना ही गृह-जन्म नक्षत्र कहा जाता है। इस नक्षत्र से गृहपति के साथ चन्द्र तारा द्वार वर्ग नाड़ी योनि लेनदेन तथा गणादि देखना चाहिये।

तारा:— स्वामी के जन्म नक्षत्र से घर के नक्षत्र तक के अंक को नौ का भाग दे कर नौ तारा लेनी चाहिये, इनमें तीसरी पांचवीं, सातवीं तारा अशुभ है।

(५) द्वार:— इनमें जन्मनक्षत्र से चन्द्र को देखना चाहिये। यदि गृहस्थ के घर में दक्षिण तरफ या वाम तरफ चन्द्र हो तो शुभ है। प्रासाद, राजमहल, और लक्ष्मी मंदिर आदि में सन्मुख चंद्र शुभ है। तथा घर में एक नाड़ी, नाड़ीवेध, अविरुद्ध योनि, ऋण और देवगण हो तो अत्यंत श्रेष्ठ है।

राशि:— क्षेत्रफल को ३२ से गुणा कर १०८ से भाग देने पर जो शेष रहे उसमें एक कम करके ९ से भाग देना चाहिये। जिससे भाग में गतराशि का अंक तथा शेष में इष्ट राशि का भोग्य नवांश आता है। इस प्रकार षड़ाष्टक, दोबारह, ग्रह मैत्री देखनी चाहिये।

व्यय:— घर के क्रमशः सत्ताइस नक्षत्रों में अनुक्रम से शांत, क्रूर, प्रद्योत, श्रेयान्, मनोरम, श्रीवत्स, वैभव और चितात्मक

नाम के आठ व्यय रहे हुए हैं । अर्थात् घर का अश्विनी नक्षत्र हो तो शान्त, भरणी नक्षत्र हो तो क्रूर, रोहिणी हो तो प्रद्योत, इस प्रकार अन्तिम रेवती नक्षत्र हो तो प्रद्योत व्यय आता है । जैसे आय आठ हैं वैसे ही व्यय भी ८ हैं । उसमें ध्वज आय के साथ शांत व्यय और अन्य किसी आय के साथ अपने से एक अंक कम व्यय शुभ है । चिन्तात्मक व्यय त्याज्य है ।

आय के अङ्क से व्यय का अंक अधिक हो तो राक्षस-व्यय, समान हो तो पिशाच व्यय, और कम हो तो यक्ष व्यय कहा जाता है । यक्ष व्यय श्रेष्ठ है ।

(८) अंशः— क्षेत्रफल का अंक, घर के नाम के अक्षरों का अंक, व्यय का अंक तीनों का योग करके तीन का भाग देना चाहिये, शेष में १, २, और ० रहने से अनुक्रम से इन्द्र, यम और राजा अंश आते हैं । इन तीनों अंशों में यम अंश अधम है । राजा मध्यम तथा इन्द्र उत्तम है ।

शिल्पदीपक में कहा गया है—प्रासाद, प्रतिमा, पीठ, वेदी, कुण्ड, ध्वजा, सुख-स्थान, नाटकशाला, उत्सवभूमि आदि में इन्द्रांश श्रेष्ठ है । व्यन्तर मन्दिर, ग्रहभुवन, मात्रिका-प्रासाद, व्यापारस्थान, क्षेत्रपाल का मन्दिर, कमल का घर, आयुधशालादि में यमांश देना श्रेष्ठ है । और सिंहासन, शैया, हाथीशाला, राज्यकोषागार, नगर-आदि में नृपांश देना श्रेष्ठ है ।

अन्य स्थान में कहा है—आयादिक नौ अंगों में से नव, सात, पांच अथवा तीन अंग शुभ हो तो वह घर श्रेष्ठ है, उससे अधिपति, उत्पत्ति, तत्त्व और आयुष्य आदि की अनुकूलता देखी जाती है । निम्न प्रमाण से है ।

(९) अधिपतिः— आय तथा व्यय का योग करके आठ का भाग देना चाहिये । शेष में जितना अंक रहे उसे घर का अधिपति जानना चाहिये । ये अधिपति आठ हैं और उनका नाम क्रमशः विकृत, कर्णांक, धुम्रद, वितथ स्वर, बिलाड़, दुन्दुभि, दांत और कांत है । इनमें एकी अंक वाला अधिपति शुभ है।

(१०) वर्गवैरः— घर तथा गृहपति के नाम के गरुड़ादि वर्ग देखने चाहिये तथा परस्पर विरोधी वर्ग वाले घर का त्याग करना चाहिये ।

(११) उत्पत्तिः— घर के नक्षत्रों को पाँच से भाग देना चाहिये, शेष में रहे अंक ऊपर पाँच प्रकार को घर की उत्पत्ति होती है । अनुक्रम से १ प्रभूतदान, २ सुख-प्राप्ति, ३ स्त्री प्राप्ति, ४ धन प्राप्ति और ५ पुत्र प्राप्ति ।

(१२) क्षेत्रफल को तीन से गुणा कर के पाँच से भाग देने पर शेष में घर के पृथ्वी आदि पांच तत्व आते हैं । इनमें यदि पृथ्वी तत्व वाला घर हो तो धनधान्य की वृद्धि वाला, दीर्घायु जलतत्व वाला घर पानी की चपेट में कभी भी आ सकता है । अग्नितत्व वाला घर अग्निदाह का शिकार हो सकता है । वायु-तत्व वाले घर में वायु का प्रकोप होता है । तथा आकाश तत्व वाले घर में कोई निवास नहीं कर सकता है । यदि वास कर लेता है तो अकस्मात् घटना हो सकती है तथा सन्तति का नाश हो जाता है ।

(१३) आयुष्य क्षेत्रफल को आठ से गुणा करने पर जो अंक आवे उतनी घड़ी पर्यन्त कांकरी मिट्टी वाले घर की आयुष्य होती है । ईंट, मिट्टी और चूना वाले घर की आयुष्य उससे

दस गुनी, ईंट, पत्थर शीशा वाला की ६०० गुना तथा धातु का १६१००० गुणा आयुष्य वाला होता है।

नैमित्तिकों को इस प्रकार से सब संयोग देख कर तथा गांव की लेणादेणी देख कर, प्रारम्भ करने की आज्ञा देनी चाहिये।

ब्राह्मण को पश्चिमाभिमुख तथा ध्वज के आय वाला, राजा को उत्तराभिमुख तथा सिंह की आय वाला, वैश्य को पूर्वाभिमुख तथा वृष के आय वाला तथा शूद्र को दक्षिणाभिमुख तथा गज के आय वाला घर श्रेष्ठ है।

शिल्प-ग्रन्थ में तो कहा गया है— सिंह, वृश्चिक और मीन राशि वालों को पूर्वाभिमुख; कर्क, कन्या और मकर राशि वालों को दक्षिणाभिमुख; मिथुन, तुला और धन राशि वालों को पश्चिमाभिमुख तथा मेष वृष और कुम्भ राशि वालों को उत्तराभिमुख घर बनाना चाहिये। जो शुभ है।

गृह के प्रारम्भ में खूंटी डाल कर रस्सी बांधनी चाहिये। खोदना तथा शिला स्थापित करना चाहिये। ये तीन क्रियाएँ की जाती हैं तथा निम्न शुद्धि देखनी चाहिये।

नारचन्द्र के अनुसार—

*मार्गः पौशश्च वैशाखः फाल्गुनः श्रवणस्तथा।
एते शस्ता गृहारम्भे, वास्तुशास्त्रप्रकीर्तिताः ॥ १ ॥

---

*चैत्रे शोककरं विन्द्यात् वैशाखे च धनागमः।
जेष्ठे चैव भवेत्कष्टत् माषाढे पशुनाशनम् ॥ १ ॥

घर के प्रारम्भ के लिये वास्तुशास्त्र में कहा गया है—

मार्गशीर्ष, पौष, वैशाख, फाल्गुन और श्रावण मास प्रशस्त है।

शोको धान्यं मृति-पशुहृतो द्रव्यवृद्धिर्विनाशो,
युद्धं भृत्यक्षिति रथ धनं श्रीश्च वह्निभयं च।
लक्ष्मीप्राप्तिः भवति भवनारम्भकर्तुः क्रमेण,
चैत्राद्यूच मुनिरिति फलं वास्तुशास्त्रोपदिष्टम् ॥ १ ॥

चैत्रादि मास में भवन का प्रारम्भ करने वाले को अनुक्रम से महिनों के अनुसार शोक, धान्य, मृत्यु, पशुनाश, द्रव्य वृद्धि विनाश, युद्ध, नौकरी की क्षति, धन, श्री, अग्नि भय और लक्ष्मी की प्राप्ति का फल मिलता है।

श्रावणे धनवृद्धिश्च, सुखं भाद्रपदे तथा।
आश्विने कलहश्चैव, कार्तिके आयुरेव च ॥ २ ॥
मार्गेच धन संप्राप्तिः पौषे च धन संपदा।
माघेचाऽग्निभयं चैव फाल्गुणे न शुभं भवेत् ॥ ३ ॥
(पाठान्तरेतु) जेष्ठे मासे मरणं भाद्रपदे तु धन शून्यम्।
कार्तिके वृत्तिच्छेदः फाल्गुणे विपुल धनवृद्धिः ॥ ४ ॥

(नहारचन्द्र टीप्पण)

कार्तिकादि मास में गृहादि कार्य प्रारम्भ करने से क्रमशः भ्रातृनाश धनाप्ति, काम सम्पदा, अग्निभय, श्री, शोक, धन, पीड़ा, पशुनाश, धनवृद्धि उज्जड और क्लेश होते हैं। उपरोक्त क्रम चैत्रादि मासों से गिनना चाहिये। —शिल्पदीपक १/१३

तिथियें:— १ - २ - ३ - ५ - ७ - १० - ११ - १३ और १५ शुभ है। शिल्पशास्त्रानुसार पूर्वाभिमुख द्वार वाला घर पूर्णिमा से कृष्णपक्ष की अष्टमी तक, उत्तराभिमुख घर कृष्णा ६ से १४ तक पश्चिमाभिमुख घर अमावस्या से शुक्ला अष्टमी तक और दक्षिणाभिमुख घर शुक्ला ६ से १४ तक बनाना प्रारम्भ नहीं करना चाहिये। किन्तु चतुर्मुखी द्वार वाले घर के ये दोष नहीं है। रवि, सोम, बुध, गुरु तथा शुक्रवार श्रेष्ठ है। शुभयोग में मङ्गल भी ग्राह्य है। हेमहंसगणि शनि को भी ग्राह्य मानते हैं।

'कतुः स्थितिर्नो विधुवास्तुनोर्भे, पुरः स्थितेपृष्ठगतेखनिष्यात्।'

चन्द्र नक्षत्र और घर नक्षत्र सन्मुख हो, घर का स्वामी उसमें रह नहीं सकता है। और पीछे हो तो घर में खातर पड़ता रहता है, अतः इस प्रकार उसमें खात नहीं करना चाहिये। यह नियम मात्र गृहस्थ के घर के लिए है।

घर के प्रारम्भ में शुभग्रह वाले या शुभग्रह की दृष्टि वाले, स्थिर या द्विस्वभाव राशि में लग्न और चन्द्र हो तथा दशम स्थान में सौम्यग्रह हो तो श्रेष्ठ है, गुरु केन्द्र में हो, लग्न में स्वग्रही चन्द्र हो, जन्मेश राशीश सूर्य, चन्द्र, गुरु, तथा शुक्र उच्च का हो, स्वग्रही हो, अस्त का न हो, नीच का भी नहीं हो, बलवान हो, स्वगृही, मित्रगृही, उच्च स्थान के हो तो शुभ है। सौम्य ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हो, क्रूरग्रह तीसरे, छठे और आठवें स्थान पर हो तो यह गृह-प्रारम्भ के लिए शुभ है। खात में रवि, मंगल के अतिरिक्त ग्रहों का नवांश श्रेष्ठ है।

भूमि परीक्षा:— जमीन खोदते समय हड्डी आदि निकल जाय तो शल्य कहा जाता है। अतः शल्य की शुद्धि करके गृह का निर्माण करना चाहिये।

अधः पुरुष मात्रात्तु, न शल्यं दोषदं गृहे ।
जलान्तिकं स्थितं शल्यं प्रासादे दोषदं नृणाम् ॥१॥४०॥

घर में पुरुष प्रमाण तक के भाग का शल्य दुष्ट है, किंतु प्रासाद-मन्दिर में तो जल आये वहाँ तक के नीचे भाग में रहा हुआ शल्य मनुष्यों को दुःख देने वाला होता है । अतः घर में पुरुष प्रमाण तथा मन्दिर-प्रासाद में जल तक शोधन करना चाहिये । उदयप्रभसूरि के मत में :— भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक मास हो तो उत्तर दिशा में; मार्गशीर्ष, पौष, माघ में पूर्व में; फाल्गुन, चैत्र, वैशाख हो तो दक्षिण दिशा में; ज्येष्ठ, आषाढ़ या श्रावण हो तो पश्चिम दिशा में खात करना चाहिये । एक हस्तलिखित बंगाली प्रति (पांडुलिपि) में भी इसी प्रकार बताया हुआ है । और इस शुभ कार्य में दुष्ट चर और क्रूर नक्षत्रों का त्याग करना चाहिये । तथा मकर या कुम्भ का चन्द्र हो तो उत्तराषाढ़ा आदि पाँच नक्षत्र (शरणपंचक) का त्याग करना चाहिये ।

(बंगाली हस्तलिखित प्रत B–५–१२)

शल्य—

हड्डी, खोपड़ी, बाल भस्मि, पोलाण, फाट आदि शल्य कहा जाता है ।

(श्राद्ध विधि)

तथा हीनभूमि वाला, ध्वजा की छाया वाला, जिन-मन्दिर के पीछे रहा हुआ, जिन-मन्दिर की छाया या दृष्टि वाला गांव के ईशान कोण में रहा हुआ, अन्याय निर्मित हल के काष्ट वाला, विरुद्ध स्तम्भ वाला, मन्दिर या कूप के काष्ट से निर्मित, दूध झरते दरख्त वाला, किसीका कोण अपने मकान पड़े ऐसा, अधिक द्वार वाला घर हानिकारक है ।

उपर्युक्त दोषों से रहित सुमुहूर्त में बनाया गया प्रासाद मन्दिर मिस्त्री कारीगरों को सन्तुष्ट कर बनाया गया घर शुभ है ।

(आरंभसिद्धिजैनतत्त्वार्थ)

शिल्पग्रन्थ में कहा गया है :—

अग्नि नक्षत्रगे सूर्ये, चन्द्रे वा संस्थिते यदि ।
निर्मितं मंदिरं नूनं, अग्निना दह्यतेऽचिरात् ।।

अग्नि नक्षत्र में सूर्य या चन्द्र हो तो उस समय किया हुआ मन्दिर अग्नि के द्वारा अवश्य ही कम समय में अग्निसात् हो जाता है । खात में सूति पृथ्वी का योग हो तो श्रेष्ठ है।

नवीन गृह के द्वार हेतु प्रमाण :—

ध्वजादिकाः सर्वदिशि ध्वजे मुखं,
कार्यं हरौ पूर्वयमोत्तरे तथा ॥
प्राच्यां वृषे प्राग्यमयोर्गजेऽथवा,
पश्चादुदक्पूर्वयमे द्विजादितः ।। १ ।।

ध्वजादि आठ आय लाने चाहिये, यदि ध्वजाय हो तो सारे दिशा में सिंहाय हो तो पूर्व दक्षिण तथा उत्तर में, वृषाय हो तो पूर्व दिशा में तथा गजाय हो तो पूर्व, दक्षिण दिशा में द्वार रखना चाहिये । अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों जातियों को क्रम से [1]पश्चिम उत्तर पूर्व और दक्षिण वाले द्वार रखने चाहिये । अग्नि, नैऋत्य, वायव्य और ईशान में यदि खात किया हो बो अनुक्रम से पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण में द्वार नहीं रखना चाहिये ।

---

१ मध्ये न स्थापयेत् द्वारं, गर्भेनैव परित्यजेत् ।
किञ्चिन्मात्रे च ईशानं द्वारं स्थापयेद्ध्रुवम् ।।
कुक्षिद्वारं न कर्त्तव्यं, पृष्ठ द्वारं विवर्जयेत् ।
पृष्ठे चैव भवेद्रोगी, कुलक्षयं विनिर्दिशेत् ।।

प्रवेश - नक्षत्र :—

सतभिस पुस्स धरिणट्ठा,
मिगसिरधुवमिउअर्एहि सुहवारे,
ससिगुरुसिए उइए,
गिहे पवेसिज्ज पडिमाओ ॥ ८८ ॥

शतभिषा, पुष्य, धनिष्ठा, मृगशर, ध्रुव और मृदु नक्षत्र में शुभ वार को चन्द्र, गुरु तथा शुक्र का उदय हो तो प्रतिमा का घर में प्रवेश कराना चाहिये ।

नये गांव में अनुकूल राशि तथा कांकणी आदि देख कर शुभ दिन में प्रवेश करना चाहिये । इसके लिए कहा है अपनी जन्मराशि से गांव की राशि पहली, तीसरी, छट्ठी या सातवीं हो तो स्वयं का द्रव्य नष्ट होता है और पद-पद पर पीड़ा होती है । चौथी, आठवीं या बारहवीं राशि हो तो जो द्रव्योपार्जन होगा वह भी खर्च हो जायगा । दूसरी, नवमी, दसवीं या ग्यारहवीं हो तो इष्टफल की प्राप्ति होती है ।

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है :—

प्रवेश के लिए उत्तरायण, माह फागुण, वैशाख, और जेठ महिना श्रेष्ठ है, कार्तिक मार्गशीर्ष मध्यम है । बिम्बप्रवेश विधि में कहा है— माघ मास में गृह चैत्य में बिम्ब प्रवेश करे तो वह अग्नि का भय कराती है । किंतु श्रावण में बिम्ब प्रवेश श्रेष्ठ जानना चाहिये ।

तिथियों में १ - २ - ३ - ७ - ११ शुभ है । नवमी, वृद्धि-तिथि, हानि तिथि, रिक्ता तिथि, दग्धा, क्रूर, अष्टमी, अमावस्या,

आदि वर्ज्य है । वारों में सोम, गुरु और शुक्र शुभ है; बुध, शनि मध्यम; रवि और मङ्गल अशुभ है । शनिवार क्रूर है किन्तु घर के कार्य में वह शुभ है । प्रयाण के वार से नवमा वार भी त्याज्य कहा गया है—जिनप्रतिमा के प्रवेश के शुभ नक्षत्र, रोहिणी मृगशर. पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा (स्वाति) अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराभाद्रपद और रेवती है ।

अन्यत्र :—

ऋते चित्रां ध्रुवे मैत्रे, धनिष्ठापुष्ययोः शुभः ।
प्रवेशः सितेन्दुगुरौ, स्वस्य जिनबिम्बस्यच ॥ १ ॥

चित्रा को छोड़ कर ध्रुव, मैत्र, (मृदु) धनिष्ठा और पुष्य नक्षत्र में तथा शुक्र, सोम और गुरुवार को अपना तथा जिन-बिम्ब का प्रवेश कराना शुभ है ।

दारुण उग्र मिश्र, चर और क्षिप्र नक्षत्र में राजा को प्रवेश करने का निषेध है ।

विशाखासु राज्ञी च तीक्ष्णेषु पुत्रः,
प्रणाशं प्रयात्युग्रभेषु क्षितीशः ।
गृहं दह्यते वह्निना वह्निधिष्ण्ये,
चरैः क्षिप्रधिष्ण्यैश्च भूयोऽपि यात्रा ॥ १ ॥

विशाखा में गृह प्रवेश करने से रानी का नाश हो जाता है, तीक्ष्ण में पुत्र का नाश हो जाता है, उग्र में राजा की मृत्यु हो जाती है, कृतिका में प्रवेश करने से घर जल जाता है और चर तथा क्षिप्र में पुनः यात्रा करनी पड़ती है ।

लल्ल के मत में :—

जिस नक्षत्र में कोई ग्रह नहीं हो वह नक्षत्र प्रवेश में प्रशंसनीय है। किन्तु रवि मंगल और शनि - ग्रह वाला नक्षत्र सर्वथा त्याज्य है।

श्रीउदयप्रभसूरि के मत में :—

विधाय वामतः सूर्यं, पूर्णकुम्भपुरस्सरः।
गृहं यद्दिग्मुखं तद्दिग्-द्वारधिऽष्ण्ये विशेषतः ॥ १ ॥

सूर्य को वाम भाग में रख कर पूर्ण कुम्भ सहित जिस दिशा के मुख वाला घर हो उस दिशा के द्वार वाले घर में प्रवेश करना चाहिये।

भास्कर के मत में :—

नव – परिणिता वधू को रात्रि में तथा विवाह के नक्षत्र में प्रवेश कराना चाहिये।

रत्नमाला के अनुसार :—

स्त्री को सूतिका - घर में अभिजित् तथा श्रवण के मध्य में प्रवेश कराना चाहिये।

लल्ल के मत में :—

स्वनक्षत्रे स्वलग्ने वा, स्वमुहूर्ते स्वके तीथौ।
गृहप्रवेशमाङ्गल्यं, सर्वमेतत्तु कारयेत् ॥ १ ॥

स्वयं के जन्म-नक्षत्र में, स्वयं के लग्न में, स्वयं के मुहूर्त में तथा अपनी तिथि में गृहप्रवेश तथा माङ्गलिक कार्य कराने चाहिये।

प्रवेश में चौथ का घर, गंडांत, अस्थिर, मृत्यु, पंचक, एकार्गल और विष्कम्भ आदि विरुद्ध योग तथा विवाहोक्त (२१) दोषों का त्याग करना चाहिये ।

प्रवेश में गुरु तथा शुक्र का उदय लेना चाहिये । किन्तु जीर्ण तथा जले हुए घर में नव-प्रवेश करना हो तो अस्त आदि का विचार नहीं करना चाहिये । शिल्पदीपक में कहा है—चन्द्रास्त काल भी वर्ज्य है ।

श्रीउदयप्रभसूरि के मत में :—

प्रवेश में जन्म, लग्न, जन्म राशि का लग्न जन्म लग्न से उपचय (३ – ६ – १० – ११) स्थान का लग्न, जन्मराशि से उपचय स्थान का लग्न और स्थिर लग्न शुभ है। वृष तथा कुम्भ विशेष शुभ है । किन्तु चर का प्रवेश में सर्वथा त्याग करना चाहिये । क्यों कि चर लग्न में प्रवास करने से मृत्यु, रोग और धन का नाश होता है । प्रवेश के गृहस्थापन के लिए कहा है—

किंदट्ठमंतिकूरा, असुहा तिइगारहा सुहा सव्वे ।
कूरा बीआ असुहा, सेससमा गिहपवेसे अ ॥ १ ॥

गृह - प्रवेश करने में केन्द्र आठवां तथा अन्त्य स्थान में क्रूर ग्रह अशुभ है और तृतीय और एकादश स्थान में रहे हुए सारे ग्रह शुभ हैं । दूसरे स्थान में रहे हुए क्रूर ग्रह अशुभ है । शेष भुवन में रहे हुए सारे ग्रह मध्यम है ।

ग्रह	अतिउत्तम	उत्तम	मध्यम	अधम
सौम्य	३–११	केन्द्र त्रिकोण	५–९	
क्रूर	३–११	६	२–६–८–१२	१-२-४-७-८-१०-१२

प्रवेश करने वाले को जोगणी वाम हो, राहु दक्षिण में या पीछे हो, शिव दायां (दक्षिण) या पीछे का हो, रवि वाम या दक्षिण का हो, काल दक्षिण का हो और वत्स (जोमणा) दक्षिण का या वाम का हो तो अत्यन्त हितकारक है। चन्द्र पीछे हो तो अशुभ, किन्तु गृहस्थ के घर में सन्मुख का चन्द्र भी अशुभ होता है। त्रिविक्रम के मत में—यात्रा या प्रवेश में शुक्र और बुध संमुख या दक्षिण रहा हो तो अशुभ है।

श्रीउदयप्रभसूरि के मत में—दिन के पूर्व भाग में प्रवेश करना चाहिये।

और भी:—

न लग्नं न ग्रहबलं, न चन्द्रो तारकाबलम्।
विषमास्तु शुभाः पादाः, समाः पादा न तु शुभाः ॥१॥

लग्न, ग्रहबल, चन्द्र या तारा बल नहीं देखना चाहिये, एकी (विषम) पाद शुभ है, तथा सम पाद शुभ नहीं है।

शिल्पग्रंथ में कहा है:—

सृष्टिमार्ग, संहारमार्ग, प्रतिकायिक, हीनबाहु, उत्संग, और पूर्वबाहु आदि प्रवेश के भेद देख कर कुम्भचक्र के नक्षत्र में पूर्ण कुम्भ सहित घर में प्रवेश करना चाहिये। कुम्भचक्र के नक्षत्र इस प्रकार से है:—

(मू० चि० १३-६) सूर्य नक्षत्र से प्रवेश दिवस के चन्द्र नक्षत्र तक गिनना चाहिये, यदि प्रवेश नक्षत्र प्रथम हो तो अग्निदाह होता है। २-३-४ और पांचवां हो तो शून्य घर होता है। ६-७-८ और ९वां हो तो लाभ होता है। १०-११-१२ और १३वां हो धन लाभ होता है। १४-१५-१६ और १७वां

हो तो कलह होता है । १८-१६-२० और २१वाँ हो तो घर के गर्भ का बिनाश होता है । २२-२३-२४-२५-२६ और २७वाँ हो तो स्थिरता होती है । अर्थात् रवि नक्षत्र से पहले के पाँच नक्षत्र अशुभ है । पीछे के आठ अशुभ है, तथा छः शुभ है, कुल चौदह नक्षत्र श्रेष्ठ है ।

कुम्भ में नक्षत्र स्थापना और फल

स्थान	मुख	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	गर्भ	तलवे घर	कंठ
नक्षत्र	१	४	४	४	४	४	३	३
फल	अग्नि दाह	वास शून्य	लाभ	धन लाभ	कलह	गर्भ नाश	स्थिरता	स्थिरता

शुद्धाम्बुरन्ध्रे विजनुभमृत्यौ,
व्यर्कार रिक्ताचरदर्शचैत्रे (शि० ६ ॥ २० ॥)

चौथा और अष्टम स्थान शुद्ध हो, आठवें भुवन में जन्म नक्षत्र न हो तथा रवि, मङ्गल, रिक्ता, चर लग्न, अमावस्या और चैत्र न हो तो कुम्भ स्थापन करना चाहिये ।

पुर्णे तिथौ प्राग्वदने गृहे शुभैः, नन्दादिके य म्यजलोत्तरागमे ।

(शि० ६ ॥ २० ॥)

पूर्वमुखी घर में पूर्णा तिथि हो तथा दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशा में अनुक्रम से नन्दादि तिथियाँ हों और शुभयोग हो तो श्रेष्ठ है ।

नक्षत्रमुख तथा ध्वजारोपण के नक्षत्र—

तिपुव्वमूलभरणी विसाहा,
सेसा महा कित्ति अहोमुहाइं ।
रेवस्सिणी हत्थपुणाणुचित्ता,
जिट्ठा मिगं साइ तिरिच्छगा य ।। ८६ ।।
तिउत्तरद्दा सवणत्तिअं च ।
उड्ढंमुहो रोहिणी पुस्सजुत्ता ।
भूमिहराई गमणागमाई,
धयाधिरोवणाइ कमेण कुज्जा ।। ९० ।।

तीन पूर्वा, मूल, भरणी, विशाखा, अश्लेषा, मघा, और कृत्तिका नक्षत्र अधोमुख है । रेवती, अश्विनी, हस्त, पुनर्वसु अनु-राधा, चित्रा, ज्येष्ठा, मृगसर, और स्वाति नक्षत्र तियक् है । तथा तीन उत्तरा, आर्द्रा, श्रवणत्रिक् रोहिणी और पुष्य नक्षत्र ऊर्ध्वमुख है, इनमें अनुक्रम से भूमिधर आदि गमनगमनादि ध्वजारोपणादि कार्य किये जा सकते हैं ।

षड़ाष्टकादि द्वार :—

छट्ठट्ठमत्तं तह रिक्खजोणी, वग्गट्ठ नाडीगयरिक्खभावं ।
विसोवगा देवगणाइ एवं, सव्वं गणिज्जा पडिमाभिहाणे
।। ९१ ।।

अंजनशलाका और जिन-स्थापना करने वाले पुरुषों को कौनसे जिनेश्वरों की स्थापना करानी चाहिये ? यह देखने के लिए षड़ाष्टकादि देखा जाता है । प्रतिमा का नाम रखते समय प्रतिमा तथा संस्थापक के नाम से षड़ाष्टक, नक्षत्र, योनि, आठ वर्ग नाड़ी

नक्षत्र, लेना-देनी, देवादिक गण, इन छः प्रकार से पूर्ण विचार कर लेना चाहिये। किन्तु गुरु, शिष्य, वर-कन्या माता-पिता-पुत्र आदि में विशेष बल भी देखा जाता है।

वर्णो गणो युजिवश्यं, भयोनिराशिमेलता।
ग्रहमैत्रीनाडिवेधौ, दम्पत्योः प्रीतिरष्टधा ॥ १ ॥

वर्ण, गण, युजि, वश्य, नक्षत्र योनि, राशि मेल, ग्रहमैत्री और नाड़ीवेध, इन आठ रीति से दम्पति की प्रीति होती है।

गर्गाचार्य के मत में :—

राशि-ग्रहमैत्री-गण-योनि-तारै-कनाथता-वश्यम्।
स्त्रीदूर नाडियुति-वर्ग लभ्य-वर्ण-युजयो द्वयेम्यषूह्याः ॥

गुरु-शिष्य, वर-वधू, आदि द्वन्दों में १ राशि, २ ग्रह-मैत्री, ३ गण, ४ योनि, ५ तारा ६ एकनाथता, ७ वश्यता, ८ स्त्री-दूर, ९ नाड़िवेध, १० वर्ग, ११ लभ्यता, १२ वर्ण युजिन का विचार करना चाहिये।

जिनेश्वरों के नाम जन्मनक्षत्र और जन्म-राशि निम्न प्रकार से है :—

१ ऋषभदेव, २ अजितनाथ, ३ सम्भवनाथ, ४ अभिनन्दन, ५ सुमतिनाथ, ६ पद्मप्रभु, ७ सुपार्श्वनाथ, ८ चन्दाप्रभु, ९ सुविधिनाथ १० शीतलनाथ, ११ श्रेयांसनाथ, १२ वासुपूज्यस्वामी, १३ विमलनाथ, १४ अनन्तनाथ, १५ धर्मनाथ, १६ शान्तिनाथ, १७ कुन्थुनाथ, १८ अरनाथ १९ मल्लिनाथ, २० मुनिसुव्रत, २१ नमिनाथ, २२ नेमिनाथ, १३ पार्श्व नाथ, २४ वर्धमानस्वामी।

अनुक्रम से जन्मनक्षत्र :—

१ उत्तराषाढ़ा २ रोहिणी ३ मृगसिर ४ पुनर्वसु ५ मघा ६ चित्रा ७ विशाखा ८ अनुराधा ९ मूल १० पूर्वाषाढ़ा ११ श्रवण १२ शतभिषा १३ उत्तराभाद्रपद १४ रेवती १५ पुष्य १६ अश्विनी १७ कृत्तिका १८ रेवती १९ अश्विनी २० श्रवण २१ अश्विनी २२ चित्रा २३ विशाखा २४ उत्तराफाल्गुनी।

चौवीस जन्म-राशियाँ :—

अनुक्रम से १ धन २ वृषभ ३ मिथुन ४ मिथुन ५ सिंह ६ कन्या ७ तुला ८ वृश्चिक ९ धन १० धन ११ मकर १२ कुम्भ १३ मीन १४ मीन १५ कर्क १६ मेष १७ वृषभ १८ मीन १९ मेष २० मकर २१ मेष २२ कन्या २३ तुला २४ कन्या।

शेष नाम के ऊपर गण योनि, नाड़ो, वर्ग, आदि देख लेना चाहिये। जिनेश्वरों को घातचन्द्र नहीं होता। शेष नाम पर गण योनि, नाड़ो, वर्ण आदि देख लेना चाहिये।

जिन-राशि-चक्र

नाम	लंछन	नक्षत्र	राशि	योनि	वर्ग	नाड़ो	गण
ऋषभदेव	वृषभ	उ.षा.	धन	नकुल	गरुड़	अन्त्य	मनुष्य
अजितनाथ	हाथी	रोहिणी	वृष	सर्प	गरुड़	,,	,,
संभवनाथ	घोड़ा	मृग	मिथुन	सर्प	मेष	मध्य	देव
अभिनंदन	बन्दर	पुन:	मिथुन	मार्जार	गरुड	आद्य	देव

सुमतिनाथ	क्रौंच	मघा	सिंह	मूषक	मेष	अंत्य	राक्षस
पद्मप्रभ	कमल	चित्रा	कन्या	बाघ	मूषक	मध्य	"
सुपार्श्वनाथ	स्वस्तिक	विशा.	तुला	व्याघ्र	मेष	अंत्य	"
चंद्रप्रभ	चंद्र	अनु०	वृश्चि.	हिरण	सिंह	मध्य	देव
सुविधिनाथ	मत्स्य	मूल	धन	श्वान	मेष	आद्य	राक्षस
शीतलनाथ	वत्स	पू०षा०	धन	वानर	मेष	मध्य	मनुष्य
श्रेयांसनाथ	गेंडा	श्रव०	मकर	वन्दर	मेष	अन्त्य	देव
वासुपूज्य	महिष	शत०	कुम्भ	अश्व	मृग	आद्य	राक्षस
विमलनाथ	वराह	उ.भा.	मीन	गाय	मृग	मध्य	मनुष्य
अनंतनाथ	सचाण	रेवती	मीन	हाथी	गरुड़	अंत्य	देव
धर्मनाथ	वज्र	पुष्य	कर्क	अज	सर्प	मध्य	"
शांतिनाथ	हिरण	अश्वि.	मेष	अश्व	मेष	आद्य	"
कुंथुनाथ	अज	कृत्ति०	वृषभ	अज	मार्जार	अंत्य	राक्षस
अरनाथ	नंदावर्त	रेवती	मीन	हाथी	गरुड़	अंत्य	देव
मल्लिनाथ	कलश	अश्वि.	मेष	अश्व	मूषक	आद्य	"
मुनिसुव्रत	कच्छप	श्रवण	मकर	वानर	मूषक	अंत्य	"
नमिनाथ	कमल	अश्वि.	मेष	अश्व	सर्प	आद्य	"
नेमिनाथ	शङ्ख	चित्रा	कन्या	बाघ	सर्प	मध्य	राक्षस
पार्श्वनाथ	सर्प	विशा.	तुला	व्याघ्र	मूषक	अंत्य	"
महावीर स्वामी	सिंह	उ.फा.	कन्या	वृषभ	मृ. उ.	आद्य	मनुष्य

नाम	वर्ण	तारा	हंस	अशुभ राशियां
१ ऋषभदेव	क्ष०	२१	अग्नि	वृ० वृ० म०
२ अजितनाथ	वै०	४	भू०	मे० मी० धन
३ सम्भवनाथ	शू.	५	वात	वृष० कर्क वृ०
४ अभिनन्दन	शू.	७	वात	वृ० क० वृ० धन
५ सुमतिनाथ	क्ष.	१०	अग्नि	वृष कर्क
६ पद्मप्रभ	वै.	१४	भू०	मेष कर्क तुला
७ सुपार्श्वनाथ	शू.	१६	वात	सिंह कन्या तुला वृ० म०
८ चंद्रप्रभ	क्ष.	१७	अग्नि	मे० मि० सिं० कन्या तुला
९ सुविधिनाथ	,,	९	,,	वृश्चिक मकर
१० शीतलनाथ	,,	२०	,,	वृष वृ० म०
११ श्रेयांसनाथ	,,	२०	,,	मि० घ० कु०
१२ वासुपूज्य	शू.	२४	वायु	मकर मीन
१३ विमलनाथ	ब्रा.	२६	जल	मेष तुला कुम्भ
१४ अनंतनाथ	,,	२७	,,	मेष तुला कुम्भ
१५ धर्मनाथ	,,	८	,,	मे० वृष मि० सिं० मीन
१६ शांतिनाथ	क्ष.	२	अग्नि	वृष कन्या मीन
१७ कुंथुनाथ	वै०	३	भू०	मेष मि० धन
१८ अरनाथ	ब्रा.	२७	जल	मेष तुला कुम्भ
१९ मल्लिनाथ	क्ष.	१	अग्नि	वृष तुला मीन

२०	मुनिसुव्रत स्वामी	वैं०	२१	भू०	सिंह धन कुम्भ
२१	नमीनाथ	क्ष०	१	अग्नि	वृष कन्या मीन
२२	नेमिनाथ	वैं०	१४	भू०	मे० सिं० तु० कुम्भ
२३	पार्श्वनाथ	शु०	१६	वात	वृष कन्या वृ०
२४	वर्धमान स्वामी	वैं०	१२	भू०	मेष सिंह तुला

राशिकूट :—

विसमा अट्ठमे पीई, समाउ अट्ठमे रिऊ ।
सत्तु छट्ठट्ठमं नाम–रासीहिं परिवज्जए ।। ६२ ।।
बीयबारसंमि वज्जे नवपंचमगं तहा ।
सेसेसु पीई निद्दिट्ठा जइ दुच्चागहमुत्तमा ।। ६३ ।।

विषम राशि से आठवीं राशि में प्रीति होती है और सम राशि से आठवीं राशि में शत्रुता होती है। अतः नाम राशि से उस षड़ाष्टक का त्याग करना चाहिये। दो-बारहा और नव–पंचमा भी त्याग करना चाहिये। शेष राशियों में प्रीति कही गई है। किन्तु जो परस्पर उत्तम ग्रह हो तो उनमें प्रीति होती है।

जिसका राशिकूट देखना हो तो दोनों की राशियों की गिनती कर परस्पर राशियों का अन्तर निकालना चाहिये। इस अन्तर में जो संख्या आती है उसके ऊपर राशिकूट की पहचान होती है। जैसे किसी का राशिकूट देखना हो उनकी राशि मेष, एक को वृष हो तो दोनों का अन्तर निकालने पर २ और १२ आते हैं। जो 'बियाबारू' के नाम से परिचित है।

इसी प्रकार परस्पर छठी तथा आठवीं राशि में षड़ाष्टक, पाँचवीं तथा नवमी राशि में नव-पंचक राष्ट्रकूट होता है। विषम राशि से छठी राशि में मृत्यु षड़ाष्टक है तथा विषम राशि से आठवीं राशि में प्रीति षड़ाष्टक है।

शत्रुषड़ाष्टक के लिए नारचन्द्र में कहा है:—

मकर सकेसरी मेष युवत्या, तुल [illegible]मीनकुलीर घटाद्याः।
[illegible] मन्मथयोगे, वैरकरं च षडष्टकमेतत् ॥१॥

मकर और सिंह, मेष और कन्या, तुला और मीन, कर्क और कुम्भ, धन और वृषभ, तथा वृश्चिक और मिथुन का योग हो तो वैर करने वाला षड़ाष्टक होता है।

यदि राशिकूट में परस्पर शत्रुषडाष्टक हो तो आठवीं राशि वाले की मृत्यु होती है। क्योंकि शत्रुषड़ाष्टक में समराशि ८वीं राशि का हनन करने वाली है। नारचन्द्र के अनुसार विषमराशि वाले का षड़ाष्टक में हनन होता है। किन्तु प्रीति षड़ाष्टक हो तो सुख बढ़ता है। क्यों कि प्रीतिषड़ाष्टक में विषम राशि आठवीं राशि को सम्पत्ति प्रदान करती है।

इन दोनों षडाष्टकों में शत्रु-षड़ाष्टक का त्याग करना चाहिये। शत्रुषड़ाष्टक की तरह (बीयाबारू) दोबारह और नव-पंचक भी अशुभ है।

नारचन्द्रानुसार :—

शत्रुषडष्टके मृत्युः, कलहो नव पंचमे।
[illegible] दारिद्र्यं, शेषेषु प्रीतिरुत्तम ॥ १ ॥

शत्रु षड़ाष्टक में मृत्यु, नव पंचम में कलह, द्विद्वादश में दारिद्र्य शेष में उत्तम प्रीति होती है। सप्तम-सप्तम दशम, चतुर्थ और एक राशि हो तो श्रेष्ठ है, क्यों कि ये राशियाँ परस्पर प्रेम वाली है।

लल्ल के मत में:—

एक नक्षत्र जातानां, परेषां प्रीतिरुत्तमा।
दम्पत्योस्तु मृतिः पुत्रा, भ्रातरोवाऽर्थ नाशकाः॥

एक नक्षत्र जन्मे हुए प्रत्येक में प्रीति होती है। किन्तु दम्पत्ति की मृत्यु होती है। पुत्र तथा भाई धन की हानि करने वाले होते है। दम्पति में जन्मनक्षत्र एक होने पर भी राशि जुदी जुदी हो तो प्रीति रहती है। किन्तु इसमें भी नाड़ीवेध हो तो अशुभ है।

अशुभ दो-बारा और अशुभ नव पंचक हो तो मैत्री ग्रह देखने पड़ते हैं, अर्थात् इनमें परस्पर राशियों के स्वामी एक हो, मित्र हो या एक मध्यस्थ हो तो राष्ट्रकूट भी शुभ है।

सारंग के अनुसार:—

नाडी, योनि, गण, तारा ये चारों शुभ हो, राशि के स्वामी परस्पर मध्यस्थ हो तो राशीकूट शुभ है।

नारचन्द्र में तो विवाहादि के लिए भो शत्रुषडाष्टक में भी राशीश की मैत्री का फल स्वीकार किया गया है।

"राशेरैकाधिपत्यं चेत्, स्वामिनो मित्रताऽथवा।
तदा षडष्टकेऽपिष्याद्, विवाहः शुभकारकः॥१॥"

यदि दोनों राशियों का स्वामी एक अधिपति हो या दोनों के स्वामो मित्र हो तो षड़ष्टक में विवाह भी हो सकता है। और शुभकारक है श्रीहेमहंसगणि कहते हैं—नक्षयोनि, राशि वैश्य, ग्रहमंत्री राशिकूट तथा नाड़ीवेध उत्तरोत्तर बलवान है तो राशिकूट में भी शुभ नवपंचम, शुभ दोबारा तथा प्रीतिषड़ष्टक उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है।

बृहत् ज्योतिषसार में कहा है :—

वर्णो वश्यं तथा तारा, योनिश्च ग्रहमैत्रकम्।
गणमैत्रं भकुटं च, नाड़ी चैते गुणाधिकाः ॥ १ ॥

१ वर्ष, २ वश्य, ३ तारा, ४ योनि, ५ ग्रह-मैत्री, ६ गणमैत्री, ७ भकूट, और ८ नाड़ी ये उत्तरोत्तर अधिक बलवान है। अनुकूल अंकों का योग कर १८ से अधिक संख्या आवे तो शुभ है।

राष्ट्रकूट-चक्र

	मे०	वृ०	मि.	क०	सि	कन्या	तु०	वृ०	धन	म०	कु०	मी
मेष	१	अ०	शु०	दे०	शु०	श०	०	प्री०	शु०	श्रे०	शु०	श्रे०
वृष	अ०	१	श्रे०	शु०	श्रे०	शु०	प्री०	०	श०	शु०	दे०	शु०
मिथु	शु०	श्रे०	१	ने०	शु०	दे०	शु०	स०	०	प्री०	म०	श्रे०
कर्क	दे०	शु०	ने०	१	श्रे०	शु०	श्रे०	म०	प्री०	०	श०	म०
सिंह	शु०	श्रे०	शु०	श्रे०	१	शु०	शु०	दे०	शु०	श०	०	प्री०
कन्या	श०	शु०	दे०	शु०	शु०	१	श्रे०	शु०	श्रे०	म०	प्री०	०
तुला	०	प्री०	शु०	श्रे०	शु०	श्रे०	१	अ०	शु०	दे०	शु०	श०
वृश्चिक	प्री०	०	श०	म०	दे०	शु०	अ०	१	श्रे०	शु०	श्रे	शु०
धन	शु०	श०	०	प्री०	शु०	श्रे०	शु०	श्रे०	१	अ०	शु०	दे०
मक	श्रे०	शु०	प्री०	०	शु०	म०	दे०	शु०	अ०	१	श्रे	शु०
कुम्भ	शु०	दे०	म०	श०	०	प्री०	शु०	श्रे०	शु०	श्रे०	१	अ०
मीन	श्रे०	शु०	श्रे०	म०	प्री०	०	श०	शु०	दे०	शु०	अ०	१

वर्ण :—

परस्पर साध्य - साधक की राशि, क्षत्रियादि वर्ण, का मेल देखना चाहिये, दम्पति में यदि स्त्री पति से उत्तम वर्ण वाली हो तो पुत्र या पति जीवित नहीं रहते ।

स्त्री दूर :—

कन्या को राशि से समीप की राशि का वर हो तो शुभ है। और वर को राशि से कन्या की राशि समीप हो तो अशुभ है। किन्तु किसी एक के सास या श्वसुर में किसी की मृत्यु हो गई हो तो नवपंचक भी शुभ है।

वश्य :—

दिन में विषम राशि के वश में समराशि है। रात्रि में समराशि के वश में विषम राशि है। द्विपद राशि के वश में चतुष्पद राशि वश में है। वृश्चिक और नवृचर भक्ष्य है सिंह वश्य नहीं है। इस प्रकार वश्य और अ-वश्य राशियों को अवश्य देखना चाहिये। इनमें साध्य की वश्य राशि हो तो शुभ है।

युजी :—

नक्षत्र द्वार में चन्द्र और नक्षत्र का योग कहा गया है। विवाह के दिन पूर्वयोगो नक्षत्र हो तो स्त्री पुरुष पर, पश्चिम योगी हो तो युरुष स्त्रो पर और मध्यम योगी हो तो परस्पर एक दूसरे पर प्रेम रखते हैं।

देवज्ञवल्लभ :—

विवाह के लग्न में जिस जाति के ग्रह बलवान हो वह जाति दूसरे को अधिक प्यारी लगती है

दम्पत्ति के सम्बन्ध में पगड़ो तथा चूनड़ी मंगल देखा जाता है। यदि वर-कन्या की कुण्डलो में १-४-७-८-१२ भुवन में मङ्गल पड़ा हो तो वर को पगड़ो का तथा कन्या को चूनड़ो का मंगल कहा जाता है। पगड़ो का मंगल कन्या का तथा घटड़ी

(चूनड़ी) का मंगल पर का नाश करता है। किन्तु मेष का लग्न में, वृश्चिक का चौथे, कुम्भ का आठवें, मीन का बारहवें मंगल हो या नीच का, अस्त का या शत्रु घर का मंगल हो अथवा लग्न में या सप्तम भुवन में बलवान गुरु शुक्र हो तो इस दोष का नाश होता है। वर को पगड़ी का मङ्गल हो, कन्या को चूनड़ी का शनि हो तो भी मंगल का दोष नहीं लगता। यह सब देख कर वर-कन्या का सम्बन्ध स्थिर करना चाहिये कि एक को अस्त का मङ्गल हो, दूसरे को अस्त का न हो तो मध्यम मेल रहता है।

नक्षत्र-योनि :—

आस-गय-मेस-सप्पा
सप्पा-साण-बिलाड-मेस-मज्जारा।
आखु दुग-गवी-महिसी,
बग्घो महिसी पुणो वग्घो ॥ ९४ ॥
मिग-मिग-कुक्कुर वानर,
नउलदुगं वानरो हरि तुरगो।
हरि-पसु-कुञ्जर एए,
रिक्खाण कमेण जोणीओ ॥ ९५ ॥

अश्विनी आदि नक्षत्रों की योनियाँ अनुक्रम से १ घोड़ा, २ हाथी, ३ मेष, ४ सर्प, ५ सर्प, ६ श्वान, ७ बिलाड़, ८ मेष, ९ बिलाड़, १० मूषक, ११ मूषक, १२ गाय, १३ महिषी, १४ व्याघ्र १५ महिषी, १६ व्याघ्र. १७ मृग, १८ मृग, १९ श्वान, २० वानर, २१ नेवला, २२ नेवला, २३ वानर, २४ सिंह, २५ अश्व, २६ सिंह २७ गाय, २८ हाथी हैं।

योनि वैर :—

गयसिंहमस्समहिसं, कपिमेसं साणहरिणऽहिनकुलं ।
गोवग्घ बिडालुंदर, वेरं नामेसु वज्जिज्जा ॥ ६६ ॥

हाथी और सिंह, अश्व और महिष, वानर और मेष, श्वान तथा हरिण, सर्प और नेवला, गाय-बैल और व्याघ्र, बिलाड़ और मूषक का स्वाभाविक वैर होता है अतः नाम रखने में इनका त्याग करना चाहिये । रत्नमाला भाष्यकार तो कहते हैं यह योनि की कल्पना ही असत्य है ।

अष्ट वर्ग :—

गरुडो बिडालसीहो, कुक्कुरसप्पो अ मूसगो हरिणो ।
मेसो अडवग्गपइ, कमेण पुण पंचमे वेरं ॥ ९७ ॥

गरुड़, बिलाड़, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, और मेष ये क्रम से आठ वर्ग के पति हैं । इनका अपने से पांचवें के साथ वैर होता है ।

अ, क च, ट, त, प, य और श ये आठ वर्ग है । इन वर्गों का स्वयं से पांचवें के साथ वैर होता है । अतः द्वन्द्व के प्रसिद्ध नाम के आदि अक्षरों का नाम में त्याग करना चाहिये । गुरु, धनिक आदि बलवान वर्ग हो तो भी शुभ है

नाड़ीवेध तथा वर्ज्य तारा :—

असिणाइ तिनाडीए, इगनाडिगयं सुहं भवे रिक्खं ।
गुरुसीसाणं तारा, वज्जिज्ज तिपञ्चसत्तत्था ॥ ९८ ॥

अश्विनी आदि की तीन नाड़ी करनी चाहिये, उसमें गुरु और शिष्य को एक नाड़ी में रहा हुआ ग्रह शुभ है। तथा तीसरी पांचवीं तथा सातवीं तारा वर्ज्य है।

हर्षप्रकाश में कहा गया है :—

नाडीवेध, पुत्र, मित्र, सेवक, शिष्य, घर, नगर और देश के लिए श्रेष्ठ है। कन्या के लिए शुभ नहीं है।

नारचन्द्रानुसार :—

प्रभुः पण्यांगना मित्रं देशो ग्रामः पुरं गृहम् ।
एकनाडीगता भव्या, अभव्या वेधवर्जिताः ।। १ ।।

एक नाड़ी में रहा हुआ स्वामी, वेश्या, मित्र, देश, ग्राम, पुर और घर श्रेष्ठ है। और ये हरएक नाड़ीवेध बिना यदि हो तो अशुभ है।

नरपति जयचर्याचार्य ने तो देवता, गुरु और मन्त्र में भी नाड़ीवेध का फल अनुक्रम से द्वेष, रोग और मृत्यु को दर्शाने वाला बतलाया है। वर-कन्या नक्षत्र में नाड़ीवेध वर्जित ही है। तथा समीप एवं दूर के भी नाड़ीवेध, दम्पति, पिता, कन्या, वर अथवा माता को मृत्युकारक होते हैं। किन्तु किसी भी प्रकार त्याज्य करने की स्थिति में न हो सके तो पादवेध का त्याग तो अवश्य ही करना चाहिये।

हर्षप्रकाश में भी कहा है :—

गुरु शिष्य को नाड़ीवेध हो तो विरुद्ध-योनि का भी दोष नहीं है। किन्तु ऐसा नहीं हो तो विरुद्धयोनि का त्याग करना चाहिये।

गुरु और शिष्य के जन्म नक्षत्र से तीसरी, पाँचवी और सातवीं तारा हो तो अशुभ है।

विशोपक लेन-देन का विचार—

सिद्धसाहग धुरक्खर वग्गं—
के कमुक्कमेण अट्ठविभत्ते।
सेस अद्धकय लब्भविसो अ,
पच्छिमाउ खलु अग्गगएणं ॥ ६६ ॥

अ, क, च, ट, त, प य और श ये आठ वर्ग है। इनकी लेना-देनी देखनी हो तो उसके प्रसिद्ध नाम में जो आदि अक्षर हो उसके वर्ग की संख्या को क्रम से जोड़ में (समीप-समीप) रखनी चाहिये। फिर उसमें आठ का भाग देना चाहिये और उसमें से शेष को आधा करना चाहिये, इस रीति से जो संख्या आवे उतना वसा पहले अङ्क वाले में दूसरे वर्ग वाला माँगता है।

जैसे कर्मचन्द और ऋषभदेव की लेना-देनी देखना है तो इनके नाम का आदि अक्षर 'क' और 'ऋ' वर्ग क और वर्ग अ के है, वर्गाङ्क २ और १ है। इनके समीप समीप रखने पर २१ की संख्या हुई, आठ से भाग देने पर शेष में ५, और उन ५ का आधा करने पर २॥ रहते हैं। तो अ वर्ग वाला क वर्ग में २॥ मांगता है, पुनः २१ को उलटने पर १२ होते हैं उनमें आठ का भाग देने पर शेष में ४ रहते हैं। उनके आधे करने पर २ वसा रहते हैं; अर्थात् क वर्ग अ वर्ग के पास २ वसा माँगता है। यहाँ २॥ में से २ बाद करने पर ०॥ शेष रहता है।

देणदार	लेणदार							
वर्ग	अ १	क २	च ३	ट ४	त ५	प ६	य ७	श ८
" अ – १ " त – ५	१॥	२	२॥	३	३॥	०	०॥	१
" क – २ " प – ६	२॥	३	३॥	०	०॥	१	१॥	२
" च – ३ " य – ७	३॥	०	०॥	१	१॥	२	२॥	३
" ट – ४ " श – ८	०॥	१	१॥	२	२॥	३	३॥	०

गणों के विषम में विवेचन :—

देवस्सिरणी पुण पुस्सा,
करसाइमिगाणुसवणरेवइआ ।
मणुअ तिपुव्वतिउत्तर,
रोहिणी भरणी अ अद्दा य ॥ १०० ॥
कित्तिअ बिसाह चित्ता,
धणिजिट्ठाऽसेसतिन्नि वुग रक्खा ।
सगणे पोई नरसुर,
मज्झा सेसा पुणो असुहा ॥ १०१ ॥

अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, स्वाति, मृगसर, अनुराधा, श्रवण, और रेवती नक्षत्रों का देवगण है। तीन पूर्वा, तीन उत्तरा, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा नक्षत्रों का मनुष्यगण है। कृत्तिका विशाखा, चित्रा, धनिष्ठा, द्विक (ध० श०) ज्येष्ठा द्विक् (ज्ये० मू०) और अश्लेषा द्विक् (अ० म०) नक्षत्रों का राक्षस-गण है। इनमें साध्य साधक के नक्षत्रों का एक ही गण हो तो प्रीति रहती है। मनुष्य-गण तथा देवगण में मध्यम प्रीति रहती है। और शेष गणों में अशुभ। अर्थात् देव तथा राक्षस या मनुष्य और राक्षस गण में अशुभ है। उदयप्रभसूरि के मत में देवगण के साथ राक्षस गण का वैर और मनुष्यगण हो तो दोनों में से एक की मृत्यु होती है।

किंतु यदि शुभराशिकूट, ग्रहमैत्री, श्रेष्ठ योनि और गौण रूप में मनुष्यगण हो तो मुख्य का राक्षस-गण भी श्रेष्ठ है।

गणचक्र

	साधक देव अ. मृ. पु. पु. ह. स्वा. अ. श्र. रे.	साधक मनुष्य भ. रो० आ. पूर्वा. उत्तरा.	साधक राक्षस कृ. श्ले. म. चि. वि. ज्ये. मू. ध. श.
साध्य देव	अति प्रीति	मध्यम प्रीति	वैर
साध्य मनुष्य	मध्यम प्रीति	अति प्रीति	मृत्यु
साध्य राक्षस	वैर	मृत्यु (शुभ)	अति प्रीति

कार्य द्वार :—

सामान्य रीति से हरएक कार्य में शुभ मास शुभ पक्ष तिथि, करण, नक्षत्र और देखना चाहिये। फिर भी नक्षत्र हरएक कार्य में देखना पड़ता है। अतः कार्य द्वार में विशेषकर नक्षत्र-शुद्धि ही दिखाई गई है।

यहाँ प्रथम विद्यारम्भ का वार तथा नक्षत्र कहते है:—

गुरु बुहो अ सुक्को अ,
सुन्दरा मज्झिमो रवी।
विज्जारंभे ससी पावो,
सणी भोमा य दारुणा ॥ १०२ ॥

मिगसिर - अद्दा - पुस्सो,
तिन्नि उ पुव्वा उ मूलमस्सेसा।
हत्थो चित्ताइ तहा दस,
वुड्ढिकराइं नाणस्स ॥ १०३ ॥

विद्यारम्भ के लिए गुरु तथा बुध एवं शुक्र सुन्दर है। रवि मध्यम है, सोम दुष्ट है, शनि और मङ्गलवार दारुण है। मृगशर, आर्द्रा, पुष्य, तीन पूर्वा, मूल, अश्लेषा, हस्त और चित्रा ये दस नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले हैं।

नारचन्द्रानुसार :—

विद्यारम्भे गुरुः श्रेष्ठो, मध्यमौ भृगु भास्करौ।
मरणं मन्दभौमाभ्यां, नो विद्या बुधसोमयोः ॥ १ ॥

विद्यारम्भ में गुरु श्रेष्ठ है, शुक्र और रवि मध्यम है, शनि और मङ्गल से तो मृत्यु की सम्भावना होती है। बुध और सोम वार को विद्या चढ़ती ही नहीं है।

वृहत्-ज्योतिष सार :—

"विद्यारम्भः सुरगुरुसितज्ञ श्वमिष्टार्थदायी।"

गुरु, शुक्र और बुध को किया हुआ विद्यारम्भ अभिष्ट देने वाला होता है।

श्री उदयप्रभसूरि के मत में :—

अनुक्रम से सातों वार विद्यारम्भ में :— आयुष्य, जड़ता, मृत्यु, लक्ष्मी, बुद्धि, सिद्धि और मृत्यु देने वाले हैं।

नक्षत्रों के विषय में सूरिजी का मत है :—

मृगशिर, आर्द्रा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, मूल, अश्लेषा, हस्त और चित्रा ये दस नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले हैं।

स्थानांगसूत्र में भी ज्ञान पढ़ाने के लिए इन्हीं नक्षत्रों को श्रेष्ठ कहा गया है।

नारचन्द्र में :—

विद्यारम्भोऽश्विनी मूल – पूर्वासु मृगपञ्चके।
हस्ते शतभिषक्स्वाति – चित्रासु श्रवणद्वये॥ १॥

अश्विनी, मृगशर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, मूल, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और

पूर्वाभाद्रपद ये सोलह नक्षत्र शुभ है । मुहूर्त-चिन्तामणि में आर्द्रा-नक्षत्र के अतिरिक्त पन्द्रह नक्षत्र है । मतान्तर से ध्रुव, मैत्र और रेवती नक्षत्र शुभ कहे हुए है ।

ज्ञान - प्राप्ति के लिए :—

दोनों पक्षों की २ - ३ - ५ - ६ - १० - ११ और १२ तिथियाँ शुभ हैं ।

वर्ज्य तिथियों के लिए नारचन्द्र में कहा है :—

पूर्णिमायाममावास्याम् अष्टम्यां च चतुर्दशी ?
सप्तम्यां च त्रयोदश्यां, विद्यारम्भे गलग्रहः ।। १ ।।

पूनम, अमावस्या, अष्टमी, चौदस, सप्तमी, और तेरस इन दिनों में यदि विद्यारम्भ करें तो गला अटक जाता है ।

मुहूर्त – चिन्तामणिकार :—

बालक पाँच वर्ष का हो तो उत्तरायण में २ - ३ - ५ - ६ १० - ११ और १२ तिथि के दिन सोम, बुध, गुरु और शुक्रवार को अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति. अनुराधा. श्रवण और रेवती नक्षत्र में तथा स्थिर लग्न में लिपि का प्रारंभ करना चाहिये ।

शतद्वयेऽनुराधाऽऽर्द्रा – रोहिणी - रेवती - करे ।
पुष्य – जीवे बुधे कुर्यात्, प्रारम्भं गणितादिषु ।।१।।

शतभिषा. पूर्वाभाद्रपद, अनुराधा, आर्द्रा, रोहिणी, रेवती, हस्त और पुष्य नक्षत्र में गुरु, और बुधवार को गणित आदि प्रारम्भ करना चाहिये ।

रोहिण्यां पञ्चके हस्ते, पुनर्भे मृगभेऽश्विने ।
पुष्ये शुक्रेज्यबिद्वारे, शब्दशास्त्रं पठेत् सुधीः ।। १ ।।

बुद्धिशाली व्यक्तियों को रोहिणी, पंचक, हस्त, पुनर्वसु, मृगशर, अश्विनी और पुष्य नक्षत्र में गुरु, शुक्र या बुधवार को व्याकरण पढ़ना चाहिये ।

मृदु, ध्रुव, क्षिप्र, और चर नक्षत्र में गुरु या बुध वाला नक्षत्र, तथा सौम्य ग्रह वाला दशम स्थान हो तब शिल्प तथा विद्या का प्रारम्भ करना चाहिये ।

नृत्यारम्भ पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, अनुराधा, ज्येष्ठा. उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा. शतभिषा, उत्तराभाद्रपद, और रेवती नक्षत्र तथा अनुकूल चन्द्र हो तो शुभ है ।

हेमहंसगणिजी के मत में :—

लग्न में बुध हो, गुरु की दृष्टि में बुध की राशि में चंद्र हो, चतुर्थ में सौम्य ग्रह हो, तो नृत्य और काव्य का प्रारम्भ करना चाहिये ।

शुभ ग्रह उदय में हो, पापग्रह उदय के न हो और बुध की राशि में चन्द्र हो तो मन्त्रादि करने चाहिये।

श्रवणत्रये मघा पूर्वा - ऽनुराधा-रेवतीत्रये ।
पुनर्भे स्वातिभे सूर्ये, शुक्रे जैनागमं पठेत् ।। १ ।।

श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, अनुराधा, रेवती, अश्विनी, भरणी, पुनर्वसु और स्वाति नक्षत्र में तथा शुक्र एवं रविवार को जैनागम पढ़ना चाहिये।

लोचनक्षत्र :—

पुणव्वसु अ पुस्सो अ, सवणो अ धणिट्ठिया।
एएहिं चउहिं रिक्खेहिं, लाअकम्मणि कारए ॥१०४॥
कित्तिआहिं विसाहाहिं, महाहिं भरणीहि अ।
एएहिं चउहिं रिक्खेहिं, लाअकम्मणिवज्जए ॥१०५॥

पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, और धनिष्ठा इन नक्षत्रों में लोच कर्म करना चाहिये। कृत्तिका, विशाखा, मघा और भरणी इन ४ नक्षत्रों में लोच-कर्म का त्याग करना चाहिये। नये बालक या नव-दीक्षित शिष्य के क्षौर या लोच कराना हो तो इन नक्षत्रों का ध्यान करना चाहिये।

गणि-विद्या-प्रकीर्ण में कहा है :—

प्रथम लोच या क्षौर में २-३-५-७-१०-११-१२-१३ तिथि सोमवार, बुध, गुरु और शुक्रवार, अश्विनी और मृगशर, पुनर्वसु पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और रेवती नक्षत्र, शुभ तारा हो तो शुभ है। क्षौर में रिक्ता तथा अमावस वर्जित है। तारा शुद्ध हो उस दिन क्षौर करना चाहिये।

मुहूर्त-चिन्तामणि में भी कहा गया है :—

कर्क, कन्या धन और कुम्भ का सूर्य हो तब जन्म-मास में जन्म-नक्षत्र मे, देवपूजा के दिन तथा अभिषेक के दिन भी क्षौर-कर्म वर्जित है।

वृहत् ज्योतिषसार में कहा है :—

रविवार को क्षौर कराने से एक मास आयुष्य घट जाती है, सोमवार को कराने से सात मास बढ़ जाती है, मंगलवार को आठ मास घट जाती है, बुधवार को पाँच मास बढ़ जाती है। गुरुवार को दस मास बढ़ जाती है, शुक्रवार को ग्यारह मास बढ़ जाती है और शनीवार को सात मास मास घट जाती है। किन्तु राजा की आज्ञा में, मृत्यु के सूतक में, कैद से छूटने पर, यज्ञ में, स्त्री के कार्य में, तीर्थ में और व्रतादि में क्षौर कराना हो तो उपरोक्त शुद्धियाँ देखने की आवश्यकता नहीं है।

राजा के क्षौर के लिए श्रीउदयप्रभसूरि कहते हैं:—

राजा को पाँचवें-पाँचवें दिन, शुभ तारा में, तथा शुभ काल होरा में, श्मश्रुकर्म कराना चाहिये। तथा नक्ष-क्षौर के लिए क्षौर के नक्षत्र, रवि के अतिरिक्त और प्रत्येक को शुभ है।

अब कर्णवेध और राजा के दर्शनों का नक्षत्र कहा जाता है:—

मिग-अणु-पुण पुस्सा जिट्ठ-रेव-ऽस्सिणीआ।
सवण-कर-सचित्ता सोहणा कण्णवेहे।
कर-सवण-ऽणुराहा रेव-पुस्स-ऽस्सिणीआ,
मिग-धणि-धुव-चित्ता दंसणे भूवईणं॥ १०६॥

कर्णवेध में मृगशिर, अनुराधा, पुनर्वसु, पुष्य, ज्येष्ठा, रेवती, अश्विनी, श्रवण, हस्त और चित्रा नक्षत्र शुभ हैं। तथा राजा के दर्शन में हस्त, श्रवण, अनुराधा, रेवती, पुष्य, अश्विनी, मृगशिर, धनिष्ठा, ध्रुव और चित्रा नक्षत्र श्रेष्ठ हैं। बालक या मुनिराज को कर्णवेध कराना हो तो उपरोक्त नक्षत्र है।

उदयप्रभसूरिः—कर्णवेध में धनिष्ठा तथा तीन उत्तरा तथा मुहूर्त चिन्तामणि में रोहिणी, मूल, शतभिषा, स्वाति तथा तीन उत्तरा नक्षत्रों को भी स्वीकार किया है । यहाँ नक्षत्रों की सिद्धि अत्यन्तावश्यक मानी गई है ।

आरम्भसिद्धि के अनुसार :—

सौम्यग्रह तीसरे या ग्यारहवें भुवन में हो और सौम्यग्रह की दृष्टि क्रूरग्रह से रहित शुभलग्न स्थान में जाती हो तो कर्णवेध शुभ है।

सूरिजी के अनुसार :—

नृप - दर्शन में अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, तीन उत्तरा, और रेवती नक्षत्र शुभ है ।

वस्त्र - धारण के वार :—

सूरे जिण्णं ससी अद्दं, मलिणं सणिधारिअं ।
भोमे दुक्खावहं होइ, वत्थं सेसेहि सोहणं ॥ १०७ ॥

रविवार को धारण किया हुआ वस्त्र शीघ्र ही जीर्ण हो जाता है, सोमवार को आर्द्र होता है । शनिवार को धारण किया वस्त्र मलिन रहता है । मङ्गलवार को दुखदायक है तथा शेष वारों में धारण किया हुआ वस्त्र श्रेष्ठ है ।

बृहज्जोतिष सार के अनुसार :—

शुक्रवार को पहिना हुआ वस्त्र प्रिय सङ्गम के लिए होता है । विविध रङ्गों के लिए आचार्यों का मत है कि मंगल आदि

छः वारों में क्रम से लाल, हरा, श्वेत, श्वेत, श्याम और पीला वस्त्र पहनना शुभ है। तथा बुध, गुरु और शुक्रवार को हरएक रंग के नये वस्त्र पहिने जा सकते हैं। नई कम्बल धारण करने में रवि भी श्रेष्ठ है। नये वस्त्रों के लिए दग्धा तिथि अशुभ है। तथा १-२-३-१३-१५ अति शुभ हैं।

श्री उदयप्रभसूरि के मत में :—

अश्विनी आदि नक्षत्रों में वस्त्र धारण करें तो अनुक्रम से १ नष्ट वस्तु की प्राप्ति, २ मृत्यु, ३ अग्नि-दाह, ४ अर्थसिद्धि, ५ मूषक भय, ६ मृत्यु, ७ धन प्राप्ति, ८ धन प्राप्ति, ९ शोक, १० मृत्यु, ११ राज भय, १२ संपत्ति १३ कार्य-सिद्धि, १४ विद्या प्राप्ति, १५ मिष्टान्न, १६ प्रीति, १७ मित्र-प्राप्ति, १८ वस्त्र-हरण, १९ जल में नाश, २० रोग, २१ अति मिष्ट भोजन, २२ नेत्र-व्याधि, २३ धान्य प्राप्ति, २४ विष-भय, २५ जलभय, २६ धन-प्राप्ति, २७ रत्न-प्राप्ति इस प्रमाण से फल प्राप्ति होती है।

सौभाग्यवती स्त्रियों के लिए अलङ्कार तथा लाल वस्त्रों के के लिए मङ्गल, बुध और शुक्रवार तथा अश्विनी, हस्त, चित्रा. स्वाति, विशाखा, अनुराधा, धनिष्ठा और रेवती नक्षत्र ही शुभ है।

बृहत्कल्पसूत्र की वृत्ति में कहा है :—

गच्छ के योग्य वस्त्र की एषणा के लिए निकले हुए साधु को यदि प्रथम फटा हुआ, जला हुआ, मिट्टी आदि से धूसरित हो तो उसके तीन आड़े तथा तीन खड़े भाग करना चाहिये जिससे उसके नौ भाग हो जाय। उनमें अनुक्रम से १ देव २ असुर ३ देव ४ मनुष्य ५ राक्षस ६ मनुष्य ७ देव ८ असुर ९ देव

की स्थापना करनी चाहिये उसका फल इस प्रकार है :—

देवेसु उत्तमो लाभो, माणुसेसु अ मज्झिमो ।
असुरेसुअ अ गेलन्नं, मरणं जाण रक्खसे ।। १ ।।

यदि वह जला हुआ या फटा हुआ वस्त्र का भाग देव के अंश में हो तो उसके मालिक को उत्तम लाभ मिलता है। मनुष्य के अंश में मध्यम लाभ मिलता है, असुर के अंश में रोग होता है और राक्षस के अंश में मृत्यु होती है । "लल्ल" का भी यही मत है ।

उदयप्रभसूरि के मत में—इसके अतिरिक्त वस्त्र किनारे से जल जाय तो अशुभ गिनना चाहिये ।

छोटे बालकों को वस्त्र धारण करवाने के लिए यदि प्रथम वस्त्र पहनाना हो तो १ – २ - ३ – ५ - ७ - ११ – १३ तिथियाँ, सोम बुध, गुरु, शनी, अश्विनी, रोहिणी, हस्त, अश्लेषा, विशाखा, तीन उत्तरा और रेवती श्रेष्ठ है ।

प्रथम नव पात्र का उपयोग लेने के लिए :—

मिग-पुस्स-ऽस्सिरणी हत्था–ऽणुराहा चित्त-रेवई ।
सोमो गुरु अ दो वारा, पत्तवावरणे सुहा ।। १०८ ।।

मृगशर, पुष्य, अश्विनी, हस्त, अनुराधा, चित्रा, तथा रेवती नक्षत्र, तथा सोम एवं गुरु दो ये वार पात्र का प्रयोग करने के लिए श्रेष्ठ हैं । कहीं बुध, स्वाति और श्रवण नक्षत्र भी श्रेष्ठ कहे गये हैं ।

वस्तु - नष्ट प्राप्ति के नक्षत्र :—

जामाइमुहा चउ चउ,
असिणाई काण चिपड सज्जंधा ।
दुसु वत्त जाइ सज्जे,
अंधे लब्भइ गयं वत्थु ॥ १०९ ॥

चोरी में गई वस्तु को देखने की रीति :— अश्विनी, भरणी, आदि चार - चार नक्षत्रों को अनुक्रम से काणी, चीबड़ा (वक्रदृष्टि) देखता और अन्ध ये संज्ञाएं दी गई है । अर्थात् एक - एक संज्ञा में सात सात नक्षत्र गिने गये हैं, इन्हें दक्षिणादि मुख वाला करना चाहिये। अथवा काण, वक्रदृष्टि, देखते और अन्धे नक्षत्रों में गई हुई वस्तु को अनुक्रम से दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व दिशा में वस्तु गई है ऐसा समझना चाहिये । काणे नक्षत्र में गई वस्तु प्रयत्न करने पर मिलेगी । वक्रदृष्टि में गई वस्तु मिलने की आशा रहती है, वस्तु की सूचना मिल जाती है। दिखते नक्षत्र में गई वस्तु मिलती ही नहीं, और अन्धे नक्षत्र में गई वस्तु भी नहीं मिलती।

'बृहत्ज्योतिष सार' में लिखा है :—

अन्धे, काणे और चिल्ल नक्षत्र में गई वस्तु अनुक्रम से शीघ्रता से, तीन दिन में और चोंसठ दिन में मिलती है ।

नष्ट प्राप्ति का अन्य प्रमाण :—

रविरिक्खा छब्बाला, बारस तरुणा नव परे थेरा ।
थेरे न जाइ तरुणे - हिं जाइ बाले भमइ पासे ॥११०॥

रवि नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गिनना चाहिये इनमें पहले के छः नक्षत्र बाल नक्षत्र है। इसमें चोरी गई वस्तु पास की भूमि

में है, स्थान पर नहीं है और बहुत दूर भी नहीं गई है। बाद के बारह नक्षत्र युवा हैं, इनमें चोरी गई वस्तु चली ही जाती है और आने की सम्भावना नहीं है तथा आखिरी नौ नक्षत्र वृद्ध हैं, वृद्ध नक्षत्र में गई चीज वापस आ जाती है।

श्रीनारचन्द्रसूरि संवृत्ति प्रश्नशतक के अनुसार—

तात्कालिक लग्न कुण्डली या प्रश्न कुण्डली को देखना चाहिये, लग्नेश से वस्तु के स्वामी का, धनपति के ऊपर, चोरी गई चीज की आकृति का, धातु आदि का, धनेश के साथ के ग्रहों से ग्रहों की संख्या का, अष्टमेश वाले भुवन पर चोर का नाम, लग्न तथा लग्नेश ऊपर दिशा का ज्ञान होता है। ये चारों ग्रह पूर्वार्ध कुण्डली में हो तो वस्तु गाँव में है तथा उत्तरार्ध में हो तो वस्तु गाँव के बाहर है तथा उन चारों में जो बलवान हो उस पर देश, स्थान, घर या गाँव के अन्दर या बाहर है। यह समझना चाहिये।

स्थिर लग्न हो, धनेश पुष्ट हो, अष्मेश निर्बल हो तो वस्तु कहीं भूल से रखी गई है। किन्तु चर लग्न हो अन्य भी विपरीत हो तो चीज घर में नहीं है। फिर अष्टमेश लग्न में हो, लग्न केन्द्र और लग्नेश शुभ ग्रह वाला हो, लग्नेश लग्न या केन्द्र हो, शुभ ग्रह आठवें या बारहवें नहीं हो तो अवश्य चीज पुनः प्राप्त होती है। लग्नेश और केन्द्र क्रूर ग्रह वाले हों या अष्टमेश सौम्य ग्रह के साथ हो तथा सौम्य ग्रह के साथ केन्द्र ग्रह में पड़ा हो या मृत्यु और व्यय के अतिरिक्त भुवनों में क्रूर ग्रह पड़े हों तो वस्तु जाती है। किन्तु अष्टमेश सातवें भुवन में हो तो चोर की मृत्यु होगई है ऐसा जानना चाहिये।

चोर प्रश्न में बारह भुवन के चोर अनुक्रम से— गृहपति, भंडारी, भाई, माता, पुत्र, शत्रु, स्त्री, चोर, पूज्य, राजा, नौकर और रसोइया है।

नक्षत्र	नेत्र	दिशा	वस्तु प्राप्ति वर्ष + दिन	वार योगे रोग. पीड़ा दिन	रोग पाद१	पाद२	पाद३
अ०	का०	द०	मिलती है	सो० शु० २१	१०	७७	३२
भ०	चि०	प०	३ दिन में मिलती	र०बु०श०मृ०	६	०	०
कृ०	दे०	उ०	धीरे-धीरे	गुरु २८	५०	१०	०
रो०	आ०	पू०	तुरन्त	श० ७	६	१३	१०
मृ०	का०	द०	कम	क्रूर मृत्युज	७	१३	१०
आ०	चि०	प०	खोजने से	मं० शु० मृत्युज	१५	१२	४६
पू०	दे०	उ०	नहीं	सो० शु० मृत्युज	४५	७	२५
पु०	आ०	पू०	मिले	र०बु०श० २५		१२	२१
अ०	का०	द०	नहीं	सो० शु० १६	६	०	४५
म०	ची०	प०	मिले	र०बु०श० १३+मृ.	७	२०	०
पु०	दे०	उ०	नहीं ही	सो० गु० ११	१३	७	०
उ०	आ०	पू०	तु +२५	सो० शु० २५	१४	७	८
ह०	का०	द०	व-३+६०+३	र० बु० श० १०	८	४	५
चि०	चि०	प०	३०+व-१	सो० गु० १७	३	६	१०
स्वा.	दे०	उ०	४+न	र० बु० श० १०	१०	१२	०
वि०	आ०	पू०	१	र० श० १५	४८	१२	२५
अ०	का०	द०	३+१०+१५	बु० १७	७	१५	०
ज्ये०	चि०	प०	व-१+३०+३	गु० ३२+मृ०	४५	१६	०
मू०	दे०	उ०	कदापि नहीं	र० शो० श०(७)	१५	०	०

पू०	आ.	पू०	शीघ्र	सो० बु० ५+१०	६०	१६	०
उ०	का.	द०	१५+२५	गु० २०	१५	१२	२०
अ०	चि.	प०	नहीं	र० बु० २०	×	×	×
अ०	दे०	उ०	नहीं	र० मं० मृत्यु	७	२०	१६
ध०	ओ०	पू०	न+मिले	र० मं० (१५)	२७	२०	६
श०	का.	द०	२८	शु० गु० ८	८	१८	१६
पू०	चि.	प०	तुरन्त	र० मं० १०	६	०	१२
उ०	दे०	उ०	नहीं	सो० बु० २५	१०	२०	२०
रे०	ओ.	पू०	१८	गु०शु०१५+(१५)	८	६३	०

चोरी और रोग ज्ञान चक्र समाप्त

रोग शांति दिन

	प्रहर १	प्रहर २	प्रहर ३	प्रहर ४	शांत
अ०	५	०	६	१३	६
भ०	७	२०	६	१४	११
कृ०	१५	१८	२२	२७	६
रोहि	१७	३	२१	०	७
मृ०	२२	६	३	१६	३०
आ०	११	१३	०	२३	मृ०

पू०	१७	१५	३	७	७
पु०	२३	११	१०	११	७
अ०	९	९	२५	१८	मृ
म०	२६	३	१७	२०	२०
पु०	२०	२७	१५	२१	मृ
उ०	०	१०	०	१९	७
ह०	२३	१५	७	०	१५
चि०	११	१३	२५	१६	११
स्वा.	२७	२०	१७	२२	मृ
वि.	२३	१९	२३	२३	१५
अश्ले	२५	२१	२८	१३	+
ज्ये०	१७	१४	०	३३	मृ
मू.	०	२३	९	१५	९
पू०	१५	३५	१८	१६	मृ
उ०	१५	१७	११	०	३०
अ०	+	+	+	+	+
श्र०	१४	३७	१३	१४	११
ध०	१९	०	२३	२०	१५
श०	२४	०	३	२४	११
पु०	३१	१५	१८	३१	मृ
उ०	२७	१२	२३	११	७
रे०	१५	१९	०	२०	+

सर्पदंश विष के लिए कहा है :—

विसाहा कित्तिश्रा--ऽस्सेसा,
मूलऽद्दा भरणी महा ।
एयाहिं श्रहिणा दट्ठो,
कट्ठेणावि न जीवइ ॥ १११ ॥

विशाखा, कृत्तिका, अश्लेषा, मूल, आर्द्रा, भरणी और मघा में जिसको साँप ने काटा हो, वह कष्ट से भी अर्थात् किसी भी उपाय से जीवित नहीं रहता । विवेकविलास में तो अश्विनी, रोहिणी, तीन पूर्वा ५-६-८-९-१४ और ०)) तिथियाँ, रवि, मङ्गल और शनिवार प्रातः सायं की संध्या तथा संक्रांतिकाल में सर्पदंश हुआ हो तो मृत्युयोग होता है ।

रोग - शान्ति के नक्षत्र:—

पुण - पुस्स - उफा - उभ - रो—
हिणीहिं रोगोवसम सत्त दिणे ।
मूल - स्सिणि-कित्ति नवमें,
सवण–भरणि–चित्त-सयभिसेगदसे ॥११२॥
धणि - कर - विसाहिं पक्खे,
मह वीसइमे उषा - मिगे मासे ।
अणुराह - रेवइ चिरं,
तिपुव्व-जिट्ठ–ऽद्द–ऽसेस–साइ मिइ ॥११३॥

पुनर्वसु पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी में व्याधि हुई हो तो सात दिन में, मूल अश्विनी, कृत्तिका में व्याधि

हुई हो तो नौ दिन में श्रवण, भरणी चित्रा और शतभिषा में व्याधि हुई हो तो ग्यारह दिन में, धनिष्ठा हस्त और विशाखा में व्याधि हुई हो तो पन्द्रह दिन में, मघा में बीस दिन में. उत्तराषाढा और मृगशर में व्याधि हुई हो तो एक मास में तथा अनुराधा और रेवती में रोग हुआ हो तो चिरकाल में उसकी शान्ति होती है। किंतु तीन पूर्वा (पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद) ज्येष्ठा आर्द्रा, अश्लेषा या स्वाति में व्याधि हुई हो तो उसकी मृत्यु ही हो जाती है।

चरलहु मिउ मूले रोगनिन्नास हेउ,
हवइ खलु पउत्तं ओसहं वाहिआणं।
भिगु-ससि-पुण-जिट्ठा-ऽस्सेस-साइ महाहिं,
न य कहवि विहेयं रोगमुत्ते सिणाणं ॥ ११४ ॥

चर, लघु, मृदु और मूल नक्षत्रों में रोगी को औषधि दी हो तो वह रोग के नाश का हेतु बनती है। और रोग – मुक्त पुरुष को किसी भी प्रकार से शुक्रवार, सोमवार, पुनर्वसु, ज्येष्ठा अश्लेषा, स्वाति और मघा नक्षत्र में स्नान नहीं करना चाहिये।

आरम्भसिद्धि के मत में जातकोक्तरिस्ट योग न हो, आठवें स्थान में क्रूर ग्रह हो, छठे, सातवें और बारहवें स्थान में क्रूर ग्रह नहीं हो और सौम्यग्रह बलवान हो तब औषध का सेवन शुभ दायक है।

श्रीउदयप्रभसूरिजी के मत में :—

यदि रोगी को प्रथम बार पानी से स्नान कराना हो तो सोमवार और शुक्रवार का त्याग करना चाहिये अन्य स्थान पर कहा गया है—रवि, मङ्गल तथा शनि, विष्टि, व्यतिपात, अशुभचंद्र

तथा अशुभ तारा रोगी के अभ्यङ्ग स्नान के लिए वर्जित है ।

मृत्युयोग के विषय में :—

नामनक्खतमर्विक्क, एकनाडीगया जया ।
तया दिणे भवे मच्चू, नन्नहा जिणभासिग्रं ।। ११५ ।।

जब नाम राशि का नक्षत्र, सूर्य और चन्द्र एक राशि में आवे तब उस दिन मृत्यु योग होता है।

अन्यत्र कहा है:— रोगी के जन्मनक्षत्र से एक नाड़ी में जब तक सूर्य रहे तब तक कष्ट रहा करता है । एक नाड़ी में चन्द्र हो तब आठ प्रहर तक पीड़ा बनी रहती है ।

आरम्भसिद्धि के अनुसार :—

तीसरी, पांचवीं और सातवीं तारा में रोग हो तो अति दु:ख अथवा मृत्यु होती है । तथा पूर्व कथित पूर्वादि नक्षत्रों का रोगी भी मृत्यु प्राप्त करता है ।

नारचन्द्रानुसार :—

उरगवरुणरौद्रा बासवैन्द्री त्रिपूर्वा,
यमदहनविशाखा पापवारेण युक्ता ।
तिथिषु नवमी षष्ठी द्वादशी वा चतुर्थी ।
सहजमरणयोगौ रोगिणो मृत्युरेव ।। १ ।।

अश्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, तीन पूर्वा, भरणी, कृत्तिका और विशाखा नक्षत्र हो साथ में क्रूर वार हो

और तिथियों में नवमी, छठ, बारस, या चौथ हो तो सहज ही मृत्युयोग होता है।

नन्दा च वृश्चिके मेषे, भद्रा मिथुनकर्कयोः।
कन्याराशौ तथा ज्ञेया, एषा कालस्य षड्घटी ॥ १ ॥
जया धनुःकुम्भसिंहे, रिक्ता तौलि वृषे तथा।
पूर्णा मीनमकराभ्यां, कालोऽयं मुनिभाषितः ॥ २ ॥

वृश्चिक तथा मेष में नन्दा तिथि हो, मिथुन, कर्क और कन्या राशि में भद्रा तिथि हो तो उसकी छः घड़ियां काल योग की होती हैं।

धनुष्य, कुम्भ और सिंह में जया हो, तुला तथा वृष में रिक्ता हो तथा मीन एवं मकर में पूर्णा हो तो भी काल योग है ऐसा मुनियों का मत है।

कालज्ञान में कहा गया है:—

नन्दा के मेष और वृश्चिक लग्न में, भद्रा के मिथुन तथा कन्या लग्न में, जया के कर्क तथा सिंह लग्न में, रिक्ता के वृष तथा तुला तथा कुम्भ लग्न में अथवा पूर्णा के मिथुन धन और मकर लग्न में कोई रोगी हुआ हो तो उसके लिए 'विरुद्ध तिथि-पंचक' में कहा है:—

भौम[illegible]त्तकयोर्नन्दा, भद्रा च बुधनागयोः।
जया गुरौ मघायां च, रिक्ता शुक्र धनिष्ठयोः ॥ १ ॥
भरण्यां शनिवारे च, पूर्णाख्यतिथिपञ्चके।
योगेऽस्मिन् व्याधिरुत्पन्नो, न सिध्यति कदाचन ॥२॥

भोम तथा कृत्तिका में नन्दा तिथि हो, बुध तथा अश्लेषा में भद्रा तिथि हो, गुरु तथा मघा में जया तिथि हो, शुक्र तथा धनिष्ठा में रिक्ता तिथि हो तथा शनी एवं भरणी में पूर्णा तिथि हो तो इस प्रकार के तिथिपंचक में उत्पन्न हुई व्याधि किसी भी प्रकार साध्य नहीं मानी जाती । *

नारचन्द्र के अनुसार :—

रोगी की प्रश्नकुण्डली में या तत्कालिक लग्नकुण्डली में ६ – ८ – १२वाँ स्थान निर्बल हो तथा अन्य स्थान पुष्ट हो अथवा ६ – ८ - १२वां स्थान निर्बल हो, अन्य स्थान पुष्ट हो या ६ – ८ स्थान के पति तथा चन्द्र निर्बल हो तथा १ – १० – ११ स्थान के पति पुष्ट हो या १ - १० भुवनपति पुष्ट हो, ८वें का पति अपुष्ट हो या पूर्ण चन्द्र या सौम्य लग्नपति सौम्यग्रह की दृष्टि या युति वाली राशि में हो तो रोगी जीवित रहता है। ६ – ८ – १२ भुवन तथा सेनापति पुष्ट हो, अन्य निर्बल हो अथवा ६ – ८ स्थान के पति अपुष्ट हो और १ - १० - ११ स्थान के पति अपुष्ट हो या चन्द्र लग्नपति या सोम्येश ६ – ८ या १२ भुवन में पाप की दृष्टि में था क्रूर ग्रह के साथ हो तो रोगी जीवित नहीं रहता है।

नाड़ीचक्र के लिए :—

आई अद्दा मिगं अंते, मज्झे मूलं पइट्ठिअं ।
रवि॰ जम्मनक्खत्तं, तिविद्धो न हु जीवई ।। ११६ ।।

प्रथम आर्द्रा अन्तिम मृगशर और मध्य में मूल नक्षत्र स्थापित करना चाहिये फिर सूर्य नक्षत्र चन्द्र नक्षत्र और जन्मनक्षत्र

---

* इस विषय में विशेष जानकारी के लिए योगशास्त्र चिदानन्द स्वरोदय, कालज्ञान, आतंकादि ग्रन्थ देखने चाहिये ।

इन तीनों का वेध हो तो वह जीवित नहीं रहता । त्रिनाड़ी वाले सर्प की आकृति करनी चाहिये तथा तीनों रेखाओं को दबाये, इस प्रकार से सिद्धिरेखा में नक्षत्रों को स्थापित करना चाहिये उपरोक्त रीति से नक्षत्रों की स्थापना करनी चाहिये ।

नाड़ी चक्र

नाड़ी १	आ०	पू०	उ०	अ०	ज्ये०	ध०	श०	भ०	कृ०
नाड़ी २	पू०	म०	ह०	वि०	मू०	श्र०	पू०	अ०	रो०
नाड़ी ३	पु०	अ०	चि०	स्वा०	पू०	उ०	उ०	रे०	मृ०

फिर प्रत्येक नक्षत्रों पर इष्टकाल के ग्रह स्थापित कर देखना चाहिये, यदि रवि नक्षत्र, चन्द्र नक्षत्र और नाम नक्षत्र एक ही पंक्ति में हो तो रोगी जिन्दा नहीं रहता।

यतिवल्लभ में अंतर अन्तर से तीन - तीन नक्षत्र छोड़ कर आर्द्रा आदि तीन - तीन नक्षत्रों की सुलटो और उलटी (विलोम) स्थापना से पन्द्रह नक्षत्रों का भुजङ्ग-चक्र करने को कहा गया है तथा नाड़ीचक्र दर्शाया गया है ।

भुजंग चक्र

+	—		स्वा	वि	अ		रे	अ,	भ,
१	आ.		चि		ज्ये		उ		कृ
२	पु		ह		मू		पू		रो
३	पु		उ		पू		श		मृ
+	अ	म.	पू		उ,	श्र,	ध,		—

अक्षर चक्र

अक्षर	राशि	नक्षत्र	योनि	गण	नाड़ी	युजी	वर्ग	जाति	स्वामी	सार
अ	मे	कृत्ति	मेष	रा	अं	पू	अ	क्ष	भौ	३
इ उ ए	वृ	"	मेष	रा	"	"	"	वै	शु	"
ओ	वृ	रोहि	सांप	म	"	"	"	व	"	४
का की	मि	मृग	"	दे	म	"	क	शु	बु	५
कु	मि	आर्द्रा	श्वान	म	आ	म	"	शु	बु	६
के को	मि	पुन	बिल्ली	दे	"	"	"	"	"	७
खा	म	अभि	नेवला	विद्या	+	प	"	वै	श	+
खी खु खे खो	म	श्रव	बन्दर	दे	अं	प	"	वै	"	४
ग गी	म	धनि	सिंह	रा	म	प	"	वै	"	५
गु गे	कुं	"	"	"	"	"	"	शु	"	"
गो	कुं	शत	घोड़ा	रा.	आ	"	"	"	"	६
घ ङ	मि	आर्द्रा	श्वान	म	आ	म	"	शु	बु	६
चा ची	मी	रेव	हाथी	दे	अं	पू	च	ब्रा	गु	९
चू चे चो	मे	अश्वि	अश्व	दे	आ	पू	"	क्ष	मं	१
छ ज	मि	आर्द्रा	श्वान	म	आ	म	"	शु	बु	६
जा जी	म	उ.षा.	नेवला	म	अं	प	"	वै	श	३
जु जे जो	म	अभि	"	विद्या	+	प	"	"	"	+

ञ	मी	उ-भा	गाय	,,	म	प	,,	ब्रा	गु	८
टा टी टू	सि	पू-फा	चूहा	म	,,	म	ट	क्ष	सू	२
टे	सि	उ फा	गाय	म	आ	,,	ट	क्ष	सू	३
टो	क	उ फा	,,	म	आ	,,	,,	वै	बु	३
ठ	क	हस्त	भैंस	दे	आ	,,	,,	,,	,,	४
डा	क	पुष्य	घेंटा	,,	म	,,	,,	ब्रा	चं	८
डी डू डे डो	कर्क	अश्ले	बिल्लो	रा	अं	,,	,,	ब्रा	,,	९
ढ	धन	पुषा	बन्दर	म	म	प	,,	क्ष	गु	२
ण	क	हस्त	भैंस	दे	आ	म	,,	वै	बु	४
ता	तु	स्वाति	,,	दे	अं	म	त	शु	शु	६
ती तू ते	,,	विशा	बाघ	रा	अं	,,	,,	,,	शु	७
तो	वी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	ब्रा	मं	,,
थ	मी	उभा	गाय	म	म	य	त	,,	गु	८
द	कुं	पूभा	सिंह	,,	आ	,,	,,	शु	श	७
दि	मी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	ब्रा	गु	७
दु	,,	उभा	गाय	,,	म	,,	,,	,,	,,	८
दे दो	,,	रेवती	हाथी	दे	अं	पू	,,	,,	गु	९
ध	ध	पूषा	बन्दर	म	म	प	,,	क्ष	गु	२

न नी	वी	अनु	हिरण	दे	म	म	,,	आ	मं	८
नू ने										
नो	,,	ज्येष्ठा	,,	रा	आ	प	,,	,,	,,	६
पा पी	क	उफा	गाय	म	आ	म	प	वै	बु	३
पू	क	हस्त	भैंस	दे	आ	म	प	वै	बु	४
पे पो	क	चित्रा	बाघ	रा	म	,,	,,	,,	,,	५
फ	ध	पूषा	बन्दर	म	म	प	,,	क्ष	गु	२
बा बी	वृ	रोहिणी	साँप	म	अं	पू	,,	वै	शु	४
बू										
बे बो	वृ	मृग	सांप	दे	म	पू	,,	,,	,,	५
भा भी	ध	मूल	कुत्ता	रा	आ	प	प	क्ष	गु	१
भू	ध	पूषा	बन्दर	म	म	प	,,	क्ष	गु	२
भे	ध	उषा	नेवला	म	अं	प	,,	,,	,,	३
भो	म	,,	,,	,,	,,	,,	,,	वै	श	३
मा मी	सिं	मघा	चूहा	रा	अं	म	,,	क्ष	सू	१
मू म										
मो	,,	पूफा	चूहा	म	म	म	,,	,,	,,	२
या यी	वी	ज्येष्ठा	हिरण	रा	आ	प	य	आ	मं	६
यू										
ये यो	ध	मूल	कुत्ता	रा	आ	प	,,	क्ष	गु	१
र ऋ	तु	चित्रा	बन्दर	रा	म	म	,,	शु	श	५

रि										
रु रे रो	,,	स्वाति	भेंस	दे	अं	म	,,	,,	,,	६
ला	मे	अश्वि	घोड़ा	दे	आ	पू	,,	क्ष	म	१
लो लू	मे	भरणी	हाथी	म	म	पू	,,	क्ष	,,	२
ले लो										
बा बी	वृष	रोहिणी	सांप	,,	अं	पू	,,	वै	शु	४
वू										
वे बो	वृष	मृग	,,	दे	म	,,	,,	,,	,,	५
श	मो	उभा	गाय	म	,,	प	श	ब्रा	गु	८
ष	क	हस्त	भेंस	दे	आ	म	,,	वै	बु	४
स सो सू	कुं	शत	घोड़ा	रा	आ	प	,,	शु	श	६
से सो	,,	पूभा	सिंह	म	,,	,,	,,	,,	,,	७
हा	मि	पुन	बिल्ला	दे	,,	म	,,	,,	बु	६
ही	क	पुन	,,	,,	,,	,,	,,	ब्रा	चं	६
हू हे	क	पुष्य	बकरा	दे	म	म	श	ब्रा	चं	८
हो										

स्थापक राशिकूट चक्र

स्थापक राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृ०	धन	मकर	कुम्भ	मीन	फल
एक राशि	१६ १९ २१	२ १७	३ ४	१५	५	६ २२ २४	७ २३	८	१ ९ १०	११ २०	१२	१३ १४ १८	शुभ
दो बारह २+१२	१३ १४ १८	३ ४	२ १२	+ १५	१५	७ २३	६ २२ २४	१ ९ १०	८ ·	१२	११ २०	१६ १९ २१	मध्यम
दो बारह २+१२	२ १७	१६ १९ २१	१५	३ ४	६ २२ २४	५	८	७ २३	११ २०	१ ९ १०	१३ १४ १८	१२	अशुभ
३+११	३ ४ १२	१३ १४ १५ १८	५ १६ १९ २१	२ ६ १७ २२ २४	३ ४ ७ २३	८ १५	१ ५ ९ १०	६ ११ २० २२ २४	७ १२ २३	८ १३ १४ १८	१ ९ १० १६ १९ २१	२ ११ १७ २०	शुभ
सामी प्रीत ४+१०	११ १५ २०	५ १२	६ १३ १४ १८ २२ २४	७ १६ १९ २१ २३	२ ८ १७	१ ३ ४ ९ १०	११ १५ २०	५ १२	६ १३ १४ १८ २२ २४	७ १६ १९ २१ २३	२ ८ १७	१ ३ ४ ९ १०	अतिशुभ

नव पंचक	१ ५ ९ १०	६ ११ २० २२ २४	७ २३	८	१ ९ १० १६ १९ २१	२ १७	३ ४ १२	+ १५	५ १६ १९ २१	२ १७	७ २३	८	मध्यम
नव पंचक			१२	१३ १४ १८		११ २०		३ १४ १८		६ २२ २४	३ ४	१५	अशुभ
प्रीति षड़ाष्टक	८	७ २३	११ २०	१ ९ १०	१३ १४ १८	३ ४	२ १७	१६ १९ २१	१५	३ ४	६ २२ २४	५	मध्यम
मृत्यु षड़ाष्टक	६ २२ २४	१ ९ १०	८	१२	११ २०	१६ १९ २१	१३ १४ १८	३ ४	२ १७	५	१५	७ २३	अशुभ
सम ७+७	७ २३	८	१ ९ १०	११ २०	१२	१३ १४ १८	१६ १९ २१	२ १७	३ ४	१५	५	६ २२ २४	शुभ

मृतकार्य के वर्ज्य नक्षत्र—

धुवमिस्सुग्गनक्खत्ता, मूलऽद्दा अणुराहया ।
पंचगाई रवी भोमा, मयकज्जे विवज्जिया ॥११७॥

ध्रुव, मिश्र और उग्र नक्षत्र, मूल, आर्द्रा, अनुराधा, पंचकादि रवि और भोमवार मृतकार्य में वर्जित है। इसी प्रकार त्रिपुष्कर और यमल आदि योगों का भी त्याग करना चाहिये ।

आरम्भसिद्धि में कहा गया है—

विद्वान् पुरुषों को अश्विनी, पुष्य, हस्त, स्वाति, ज्येष्ठा, श्रवण और रेवती नक्षत्र में तथा रवि के अतिरिक्त वारों में प्रेत क्रिया करनी चाहिये ।

अग्निसंस्कार विधि—

दो पणयाल मुहुत्ते, तीसमुहुत्ते गपुत्तलं काउं ।
नेरइअ दाहिणाए, महापरिट्ठावणं कुज्जा ॥११८॥

पैंतालिस मुहुर्त वाले नक्षत्रों में दो और तीस मुहुर्त वाले नक्षत्रों में एक पुत्तल कर उसको नैऋत्य या दक्षिण में परिष्ठापना (परिस्थापना) करनी चाहिये ।

नक्षत्र मुहूर्त—

तिन्नेव उत्तराइं, पुणव्वसु रोहिणी विसाहा य ।
एए छ नक्खत्ता, पणयालमुहुत्तसंजोगा ॥११९॥
सयभिस-भरणी साई, अस्सेस-जेट्ठ-ऽद्द छच्च नक्खत्ता ।
पनरस मुहुत्तजोगा, तीसमुहुत्ता पुणो सेसा ॥१२०॥

तीन उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी और विशाखा ये छः नक्षत्र पैंतालिस मुहूर्त तक संयोग वाले हैं ।

शतभिषा भरणी, स्वाति, अश्लेषा, ज्येष्ठा और आर्द्रा ये छः नक्षत्र पन्द्रह मुहूर्त तक संयोग वाले हैं और बाकी के पन्द्रह नक्षत्र तीस मुहूर्त तक सयोगवाले हैं ।

आरम्भसिद्धि में इस प्रकार कई कार्यों के लिये विवेचन दिया गया है—

नये गांव में बसने के लिये— अश्विनी, रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, अश्लेषा, मघा, हस्त, शतभिषा, सोम, गुरु, शुक्र, १-२-३-११ और १५ तिथि शुभ है ।

जातकर्म के लिये— लघु, मृदु तथा ध्रुव नक्षत्र शुभ है ।

बालक के नामकरण संस्कार के लिये— जातकर्म के ही दिन श्रेष्ठ हैं ।

अग्निस्थापन में— कृतिका, रोहिणी, मृगशर, पुष्य, तीन उत्तरा, विशाखा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्र केन्द्र का रवि, उपचय का चंद्र, पंचम बुध, तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादशम स्थान का मंगल शुक्र तथा शनि ग्रह शुभ है ।

नया अनाज खाने के लिये— अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, तीन उत्तरा, हस्त, चित्रा श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्र हो, लग्न, केन्द्र, त्रिकोण मृत्यु और व्यय स्थान में सौम्य ग्रह हो और संपूर्ण चन्द्र केन्द्र या त्रिकोण में हो तो शुभ है ।

नई दूकान के प्रारम्भ में— २-३-६-११-१३ तिथियां, बुध गुरु या शुक्रवार, अश्विनी, रोहिणी, मृगशर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य,

मघा, हस्त, चित्रा, अनुराधा, तीन उत्तरा और रेवती नक्षत्र, लग्न स्थान में रहा हुआ चंद्र-शुक्र, १-२-१०-११ भुवन में रहने वाले सौम्य ग्रह हो और आठवें या बारहवें भुवन के अतिरिक्त स्थान मे रहे क्रूर ग्रह शुभ फलदायक हैं।

पशु योनि वाले नक्षत्रों में अनुकूल पशुओं का क्रय विक्रय करना चाहिये।

चर लग्न हो, केन्द्र त्रिकोण में सौम्य ग्रह हो, तथा ग्रह रहित आठवाँ भुवन हो तो ब्याज से धन रखना चाहिये। उपचय स्थान पुष्ट हो तो वस्त्रादि खरीदना चाहिये।

लग्न में सौम्य ग्रह हो, दशमें या ग्यारहवें भुवन में रवि या मंगल ग्रह हो तो नौकरी करनी चाहिये।

अश्विनी, चित्रा, स्वाति, श्रवण, शतभिषा और रेवती में वस्तु खरीदना चाहिये तथा भरणी, कृतिका, आर्द्रा, तीन पूर्वा और विशाखा में सारी वस्तु बेचनी चाहिये।

मांडवे की कील स्थापित करने के लिये— सूर्य ११-१२-१ राशि में हो तो नैऋत्य, २-३-४ राशि में हो तो अग्नि, ५-६-७ राशि में हो तो ईशान और ८-९-१० राशि में हो तो वायव्य कोण श्रेष्ठ है।

विवाह के लिये— मेष, वृष, मिथुन, मकर, और कुम्भ का सूर्य हो, महा, फाल्गुन, वैशाख और जेठ मास चैत्र में मेषार्क हो, पोष में मकरार्क हो, अषाढ़ में शुक्ला या कार्तिक कृष्णा हो तो शुभ है परन्तु जन्म मास, मकरस्थ गुरु, सिंहस्थ गुरु, जन्म दिवस, जन्म नक्षत्र और वर कन्या दोनों प्रथम सन्तान हो तो जेठ मास का विवाह त्यागना चाहिये।

शुभ तिथियाँ बुध, गुरु, शुक्र और रोहिणी, मृगशर, मघा तीन उत्तरा. हस्त, स्वाति, अनुराधा, मूल या रेवती में विवाह शुभ है ।

सारङ्ग के अनुसार—

क्रूर ग्रहों से भुक्त या भुक्तमान या भोगा जाने वाला नक्षत्र विवाह में वर्जित है । अन्यथा उसमें विवाहिता कन्या तीन वर्ष में विधवा हो जाती है । वैशाख कृष्णा में धनिष्ठा से रोहिणी तक के नव नक्षत्र, वसु नवक, या महा पंचक आदि विवाह में वर्जित है ।

विवाह में २१ दोषों का त्याग करना चाहिये । यदि यह सम्भव न हो सके तो लत्ता, पात (चंडायुध) युति, वेध, जामित्र, बाण-पंचक, एकार्गल, उपग्रह, क्रांतिसाम्य और दग्धा इन दस दोषों का अवश्य त्याग करना चाहिये । यमघंट में विवाह करने से कुल का उच्छेद होता है, एकार्गल में विवाह करने से वैधव्य मिलता है, जामित्र्य में भी वैधव्य मृत्यु, कुलटावृत्ति, शोक, पीड़ा, आदि दोष उत्पन्न होते हैं । लग्न में उदयास्त शुद्धि भी अवश्य देखनी चाहिये ।

गृहस्थ व्यवहार में विवाह आवश्यक कार्य माना जाता है, अतः उसमें लग्न बल देखकर ही मुहूर्त ग्रहण करना चाहिये ।

श्रीउदयप्रभसूरिजी विवाह के लग्न में रेखा देने वाले ग्रहों के लिये कहते हैं—

सूर्य ३-६-८-११ स्थान में हो, चंद्र २-३-११ भुवन में हो, मंगल ३-६-११ भुवन में हो, बुध तथा गुरु १-२-३-४-५-६-९-१०-११ स्थान में हो, शुक्र १-२-३-४-५-९-१०-११ भुवन में हो, शनि

३-६-८-११ भुवन में हो तथा राहु २-३-५-६-८-९-१०-११ भुवन में हो तो श्रेष्ठ है। आठवें स्थान में सूर्य या शनि के अतिरिक्त ग्रह न हो, चंद्र और शुक्र छट्ठे स्थान में न हो, व्यय भुवन में केतु नहीं हो ऐसे मुहूर्त में विवाह करना श्रेष्ठ है।

चर लग्न और चर राशिस्थ चन्द्र के ऊपर स्त्रीं ग्रहों की दृष्टि हो तथा बलवान यायी (रवि, चंद्र, भोम या शुक्र) ग्रह केन्द्र में हो या मिथुन राशि का चंद्र पापग्रहों की दृष्टि वाला हो, तो स्त्री एक पतिव्रत से च्युत होती है। रवि, सोम मङ्गल नीच का न हो अथवा लग्नपति शत्रु के घर में हो या सातवां स्थान निर्बल हो तो वह स्त्री वन्ध्या होती है। सप्तमेश, सूर्य या शुक्र निर्बल हो तो पति, श्वसुर या सास की हानि करती है। उदितांश या अस्तांश की शुद्धि न हो तो वर कन्या का अनिष्ट करती है। अतः ऐसे मुहूर्त वाले ग्रहों का त्याग करना चाहिये।

विवाह में वर्जित ग्रहों के लिये यतिवल्लभ में कहा है—

रवि १-७ भुवन में हो, सोम १-६-८ भुवन में हो, भोम १-७-८ भुवन में, बुध ७-८ में, गुरु ८ में, शुक्र ६-७-८ में, शनि १-७ में और राहु १-४-७ भुवन में हो तो उस लग्न में विवाह नहीं करना चाहिये।

विवाह के लग्न में मिथुन, कन्या, तुला और धन का पूर्वार्ध ये अंश ही शुभ हैं। अतः उन्हें स्वीकार करना चाहिये। मात्र यदि बुधास्त हो तो धनांश का और भोमांश में तुलांश का त्याग करना चाहिये।

विवा; कुण्डली में ग्रह स्थापना

	उत्तम	मध्यम	अधम
रवि	३-६-८-११	२-४-५-६-१०-१२	१-७
सोम	२-३-११	४-५-७-६-१०-१२	१-६-८
मङ्गल	३-६-११	२-४-५-६-१०-१२	१-७-८
बुध	१-२-३-४-५-६-६-१०-११	१२	७-८
गुरु	१-२-३-४-५-६-६-१०-११	७-१२	८
शुक्र	१-२-३-४-५-६-१०-११	१२	६-७-८
शनि	३-६-८-११	२-४-५-६-१०-१२	१-७
राहुकेतु	२-३-५-६-८-६-१०-११	१२	१-४-७

सारङ्ग के मत में—

निर्घात, उल्कापात, भूकंप और ग्रहों के उत्पात आदि से लेकर पांच दिनों के समयान्तर विवाहिता नष्ट होती है और यदि पाणिग्रहण के दिन केतु का उदय हो तो दंपति का साथ ही मृत्यु होता है।

अपवाद—

नागर विवाह में छट्ठे आठमें को नहीं गिनते, भार्गव भाद्र पद शुक्ला १० को भी विवाह करते हैं, गौड़ गोचर शुद्ध सूर्य को और अष्टवर्ग वाले गुरु को चाहते हैं, महाराष्ट्रीय इसका विलोम

चाहते हैं । लाटोद्‌यव गुरु-सूर्य की दोनों शुद्धि देखते हैं । मालवा में गोचर अप्रमाण हैं । ये कुल तथा देश धर्म है ।

व्यवहारप्रकाश में कहा है—

दस वर्ष से अधिक वय वाली कन्या का लग्न मात्र लग्न के बल ही से होता है । सूर्य-गुरु की शुद्धि देखनी आवश्यक नहीं फिर भी सूर्य-गुरु अशुद्ध हो तो पूजा से दोष का नाश करना चाहिये ।

दैवज्ञवल्लभ के अनुसार—

संकर जाति के वर कन्या का विवाह कृष्णपक्ष में और निषिद्ध वार नक्षत्र तथा क्षणादि में शुभ है । यह निस्संदेह है ।

राज्याभिषेक में भी शुभ वार, तिथि, नक्षत्र तथा लग्नबल की शुद्धि देखनी चाहिये ।

यतिवल्लभ में कहा है—

राज्याभिषेके विवाहे, सत्क्रियासु च दीक्षणे ।

धर्मार्थकामकार्ये च, शुभा वाराः कुजं विना ॥ १ ॥

राज्याभिषेक, विवाह, शुभक्रिया, दीक्षा, धर्म, अर्थ और काम के विषय में मङ्गल के अतिरिक्त अन्य वार शुभ है ।

जन्मवार, दशेशवार, लग्नेशवार, चंद्र, गुरु, और शुक्र शुभ है । अश्विनी, रोहिणी, मृगशर, पुष्य, तीन उत्तरा, हस्त, अनुराधा, ज्येष्ठा, अभिजित्, श्रवण और रेवती नक्षत्र में राजा का अभिषेक किया जाय तो वह चिरकाल तक पृथ्वी का राज्य करता है ।

श्रीउदयप्रभसूरिजी कहते हैं—

जन्मेश, दशेश, लग्नेश, दिनेश, सूर्य और मंगल बलवान हो, चंद्र, गुरु और शुक्र त्रिकोण उच्च स्वघर या मित्र घर का हो विपुल हो, पंचांग शुद्धि हो, चंद्रबल-ताराबल हो, जन्म राशि से उपचय स्थान का या स्थिर या शीर्षोदयी लग्न हो, लग्न में सौम्य ग्रह की स्थिति या दृष्टि हो, प्रत्येक ग्रह तृतीय या ग्यारहवें में हो, पाप ग्रह छट्ठे में हो, सौम्य ग्रह धन त्रिकोण या केन्द्र में हो और आठवां दशवां स्थान ग्रह शून्य हो तब राज्याभिषेक करना शुभ है ।

३-११ भुवन में, मंगल ६ ठे भुवन में, गुरु १-४-५-९-१० भुवनमें, शुक्र १० वें स्थान में, शनि ३-११ भुवन में हो तो ये ग्रह उत्तम हैं। पाप ग्रह १-२-४-५-७-८-९-१० भुवन में हो तो उसका त्याग करना चाहिये और चन्द्र या सौम्य ग्रह क्रूर ग्रह की दृष्टि वाले ६-८ भुवन में हो तो इस मुहूर्त को सर्वथा त्याग करना चाहिये । केन्द्रादि में क्रूर ग्रह बलवान हो तो राजा क्रूर होता है और केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह हो तो राजा शांत होता है ।

श्री हरिभद्रसूरिजी के मत में—

राज्याभिषेक और आचार्यपदाधिरोहण आदि हरेक शुभ क्रियाओं में प्रतिष्ठा की उत्तम स्थापना भी उत्तम है ।

राज्याभिषेक ग्रह स्थापना

	उच्चोत्तम	उत्तम	मध्यम	अधम
रवि, शनि, राहु	३-११	६	शेष	८-१२
सोम, बुध		शेष	२	६-८-१२
मंगल	६	३-१०-११	शेष	८-१२
गुरु	१-४-५-६-१०	३-७-११	२	६-८-१२
शुक्र	१०	शेष	२	६-८-१२

प्रत्येक प्रकार के अशुभ कार्यों में क्रूर नक्षत्र स्वीकार किये जाते हैं।

पूर्णभद्र में कहा गया है—

रिक्ता तिथि, अशुभ योग, क्रूर लग्न और कृष्ण पक्ष में अशुभ कार्य का प्रारम्भ करना चाहिये। अर्थात् रिक्ता अष्टमी, अमावस, ग्रहण के दिन, भरणी, मृगशर, मघा और मूल नक्षत्र में कुम्भ लग्न में बुध हो, चौथे भुवन में शुक्र हो और आठवां स्थान शुद्ध हो तो भूत–वैताल साधना, यंत्र, मंत्र रक्षा, शूद्र कार्य, पाप, भय और दम्भादि कार्य किये जा सकते हैं। तथा शत्रुमारण आदि प्रयोग में चंद्र क्रूर के योग या वर्ग में हो, शत्रु को जन्म राशि की या लग्न की आठवीं राशि लग्न में हो और रिष्ट योग में बुध बलवान हो तो यह मुहूर्त सिद्धिकर हैं।

श्रीउदयप्रभसूरिजी के मत में—

व्रत, नियम, प्रायश्चित, योग, उपधान, नान्दी आदि धर्मोत्सवादि कार्य में मंगलवार, शनिवार, भरणी, कृतिका, आर्द्रा, अश्लेषा मघा, तीन पूर्वा, विशाखा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रों का अवश्य त्याग करना चाहिये ।

शांतिक कार्य में रोहिणी, मृगशर, तीन उत्तरा, चित्रा, अनुराधा और रेवती नक्षत्र लेने चाहिये ।

वार्तिक में कहा है—

शान्तिकं पौष्टिकं कार्यं, ज्ञेज्यशुक्रार्कवासरे ।
कन्याविवाहनक्षत्रे, पुष्याश्विश्रवणे तथा ॥ १ ॥

बुध, गुरु, शुक्र और रविवार, अश्विनी, पुष्य और श्रवण नक्षत्र में तथा कन्या विवाह में रोहिणी, मृगशर, मघा, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, स्वाति, अनुराधा, मूल, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद और रेवती नक्षत्र में शांतिक, पौष्टिक कार्य करने चाहिये ।

मुहूर्तचिंतामणि में भी कहा है—

क्षिप्रध्रुवान्त्यचरमैत्रमघासु शस्तं,
यत् शान्तिकं च सह पौष्टिकमङ्गलाभ्याम् ।
खेऽर्के विधौ सुखगते तनुगे गुरौ नो,
मौढ्यादिदुष्टसमये शुभदं निमित्तो ॥ २-३४ ॥
शान्तिकर्माणि कुर्वीत, रोगे नैमित्तिके तथा ।
गुरुभार्गवमौढ्येऽपि, दोषस्तत्र न विद्यते ॥ (टीका) ॥
व्ययाष्ट शुद्धोपचये, लग्नगे शुभदृग्युते ।
चन्द्रे त्रिषड्व्योमायस्थे, सर्वारम्भः प्रशस्यते ॥ २-४४ ॥

ग्रहशांति, उपद्रवशमन आदि, शांतिक देवपूजादि, पौष्टिक और दर्भमूलादि मंगल कार्य अश्विनी, रोहिणी, मृगशर, पुनर्वसु, पुष्य, मघा, तीन उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, अभिजित्, श्रवण धनिष्ठा, शतभिषा और रेवती नक्षत्र में तथा सूर्य १०वें भुवन में हो, चन्द्र चौथे स्थान में हो, गुरु प्रथम भुवन में हो तब करना श्रेयस्कर है। किन्तु उस गुरु-शुक्र का अस्तादि हो तो नहीं करना चाहिये। यदि केतु आदि का उत्पात हो तो कर लेना चाहिये। जिससे शुभ फल मिलता है। रोग रोगोपद्रव या निमित्तादि हो तो गुरु-शुक्र के अस्तादि में भी शान्ति कर्म करने में दोष नहीं है। तथा ८-१२ स्थान रिक्त हो, उपचय भुवन शुद्ध हो, सौम्यग्रह की दृष्टि या युतिवाला लग्न भुवन हो और चन्द्र शुभ दृष्टि-युति वाले लग्न का या ३-६-१०-११ भुवन में हो तो उस समय में किये हुए कार्य प्रशंसा के पात्र हैं।

अन्यत्र भी कहा है—

हिबुकेऽर्के गुरौ लग्ने, धर्मारम्भो रवेर्दिने।

गुरुज्ञलग्नवर्गे वा, शुभारम्भास्तयोर्बले ॥ १ ॥

रविवार को सूर्य ४ स्थान में हो, गुरु १ भुवन में हो, तब धर्म का प्रारम्भ करना चाहिये या बुध-गुरु के लग्न में या बुध-गुरु के वर्ग में या रवि और गुरु के बल में शुभ कार्य का प्रारम्भ करना चाहिये। 'नंदीस्थापना' आदि भी इन्हीं योगों में होती है।

व्ययनैधनसंशुद्धौ, सदृष्टोपचयोदये।

सर्वारम्भेषु संसिद्धि-श्चन्द्रे चोपचयस्थिते ॥ १ ॥

१२-८ भुवन शुद्ध हो, जन्मराशि या जन्मलग्न से १-६-१०-११ वीं शुभ दृष्टि वाली राशि का लग्न हो और चन्द्र ३-६-१० - ११ भुवन में हो तो प्रारम्भ किये गये सारे कार्य सिद्ध होते हैं ।

प्रायः करके ८ - १२ भुवन में रहे हुए शुभ ग्रह तथा १-४-५-७-८-६-१० और १२ स्थान के पापग्रह शुभ फल नहीं देते। 'लग्नका' सौम्य ग्रह वाला शुभ चन्द्र सारे कार्यों को सिद्ध नहीं करता । उसी प्रकार जन्म से आठवां भुवन लग्न में हो तो कल्याणकारक नहीं ।

पाकश्री ग्रंथ में कहा है—

कार्तिक, मार्गशीर्ष और पोष मास का वृष लग्न, माह, फाल्गुन और चैत्र मास का सिंह लग्न वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ का वृश्चिक लग्न और श्रावण, भाद्रपद तथा आसोज मास में कुम्भ लग्न अमृत लग्न है । जिसके वर्गोत्तम के मध्यम अंश के उदय में सर्व कार्य की सिद्धि होती है ।

इसके अतिरिक्त मौंजीबंधन, विप्राधिकार, षोडशसंस्कार, पशुक्रय, हलवाह, बीजवपन कृषिनक्षत्र, जलाशय और वृक्षारोपण आदि अन्य ग्रंथों से जानना चाहिये ।

अब शुद्धिकार के विषय में—

मास-दिण-रिक्खसुद्धि,
मुणिऊणं सिद्धच्छाय-धुवलग्गे ।
बारंगुलम्मि सुद्धे,
विक्ख-पइट्ठाइग्रं कुज्जा ।। १२१ ।।

मास दिन और नक्षत्र की शुद्धि जानकर सिद्धच्छाया और ध्रुवलग्न में या द्वादशांगुल छाया में दीक्षा तथा प्रतिष्ठा आदि करनी चाहिये ।

मास तथा दिवस की शुद्धि—

हरिसयण अकम्मरण,
अहिअमास गुरिसुक्कि अत्थि सिसुवुड्ढे ।
ससिनट्ठे न पइट्ठा,
दिक्खा सुक्कऽत्थि वि न वुट्ठा ॥ १२२ ॥
अवजोगकुलिअभद्दा,
उक्काई जत्थ तं दिणं वज्जे ।
संकंतिसाइदिणतिह,
गहणे इगु आइ सग पच्छा ॥ १२३ ॥

हरिशयन (चातुर्मास) अकर्ममास, अधिकमास, गुरु और शुक्र का अस्त, गुरु या शुक्र की बाल्यदशा या वृद्धावस्था और चंद्र का अस्त काल हो तब प्रतिष्ठा, दीक्षा आदि नहीं करने चाहिये । परन्तु दीक्षा मात्र शुक्रास्त में दुष्ट नहीं है ।

अवजोग, कुलिक, विष्टी और उल्का आदि जिस दिन हो उस दिन वर्ज्य है तथा संक्रान्ति के पूर्व के दिन के साथ तीन दिन और ग्रहण में एक दिन पहले का, एक दिन ग्रहण का तथा सात दिन पश्चात के वर्ज्य है ।

अपवाद इतना ही है कि प्रतिष्ठा में शुक्रास्त के दिन दुष्ट है किन्तु दीक्षा में शुक्रास्त का दोष नहीं होता ।

दिन शुद्धि के लिये—

सुद्धतिही सुहवारे,
सिद्धाऽमियराजजोगपमुहाइं ।
जत्थ हवन्ति सुहाइं,
सुहकज्जे तं दिणं गिज्जं ॥ १२४ ॥

जिस दिन शद्ध तिथि और वार के साथ सिद्धि, अमृतसिद्धि या राज्ययोग प्रमुख योग हो उस दिन को शुभ कार्य में ग्रहण करना चाहिये ।

पूर्वोक्त दिन के दोषों से रहित दिवस हो और उन्हीं दिनों में २-३-५-७-१०-११-१३ या १५ तिथि हो, सोम, बुध, गुरु और शुक्रवार हो तथा रवियोग, कुमार, राज, स्थिर, सर्वांक, अमृतसिद्धि अमृत और सिद्धि आदि योग हो तो शुभ कार्य का प्रारम्भ करना चाहिये ।

इसके अतिरिक्त शुभलग्न, नक्षत्र, शंकुछाया, अभिच, विजय योग, शिवचक्र, चंद्रनाड़ी का उत्साह आदि को भी स्वीकार कर लेना चाहिये ।

दीक्षाद्वार—

हत्थ—ऽणुराहा साई,
सवणु—त्तर—मूल—रोहिणी—पुस्सा ।
रेवइ—पुणव्वसु इअ,
विक्ख—पइट्ठा सुहा रिक्खा ॥ १२५ ॥

हस्त, अनुराधा, स्वाति, श्रवण, तीन उत्तरा, मूल, रोहिणी, पुष्य, रेवती और पुनर्वसु ये प्रत्येक नक्षत्र दीक्षा और प्रतिष्ठा में शुभ है। उपरोक्त शुभ नक्षत्र में दीक्षादि कार्य करने चाहिये। किन्तु दीक्षा में विशेष करके अन्य शुद्धि की अपेक्षा नक्षत्र शुद्धि की विशेष आवश्यकता है।

दीक्षा में—

कार्तिक, मार्गशीर्ष, महा, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ मास श्रेष्ठ हैं। मात्र ज्येष्ठ पुत्र-पुत्री की दीक्षा हो तो ज्येष्ठ मास का त्याग करना चाहिये तथा मेष, वृष, मिथुन, मकर और कुम्भ की संक्रान्ति भी श्रेष्ठ है। बाल-वृद्ध, गुरु-शुक्र और अस्त गुरु के दिन दीक्षा में नेष्ट है।

लग्नशुद्धि में—

व्रत ग्रहण के लिये रवि, बुध, गुरु और शनि सुन्दर है। नारचंद्र में सोमवार को शुभ माना गया है।

श्रीउदयप्रभसूरिजी के अनुसार—

मात्र पूर्णमासी ही दीक्षा के लिये वर्ज्य तिथि है। जबकि 'लल्ल' के मतानुसार मंत्र, दीक्षा आदि में रिक्ता, अमावस्या और अष्टमी भी प्रशस्त है। आर्द्रा, चित्रा तथा विशाखा त्याज्य है, अश्विनी, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपद तथा कहीं इसके बदले मृगशर, मघा, तथा धनिष्ठा लेकर पन्द्रह नक्षत्र शुभ माने गये हैं और अभिजित् नक्षत्र सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। श्रीउदयप्रभसूरिजी ने दीक्षा के नक्षत्रों में पुष्य और पूर्वाभाद्रपद को स्वीकार नहीं किया है। उसी प्रकार पुष्य नक्षत्र में विवाह तथा दीक्षा का सर्वथा निषेध किया गया है।

एक स्थान में चार से अधिक ग्रह हो या जन्म राशिपति शनि को देखता हो और अन्य ग्रह की दृष्टि वाले स्थान में न हो ३ या जन्मराशिपति को अन्य ग्रह नहीं देखते हों किन्तु शनि देखता हो तो 'प्रवृज्या योग' होता है उसमें दीक्षा देनी हितकर है। यमघंट, वज्रमूशलादि का त्याग करना चाहिये। क्योंकि उसमें दीक्षा लेने से दीक्षित की मृत्यु हो जाती है, व्रत खंडित होता है।

श्रीउदयप्रभसूरिजी लग्नअंश के लिये कहते हैं—

व्रताय राशयो द्वयंगाः, स्थिरश्चापि वृषं विना।
मकरश्च प्रशस्याः स्युः, लग्नांशादिषु नेतरे ॥ २१ ॥

दीक्षा के लग्न और नवांश आदि में द्विस्वभाव मिथुन, कन्या, धन और मीन, वृष के अतिरिक्त स्थिर, सिंह, वृश्चिक, कुंभ और मकर राशियां श्रेष्ठ हैं।

नारचंद्र में कहा है—

वृश्चिकमिथुनधनुर्धर-कुम्भेषु शुभाय दीक्षणं भवति।
पञ्चमके तु नवांशे, वृषाजयोर्नान्यराशीनाम् ॥ १ ॥

वृश्चिक, मिथुन, धन और कुम्भ की दीक्षा शुभ है। वृषभ-मेष का पांचवा नवांश शुभ है। अन्य राशि का पांचवा नवांश शुभ नहीं है।

चंद्र तथा शुक्र के बलवान होने पर दीक्षा कभी नहीं देनी चाहिये।

नारचंद्रानुसार— १ शुक्रवार हो, २ शुक्र लग्न में हो, शुक्र का नवांश हो, ३ लग्न या सातवें स्थान में शुक्र की सम्पूर्ण

दृष्टि हो और ५ शुक्र की राशि वृष या तुला हो या १ सोमवार हो, लग्न में चन्द्र हो, चंद्र का नवांश हो या चंद्र की दृष्टि पड़ती हो तो दीक्षा नहीं देनी चाहिये ।

मंगल का षड्वर्ग भी नेष्ट है—

जीव-मन्द-बुधा-ऽर्काणां, षड्वर्गो वारदर्शने ।
शुभावहानि दीक्षायां, न शेषाणां कदाचन ॥ १ ॥

दीक्षा में गुरु, शनि, बुध और सूर्य के षड्वर्ग वार और दृष्टि शुभ है । शेष ग्रह (चंद्र, मंगल, शुक्र) के षड्वर्गादिक् शुभ नहीं है ।

नारचंद्र में चन्द्र का वर्ग भी स्वीकार किया गया है । उदयास्त की शुद्धि भी लेनी चाहिये ।

नारचंद्र में कहा है—

अस्तशुद्धि को इतनी अपेक्षा नहीं भी हो किन्तु उदय की शुद्धि तो चाहिये हो ।

दीक्षा के शुभ त्रिशांश इस प्रकार हैं—

मेष का २७वां पल, अंत्यकला २०, वृष १४-२०, मिथुन १७, कर्क ८, सिंह १८, कन्या ८, पूर्वकला ३०, धन १७, मकर २०, और मीन का ८वाँ त्रिशांश आदि-आदि । अमृत स्वभाव वाले लग्न भी श्रेष्ठ है ।

दीक्षा कुण्डली के ग्रह स्थापन निम्न प्रकार से—

श्रीउदयप्रभसूरिजी के मतानुसार केन्द्र में सौम्यग्रह न हो तो लग्न और चंद्र के कर्तरि तथा जामित्र का त्याग करना चाहिये ।

जामित्र स्थान और चन्द्र की ग्रहयुति भी नेष्ट है ।

नारचंद्र में कहा है—

शुक्रांगारकमन्दानां, नाभीष्टः सप्तमः शशी ।
तमःकेतू तु दीक्षायां, प्रतिष्ठावत् शुभाशुभौ ॥१॥
कलह-भय-जीवनाशन-धनहानि-विपत्ति-नृपतिभीतिकरः ।
प्रव्रज्यायां नेष्टो, भौमादियुतो क्षपानाथः ॥ २ ॥

शुक्र मंगल और शनि से सातवां चन्द्र नेष्ट है । राहु और केतु दीक्षा में प्रतिष्ठा के समान शुभाशुभ जानने चाहिये । दीक्षा में मंगल आदि ग्रहों के साथ रहा हुआ चंद्र नेष्ट है तथा अनुक्रम से— कलह, भय, मृत्यु, धन हानि, दुःख और राज भय करता है ।

लग्नशुद्धि के मत में—

शुक्र, मंगल और शनि से सातवां चन्द्र हो तो दीक्षित पुरुष अनुक्रम से— शस्त्र, दुःशीलता और व्याधि से पीड़ित रहता है ।

दैवज्ञवल्लभ के मत में—

द्वयाद्यैः क्रूरैर्युते चन्द्रे, व्यसुः प्रव्रजितः शुभैः ॥

चन्द्र दो या अधिक क्रूर या शुभ ग्रहों के साथ हो तो दीक्षा ग्रहण करने वाला व्यक्ति मृत्यु से ग्रसित होता है ।

नारचन्द्रसूरिजी के मत में—

षड्द्वयेकादशपञ्चमो दिनकरः त्रिद्व्यायषष्ठः शशी ।
लग्नात् सौम्यकुजौ शुभावुपचये केन्द्र त्रिकोणे गुरुः ।।
शुक्रः षड्त्रिनवान्त्यगोऽष्टमसुतद्वयेकादशो मन्दगो ।
लग्नांशाद्विगुरुज्ञचन्द्रमहसां शौरेश्च दीक्षाविधौ ।। १ ।।

रविस्तृतीयो दशमः शशांको,
जीवेन्दुजावन्तिमनाशवर्ज्यौ ।
केन्द्राष्टवर्ज्यो भृगुजस्त्रिशत्रु—
संस्थः शनिः प्रव्रजने मतोऽन्यैः ।। २ ।।

सूर्य २-५-६ या ११ स्थान में हो, चन्द्र २-३-६-११ भुवन में हो, मंगल तथा बुध ३-६-१०-११ स्थान में, गुरु १-४-५-७-६-१० स्थान में, शुक्र ३-६-६-१२ स्थान में और शनि २-५-८ या ११ भुवन में हो तथा गुरु, बुध, चन्द्र, सूर्य या शनि के लग्न और नवांश में हो तो दीक्षा में उत्तम है ।

रवि तीसरा हो, चंद्र १०वां हो, बुध और गुरु ८-१२ के अतिरिक्त अन्य भुवनों में हो, शुक्र २ - ५ - ११ स्थान में हो और शनि ३-६ भुवन में हो तो दूसरों ने दीक्षा में उत्तम कहा है । अर्थात् इन ग्रहों की स्थापना में विसंवाद होने से मध्यम है ।

हर्षप्रकाश में इतना विशेष है कि बुध २ - ५ स्थान में, गुरु ११वें स्थान में और शनि ६ठे स्थान में हो तो उत्तम है । चन्द्र ७वां और शनि तीसरा मध्यम है तथा शुक्र ११वां अधम है ।

श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराज भी उत्तम ग्रह स्थापना के लिये कहते हैं—

गुरु १-४-७-१० स्थान में हो, शुक्र ६-१२ स्थान में, और शनि २-५-६-८-११ भुवन में हो तो शिष्य को दीक्षा देनी चाहिये। बुध २-५-६-११ स्थान में हो तो दीक्षा में शुभ है। तथा उपचय में रहा हुआ मंगल दीक्षित को ज्ञान तथा तपस्या की वृद्धि कराता है।

लल्ल के मत में—

मोक्षार्थिनां च दीक्षा, स्थिरोदये कर्मगे त्रिदशपूज्ये।
पापैर्धर्मप्राप्तै-र्बलहीनैः प्रव्रजितयोगे ॥ १ ॥

स्थिर लग्न में गुरु १० वें स्थान में, क्रूर ग्रह ९वें स्थान में हो तथा निर्बल हो प्रव्रज्या के योग्य हो तो मोक्षार्थी को दीक्षा देनी चाहिये।

दीक्षा कुण्डली की स्थापना

ग्रह	उत्तम	मध्यम	अधम
रवि	२-५-६-११	३	१-४-७-८-९-१०-१२
सोम	२-३-६-११	१०(७)	१-४-५-७-८-९-१२
मङ्गल	३-६-१०-११	०	१-२४-५-७-८-९-१२
बुध	३-६-१०-११(२-५)	१-२-४-५-७-९	८-१२
गुरु	१-४-५-७-९-१०(११)	२-३-६-११	८-१२
शुक्र	३-६-९-१२	२-५-११	१-४-७-८-१०(११)
शनि	२-५-८-११(६)	३-६	१-४-७-९-१०-१२
राहु	३-६-११	२-५-८-९-१०-१२	१-४-७

इस प्रकार 'सामयिक' या 'उपस्थापना' इन दोनों दीक्षाओं में शुभ दिन लेना चाहिये। गुरु को चन्द्रबल तथा शिष्य को रवि चन्द्र, तारा और गुरु बल देखना, शिष्य का नाम संस्कार करना, अष्टवर्ग देखना, गुरु से शिष्य को तारा ३-५-७ नेष्ट है। इत्यादि परस्पर का व्यवहार वर्जित कर सोम गुरु बलवान हो ऐसी गोचर शुद्धि से प्रथमाक्षर लेकर शिष्य का नाम रखना चाहिये।

सूरिपद, उपाध्यायादि पदारोपण में पूर्वोक्त राज्याभिषेक की शुद्धि लेनी चाहिये या प्रतिष्ठा की ग्रह कुण्डली लेनी चाहिये। यहां भी आचार्य को चन्द्रबल और पद ग्रहण करने वाले को रवि, चन्द्र, तारा तथा गुरु का बल देखना चाहिये।

प्रतिष्ठा द्वार—

अस्सिणि-सयभिस-पू-भा,

एसु वि दिक्खा सुहा विणिद्दिट्ठा।

मह—मिग— धणि पइट्ठा,

कुज्जा वज्जिज्ज सेसाइं ॥ १२६ ॥

अश्विनी, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपद में दीक्षा तथा मघा, मृगशर और धनिष्ठा में प्रतिष्ठा शुभ कही गई है तथा शेष नक्षत्रों में वर्जित है।

प्रतिष्ठा में सिंहस्थ गुरू के दिन, मकर के गुरू के दिन, गुरू-शुक्र के वृद्ध, अस्त तथा बाल्यकाल के दिनों का त्याग करना चाहिये।

श्रीउदयप्रभसूरि के मत में—

प्रतिष्ठा में माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ मास शुभ है। कार्तिक और मार्गशीर्ष मध्यम है।

श्रीहरिभद्राचार्य के मत में—

मार्गशीर्ष, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण और भाद्रपद श्रेष्ठ हैं।

हर्षप्रकाश में—

ज्येष्ठ संतान के शुभ कार्य में ज्येष्ठ मास वर्जित कहा गया है तथा प्रतिष्ठा में पोष, चैत्र, क्षयमास और अधिक मास का तो सर्वथा त्याग करना चाहिये।

व्यवहारप्रकाश में कहा गया है—

गुरु सूर्य और नक्षत्र की शुद्धि हो और चंद्र बलवान हो तो कार्तिक शुक्ला ११ के पश्चात् के दिन शुभ है।

नारचंद्रानुसार—

त्र्ये[illegible]पञ्चम—दिनानि पक्षद्वयेऽपि शस्तानि।
शुक्लेऽन्तिमत्रयोदश—दशमान्यपि प्रतिष्ठायाम्॥ १॥

प्रतिष्ठा में दोनों पक्षों की १-२-३-५ है तथा शुक्ला १०-१३ और १५ भी प्रशस्त है।

लग्नशुद्धि में प्रतिष्ठा तिथि में मात्र द्वितीया का विधान नहीं है तथा विशेष में कहा गया है कि— शुक्ला १० से कृष्णा ५ तक चन्द्र उत्तम बलवाला होता है। अतः सामान्य रूप से वे तिथियां उत्तम हैं। इससे तृतीया भी उत्तम मानी जाती है।

श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराज सोम, बुध और शुक्रवार को प्रतिष्ठा में शुभ मानते हैं ।

श्रीउदयप्रभसूरिजी महाराज मात्र मंगलवार की प्रतिष्ठा का निषेध करते हैं । जबकि रत्नमाला में मंगलवार के अतिरिक्त सभी वार शुभ कहे गये हैं ।

तेजस्विनी क्षेमकृदग्निदाह-विधायिनी स्याद् वरदा दृढा च ।
आनन्दकृत कल्पनिवासिनी च, सूर्यादिवारेषु भवेत् प्रतिष्ठा ।१।

रवि आदि सात वारों में की गई प्रतिष्ठा अनुक्रम से— १ प्रतिष्ठापक का तेज बढाती है, २ क्षेम, ३ अग्नि, ४ मनोवांछित, ५ दृढता, ६ आनंद, ७ कल्प पर्यन्त स्थिरता प्रदान करने वाली है ।

अन्य स्थान में कहा है—

बिना आर्द्रा शतं चित्रां, जिनं शुक्रार्केन्दुगुरौ ।
चरे मैत्रे मघोर्ध्वास्य-हस्तमूलेषु स्थापयेत् ।। १ ।।

शुक्र, रवि, सोम या गुरुवार को तथा शतभिषा बिना का चर, चित्रा बिना का मैत्र, आर्द्रा बिना का उर्ध्वमुखी, मघा, हस्त और मूल नक्षत्र में जिनेन्द्र को स्थापित करना चाहिये ।

प्रतिष्ठा में यमघंट, उपग्रह, वज्र, मूशल, बुधपंचक, धनुष्य शल्य एकार्गल, पात आदि कुयोगों का त्याग करना चाहिये या सोम गुरु और शुक्र आदि के बल से शुद्धि करनी चाहिये ।

नारचंद्रसूरिजी महाराज के मत में—

द्विस्वभावं प्रतिष्ठासु, स्थिरं वा लग्नमुत्तमम् ।
तदभावे चरं ग्राह्य—मुद्दामगुणभूषितम् ।। १ ।।

जिनेश्वरदेव की प्रतिष्ठा में द्विस्वभाव लग्न उत्तम है। स्थिरलग्न मध्यम है और ये दोनों न हो तो बहुत गुणवाला चर लग्न लेना चाहिये तथा मिथुन, कन्या और धन का पूर्वार्ध नवांश उत्तम है। वृष, सिंह, तुला तथा मीन का नवांश मध्यम है और शेष नवांश कनिष्ट हैं।

नारचंद्र टिप्पणी में बारहों नवांशों के फल के लिये कहा है कि यदि प्रतिष्ठा में—

१ मेष नवांश हो तो अग्नि का भय होता है।

२ वृषांष हो तो आचार्य और स्थापक को छः मास में मृत्यु होती है।

३ मिथुनांश हो तो निरन्तर शुभ होता है, भोग और सिद्धि मिलती है।

४ कर्कांश हो तो प्रतिष्ठापक का पुत्र मरता है। छः मास में ही कुल का क्षय हो जाता है तथा छः मास में हो मूर्ति का ध्वंस हो जाता है।

५ सिहांश हो तो आचार्य सलाट और श्रावक को शोक संताप होता है। किन्तु उस प्रतिष्ठा में वह प्रतिमा लोक में विशेष ख्याति प्राप्त करती है तथा निरन्तर पूजी जाती है।

६ कन्यांश हो तो मूर्ति विशेष पूज्य बनती है तथा प्रतिष्ठा करने वाला समृद्ध बनता है, चिरकाल तक सुखी रहता है।

७ तुलांश हो तो आचार्य को उपद्रव बंधन होता है। तथा श्रावक की दो वर्षों में मृत्यु हो जाती है।

८ वृश्चिकांश हो तो राजा कुपित होता है, महा अशांति होती है तथा अग्नि का उपद्रव होता है।

९ धनांश हो तो धन बढता है, देवता चमत्कार दिखाते हैं और आचोर्य तथा श्रावक निरन्तर आनन्द प्राप्त करते हैं।

१० मकरांश हो तो आचार्य, श्रावक तथा शिष्य की मृत्यु होती है और मूर्ति का वज्र से या छत्र से तीन वर्ष में नाश होता है।

११ कुम्भांश हो तो प्रतिष्ठा करने वाला तीन वर्ष में जलोदरादि से तथा मूर्ति जिन बिंब एक वर्ष में पानी से नष्ट होते हैं।

१२ मीनांश हो तो वह मूर्ति इन्द्र, सुर, असुर और मनुष्य से निरन्तर पूजी जाती है, किन्तु प्रतिष्ठा कराने वाले की मृत्यु होती है।

नवांश के लिये सामान्य नियम यह है कि यदि नवांश में सौम्य ग्रहपति वाले ६, ५ या ४ वर्ग की शुद्धि मिले तो नवांश प्रतिष्ठा आदि में ग्रहण करना चाहिये।

'रत्नमाला भाष्य' में कहा गया है कि मंगल के अतिरिक्त ग्रहों के छः वर्ग प्रतिष्ठा में शुभ है।

द्वयोर्नवांशयोः शुद्धिः, प्रतिष्ठायां विलोक्यते।

आद्येऽधिवासना बिम्बे, द्वितीये च शलालिका ॥ १ ॥

प्रथम नवांश में प्राण प्रतिष्ठा और दूसरे नवांश में अंजन-शलाका की जाती है। अतः प्रतिष्ठा में दो नवांश की शुद्धि देखी जाती है।

प्रतिष्ठा की ग्रह स्थापना—

श्रीउदयप्रभसूरि के मत में—

केन्द्र में सौम्य ग्रह नहीं हो तो लग्न और चंद्र का कर्तरि जामित्र, बुध और पंचक का त्याग करना चाहिये।

नारचंद्र में कहा है—

प्रतिष्ठा में मंगल आदि ग्रहों के साथ या दृष्टि में चन्द्र हो तो अनुक्रम से अग्नि का भय, समृद्धि, सिद्ध पूजा, समृद्धि, मृत्यु और अग्नि का भय होता है। केतु युक्त चन्द्र भी अत्यन्त दुष्ट है।

क्रूरग्रह संयुक्ते, दृष्टे वा शशिनि लुप्तकरे।
मृत्युं करोति कर्तुः, कृता प्रतिष्ठाऽयने याम्ये ॥६॥

क्रूर ग्रह युक्त या क्रूर ग्रह दृष्ट या अस्त का चन्द्रमा हो तथा दक्षिणायन हो तो की गई प्रतिष्ठा तथा प्रतिष्ठापक का नाश कराती है।

अंगारकः शनिश्चैव, राहुभास्करकेतवः।
भृगुपुत्रसमायुक्ताः सप्तमस्थास्त्रिकापहाः ॥ ४ ॥
शिल्पि-स्थापक-कर्तृणां, सद्यः प्राणवियोजकाः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन, सप्तमस्थान् विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

सप्तम स्थान में रहा हुआ मंगल, शनि, राहु, सूर्य, केतू और शुक्र शिल्पी, श्रावक और आचार्य इन तीनों के प्राणों का नाश करते हैं ।

सूर्ये विबले गृहपो गृहिणी मृगलाञ्छने धनं भृगुजे ।
वाचस्पतौ तु सौख्यं, नियमान्नाशं समुपयाति ॥ ६ ॥

प्रतिष्ठा में सूर्य निर्बल हो तो गृहपति, चंद्र निर्बल हो तो स्त्री, शुक्र निर्बल हो तो धन और गुरु निर्बल हो तो सुख का अवश्य नाश होता है ।

प्रतिष्ठा में उदयास्त की शुद्धि देखनी चाहिये ।

श्रीउदयप्रभसूरिजी के मत में—

त्रिकोण और केन्द्र में रहा हुआ मंगल और शनि मंदिर को ध्वस्त करते हैं ।

अन्य स्थान में कहा गया है—

शून्य केन्द स्थान की अपेक्षा जन्मराशिपति या नामराशिपति के क्रूर ग्रह भी केन्द्र में हो तो श्रेष्ठ है । अन्य भी कहा है— केन्द और ९वें भुवन में क्रूर ग्रह हो तो प्रासाद का ही नाश कर देते हैं । शत्रु घर के सारे ग्रह नेष्ट हैं । राहु-केतु साथ का लग्न या सातवें भुवन का चंद्र नेष्ट है । किन्तु गुरु और शुक्र के साथ रहा हुआ या देखा हुआ चन्द्र शुभ है । सारे ग्रह ११वें स्थान में शुभ हैं ।

लल्ल के मत में—

मेष या वृषभ का चंद्र या सूर्य हो, मंगल-बुध हीन बली हो और शनि बलवान हो तो 'अरिहंत मूर्ति' की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ।

नारचन्द्रानुसार ग्रहसभा के चार प्रकार—

शौरार्क क्षिति सूनव स्त्रि रिपुगा द्वित्रि स्थितश्चन्द्रमा,
एक द्वित्रिखपञ्चबन्धुषु बुधः शस्तः प्रतिष्ठाविधौ ।
जीवः केन्द्रनवस्वधीषु भृगुजो व्योमत्रिकोणे तथा,
पातालोदययोः सराहु शिखिनः सर्वेऽप्युपान्त्ये शुभाः ।।१।।
खेऽर्कः केन्द्र नवारिगः शशधरः सौम्यो नवास्तारिगः,
षष्ठो देवगुरुः सितस्त्रि धनगो मध्याः प्रतिष्ठाक्षणे ।
अर्केन्दुक्षितिजाः सुते सहजगो जीवो व्ययास्तारिगः,
शुक्रो व्योमसुते विमध्यमफलं शौरिश्च सद्भिर्मतः ।।२।।

प्रतिष्ठा में सूर्य, मंगल और शनि ३–६ स्थान में, चन्द्र २–३ भुवन में, बुध १-२-३-४-५-१० भुवन में, गुरु १-२-४-५-७-९-१० भुवन में, शुक्र १–४–५–९–१० भुवन में तथा राहु और केतु सहित सारे ग्रह ११वें भुवन में हो तो उत्तम हैं ।

सूर्य १०वें भुवन में, चंद्र १–४–६–७–९–१० भुवन में, बुध ६–७–९ स्थान में, गुरु ६ स्थान में और शुक्र २–३ स्थान में हो तो मध्यम है । तथा पांचवा सूर्य, चंद्र, मंगल, ३ रा गुरु, ६-७-१२ शुक्र और ४-१०वां शनि विमध्यम है । इनसे शेष रहो ग्रहसंख्या कनिष्ट है ।

राहु-केतु के लिये कहा गया है कि—

प्रतिष्ठा में ३-६-१०-११ वां रवि, २-३-९-१०-११ वां चन्द्र, ३–६–११ वां मंगल - शनि, ८–१२ के अतिरिक्त बुध–गुरु और १-४-९–१०–११ वां शुक्र उत्तम है । १-४-५-९-१० वां शुक्र, ७ सहित उसी

भुवन के बुध गुरु, ३-६ वाँ चन्द्र तथा क्रूर ग्रह और ११ वें में सारे ग्रह हों तो प्रतिष्ठापक को लक्ष्मी मिलती है और प्रतिमा के सानिध्य में देवता रहते हैं।

पूर्णभद्राचार्य प्रतिष्ठा कुण्डली के बारहों भुवनों में रहे ग्रहों का फल इस प्रकार से कहते हैं—

सूर्य बारहों भुवन में अनुक्रम से—

मंदिर ध्वंस, हानि, धनप्राप्ति, स्वजन पीड़ा, पुत्र पीड़ा, शत्रु क्षय, स्त्री की मृत्यु, स्वयं की मृत्यु, धर्मनाश, सुख, ऋद्धि और शोक करता है।

चंद्र बारहों भुवनों में अनुक्रम से—

प्रतिष्ठापक की घात, धन प्राप्ति, सौभाग्य कलह, दीनता, शत्रु जय, सुख नाश, मरण, विघ्न, राज मान, विषय विकार-विकार, हानि और धन का नाश कराता है।

मंगल बारहों भुवन में—

दाह, मंदिर ध्वंस, पृथ्वी की प्राप्ति, रोग, शस्त्र से पुत्र घात, शत्र क्षय, स्त्री नाथ, स्वजन नाश, गुण नाश, रोग, धन प्राप्ति और हानि कराता है।

बुध बारहों भुवन में अनुक्रम से—

प्रतिम की अखंड महिमा, धन लाभ, शत्रु नाश, सुख, पुत्र लाभ, शत्रु क्षय, उत्तम स्त्री का लाभ, आचार्य घात, धनप्राप्ति कार्य सिद्धि, आमरण लाभ और लक्ष्मी का नाश कराता है।

गुरु बारहों भुवन में—

कीर्ति, वृद्धि, सुख, शत्रु क्षय, पुत्र सुख, स्वजन शाक, स्त्री सुख, आचार्य घात, धन प्राप्ति, लाभ, ऋद्धि और मृत्युकारक है।

शुक्र बारहों भुवन में—

कार्यसिद्धि, धन, मान, तेज, स्त्री का सुख, अपयश, पुत्रप्राप्ति तथा वैभ्यादिभंग, असुख, पूज्यता, पूज्यता, पूज्यता और पूज्यता कराता है।

शनि बारहों भुवन में—

पूजा का अभाव, प्रतिष्ठापक का नाश, अति वैभव, मंदिर बंधु का नाश, पुत्र मृत्यु, रोग और शत्रु का क्षय, स्वजन और स्त्री का मरण, सगों का नाश, पाप वृद्धि, कार्य नाश, विविध सुख समृद्धि और १२वां रोग कराता है।

राहु हरेक स्थान पर शनि की तरह ही कल्पित होता है फिर भी ३-६-११ भुवन में राहु श्रेष्ठ है। १-४-७ भुवन में कनिष्ट है और शेष में मध्यम है।

केतु भी ३-६-११ भुवन में श्रेष्ठ है।

नारचंद्र प्रतिष्ठ ग्रह चक्रम् ।

	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु केतु
१	अ	म	अ	उ	उ	उ	अ	अ
२	अ	उ	अ	उ	उ	म	अ	म
३	उ	उ	उ	उ	वि	म	उ	उ
४	अ	म	अ	उ	उ	उ	अ	म
५	वि	वि	वि	उ	उ	उ	वि	म
६	उ	म	उ	म	म	वि	उ	उ
७	अ	म	अ	म	उ	वि	अ	अ
८	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	म
९	अ	म	अ	म	उ	उ	अ	म
१०	म	म	अ	उ	उ	उ	वि	म
११	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ
१२	अ	अ	अ	अ	अ	वि	अ	म

पूर्णभद्र प्रतिष्ठा—ग्रह फल यंत्र

	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१ कर्तामंदिर	ध्वंस	मृत्यु	अग्नि	महिमा	कीर्ति	सिद्धि	अपूजा
२ धन	हानि	प्राप्ति	ध्वंस	प्राप्ति	वृद्धि	प्राप्ति	मृत्यु
३	धन	सौभाग्य	भू लाभ	अशत्रु	सुख	मान	वैभव
४ स्वजन	पीड़ा	कलह	रोग	सुख	वृद्धि	तेज	क्षय
५ सुत	पीड़ा	दैन्य	घात	प्राप्ति	सुख	सुख	मृत्यु
६ शत्रु	मृत्यु	जय	नाश	मृत्यु	शोक	अयश	नाश
७ स्त्री	मृत्यु	दुःख	मृत्यु	लाभ	प्राप्ति	पुत्रदा	मृत्यु
८ मृत्यु	स्त्र०	स्वयं	सगा	सूरि	गुरु	दुःख	गोत्र
९ धर्म	नाश	विघ्न	नाश	प्राप्ति	प्राप्ति	पूज्यता	क्षय
१० कार्य	सुख	मान	रोग	सिद्धि	लाभ	पूज्यता	हानि
११ प्राप्ति	ऋद्धि	शांति	धन	धरेणां	ऋद्धि	पूज्यता	समृद्धि
१२ हानि	सुख	धन	सुख	धन	आयु	पूज्यता	देह

शुभ प्रतिष्ठा चक्र

	उत्तम	मध्यम	उत्तम
रवि	३-६-११	५	३-६-११-१०
सोम	२-३-६-११	त्रिकोण केन्द्र	३-६-११-२-९-१०
मङ्गल	३-६-११	५	३-६-११+
बुध	८-१२ अतिरिक्त	६-७-९	८-१२ अतिरिक्त
गुरु	८-१२ अतिरिक्त	३	८-१२ अतिरिक्त
शुक्र	१-४-९-१०-११	२-५-६-७	१-४-५-९-१०-१०+२-३
शनि	३-६-११	५-८-१०	३-६-११+
राहु-केतु	लग्न शुद्धि	लग्न शुद्धि	३-६-११+५-९ आ.सिद्धि.

कारावगस्स जम्मे, दसमे सोलसमेऽठारसे रिक्खे ।
तेवोसे पणवोसे, न पइट्ठा कह वि कायव्वा ।। १२७ ।।

प्रतिष्ठापक के जन्म का दसवां, सौलहवां, अठारहवां, तेइसवां और पच्चीसवां नक्षत्र हो तो कोई भी प्रकार से प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिये ।

अन्य देवों की प्रतिष्ठा के लिये रत्नमाला में इस प्रकार से प्रमाण मिलता है—

गण, परिवृठ राक्षस, यक्ष, भूत, असुर, शेषनाग और सरस्वती आदि की रेवती नक्षत्र में, बौद्ध की श्रवण नक्षत्र में, लोकपालों की

धनिष्ठा में तथा शेष इन्द्रादिक देवताओं की स्थिर नक्षत्र में प्रतिष्ठा करनी चाहिये। सर्व देवों की अपनी-अपनी तिथि, करण क्षण और नक्षत्र में और लेप्यमूर्ति की उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

सिंह लग्न में सूर्य की, कुम्भ में ब्रह्मा की, कन्या में विष्णु की, मिथुन में शिव की, चर में क्षुद्र देवों की, स्थिर में सर्व देवों की तथा द्विस्वभाव में देवियों की प्रतिष्ठा श्रेष्ठ है।

लल्ल के मत में—

सौम्य लग्न में देवों की, क्रूर लग्न में यक्ष-राक्षस और साधारण लग्न में गण तथा गणपतियों की स्थापना करनी चाहिये।

लग्न का बुध, केन्द्र का गुरु तथा चतुर्थ स्थान का शुक्र हो तब इन्द्र, कार्तिक, स्वामी, सूर्य, चन्द्र और यक्ष की स्थापना करनी चाहिये। नवमी तिथि को शुक्रोदय हो, बलवान चन्द्र हो और बलवान गुरु हो तथा दसवां मंगल हो तो देवियों की मूर्ति स्थापित करनी चाहिये। इस मुहूर्त में फेरफार यदि हो जाय तो शिल्पी, सुथार और प्रतिष्ठापक का वध-बंधनादि दुःख होते हैं।

समय के लिये जिस-जिस कार्य की कुण्डली में जिस-जिस भुवन में सूर्य शुभ हो उन-उन कार्यों में तत्-तत् भुवन के योग में आने वाला इष्ट लग्न के उदयवाला दिन भाग भी शुभ है।

किन्तु यह सदैव ध्यान रखना चाहिये कि दिन के उत्तरार्ध में विवाह का लग्न लिया जाता है किन्तु प्रतिष्ठा का लग्न नहीं लिया जाता। अतः वृद्ध परम्परा का अनुसरण करना चाहिये।

नक्षत्र द्वारा—

संझागयं रविगयं,
विड्डेरं सग्गहं विलंबं च ।
राहुहयं गहभिन्नं,
वज्जए सत नक्खत्ते ॥ १२८ ॥
अत्थमणे संझागयं,
रविगयं जत्थ ठिओ अ आइच्चो ।
विड्डेरमवद्दारिय,
सग्गह-कूरग्गहठिअं तु ॥ १२९ ॥
आइच्च पिट्ठओ ऊ,
विलंबि राहुहयं जहिं गहणं ।
मज्झेण गहो जस्स उ,
गच्छइ तं होइ गह भिन्नं ॥ १३० ॥

शुभ कार्य में संध्यागत, रविगत, विड्वर, सग्रह, विलंबित, राहूगत और ग्रहभिन्न ये सात नक्षत्र वर्जित हैं । अस्तकाल में हो वह संध्यागत, सूर्य वाला हो वह रविगत, वक्रीग्रह हो वह विड्वर, क्रूरग्रह वाला हो वह सग्रह सूर्य की पूठ (पृष्ठ) का विलम्बित, ग्रहणवाला हो वह राहूहत तथा जिसके मध्य में से ग्रह चले जायँ वह ग्रह भिन्न नक्षत्र कहा जाता है । विड्वर तथा राहूगत नक्षत्र का दूसरा नाम 'अपद्वारित' तथा 'ग्रहणदग्ध' है ।

नारचंद्र में ग्रह की वाम और दक्षिण दृष्टि से विधित नक्षत्र को 'ग्रहभिन्न' कहा जाता है ।

संझागयम्मि कलहो, होई विवाओ विलंबिनक्खत्ते ।
विड्डेरे परविजओ, आइच्चगए अनिव्वाणं ।। १३१ ।।
जं सग्गहम्मि कीरई, नक्खत्ते तत्थ विग्गहो होइ ।
राहुहयम्मि मरणं, गहभिन्ने सोणिउग्गालो ।। १३२ ।।

संध्यागत नक्षत्र में कार्य करने से कलह, विलम्बित नक्षत्र में विवाद, विड्वर नक्षत्र में शत्रु को जय, रविगत नक्षत्र में अशांति, सग्रह नक्षत्र में विग्रह, राहुगत नक्षत्र में मृत्यु और ग्रहभिन्न नक्षत्र में कार्य करने से रक्त का वमन हो जाता है ।

उपग्रह कहते हैं—

रविरिक्खाओ हेया,
उवग्गहा पंचम-ऽट्ठ-चउदसमा ।
अट्ठारस उगुणीसा,
बावीसा तेवीस चउवीसा ।। १३३ ।।

रवि नक्षत्र से पांचवां, आठवां, चौदहवां, अठारहवां, उन्नीसवां बाइसवां, तेइसवां और चौइसवां नक्षत्र उपग्रह है और त्याज्य है । इनका शुभ कार्यों में त्याग करना चाहिये ।

वामदेव के मत में—

उपग्रह का गौड़ देश में त्याग करना चाहिये । कुछ के मत में उपग्रह का मालव सिंध में त्याग करना चाहिये ।

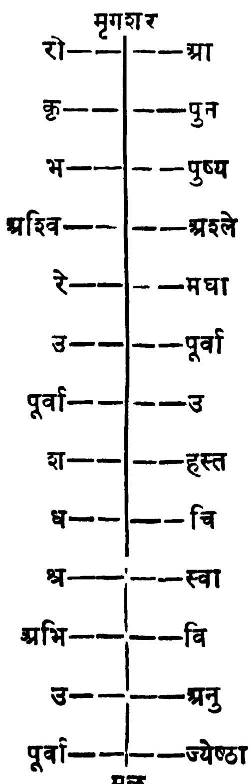
एकार्गल—

सेगबिसमजोगद्धं,
सम अद्ध चउदसंख सिररिक्खं ।

दाउं चउद्दस सिलाए,
ससि—रवि इक्कग्गलं वज्जे ।। १३४ ।।

विषम योग में एक बढाकर आधा करना चाहिये तथा सम योग में आधे कर के चौदह बढाने चाहिये । जिस सख्या वाला शोषं नक्षत्र आये उसे चौदहशलाका पर स्थापित करने से सन्मुख सन्मुख चन्द्र सूर्य आने पर एकार्गल योग होता है जो र्वाजत है ।

लग्नशुद्धि में तो स्पष्ट कहा है कि अनुक्रम से अश्विनी अनुराधा, मृगशर, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, तथा चित्रा ये नौ दुष्ट योगों के शिर नक्षत्र हैं ।



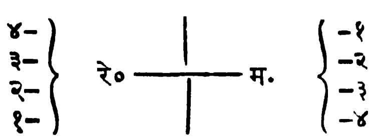
एक खड़ी तथा तेरह आड़ी रेखा रेखाएं दुहरानी चाहिये । कुल चौदह रेखाएं करनी चाहिये । मस्तक भाग में शिर नक्षत्र स्थापित कर अन्य भुजाओं में निर्दिष्ट नक्षत्र स्थापित करने चाहिये । इस प्रकार यदि सूर्य चन्द्र एक रेखा के नक्षत्र में आये जानना चाहिये कि एकार्गल योग है ।

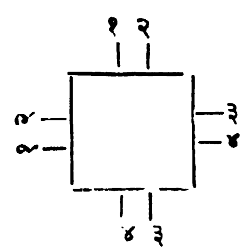
नारचंद्र में इसके लिये कहा है—

यात्रायां मरणं विद्याद्, आरम्भे कार्यनाशनम् ।
वैधव्यं स्याद् विवाहे तु, दाहः स्याद् वसतां गृहे ॥१॥

एकार्गल योग हो तो यात्रा में मृत्यु होती है, आरम्भ किया हुआ कार्य नष्ट होता है, विवाहित स्त्री विधवा हो जाती है, और नवनिर्मित घर में आग लग जाती है ।

एकार्गल का त्याग न हो सके तो पादवेध का त्याग तो अवश्य करना चाहिये । यह योग अति दुष्ट है अत: इसका त्याग अवश्य करना चाहिये ।





पातयोग—

अस्से म चि अणु सव रे,
विसमारेहाउ सेसमभिलहिउं ।
रविरेहस्सिरिण गणिए,
इट्ठे रिक्खे विसमि पाउ ॥ १३५ ॥

अश्लेषा, मघा, चित्रा, अनुराधा, श्रवण और रेवती नक्षत्रों पर विषम रेखा दुहरानी चाहिये और सूर्य नक्षत्र की रेखा से उस

विषम रेखा तक का शेष ग्रहण करना चाहिये, इस शेष रवि रेखांक प्रमाण से अश्विन्यादि नक्षत्रों को गिन कर उस पर विषम रेखा स्थापित करना चाहिये । यदि इष्ट नक्षत्र पर वह विषम रेखा आये तो पातयोग जानना चाहिये । जैसे सत्ताइस नक्षत्रों की स्थापना करके अश्लेषा, मघा, चित्रा, अनुराधा, श्रवण और रेवती इन छः नक्षत्रों के ऊपर 'ऽ' रेखा दुहरानी चाहिये और सूर्य जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्र की रेखा से यह विषम 'ऽ' रेखा तक के अंक गिनकर सूर्य नक्षत्र पर स्थापित करना चाहिये । फिर अश्विनी नक्षत्र से उस अंकों के प्रमाणों पर विषम रेखा दुहरानी चाहिये । इस प्रकार जिस जिस रेखा पर 'ऽ' रेखा पड़े उन-उन नक्षत्रों को पातयोग से प्रभावित तथा दूषित जानना चाहिये ।

जैसे रवि नक्षत्र से अश्लेषादि छः नक्षत्रों का जो अंक हो उन्हीं अंक वाले अश्विनी आदि नक्षत्रों में पातयोग होता है ।

लग्न शुद्धि में कहा गया है कि—

रवि नक्षत्र से जितनी संख्या पर अनुराधा नक्षत्र हो, अश्विनी से उतना ही तथा उसके पश्चात् छट्टा, छट्ठा, दशम, द्वितीय तथा पंचम नक्षत्र पातयोग से दूषित है ।

श्रीउदयप्रभसूरि के मत में—

शूल गंड, हर्षण, व्यतिपात, साध्य और वैधृति योग के अंत में जो नक्षत्र हो उसमें वर्ज्य पातयोग आता है ।

नारचंद्र में कहा है—

पातेन पतितो ब्रह्मा, पातेनैव च शंकरः ।
विष्णुः पतति पातेन, त्रैलोक्यं पातयेत् तथा ॥१॥

ब्रह्मा, विष्णु और शंकर पात से ही गिरे हैं। पात तीनों लोकों को गिराने में समर्थ है। वामदेव कोशल में पात वर्जित करना चाहिये। किन्हीं के मत में अंग बंग में पात का कोई दोष नहीं है।

लत्ता—

रविमुक्खा निग्ररिक्खा,
बार-ऽट्ठम-तिग्र-तिवीसं छट्ठं च।
पणवीस ग्रडिगवीसं,
कुणन्ति लत्ताहयं रिक्खं ॥ १३६ ॥

रवि आदि ग्रह अनुक्रम से अपने नक्षत्र से बारह, आठ, तीन, तेइस, छः, पच्चीस, आठ और इक्कीसवें नक्षत्र को लत्ता प्रहार करता है। अनुक्रम से १८-२२-२७-७-२४-५-२२ और ६ वें नक्षत्र को प्रहार करता है।

लत्ताहत नक्षत्र अशुभ है अतः शुभ कार्य में इसका त्याग करना चाहिये।

पूर्णभद्र के मत में—

रवि आदि की लत्ता से दूषित हुए नक्षत्र में कार्य करने से अनुक्रम से १ वैभवनाश, २ भय, ३ मृत्यु, ४ स्वयं का नाश, ५ अनुज नाश, ६ कार्य का नाश, ७ मृत्यु ८ मृत्यु होती है।

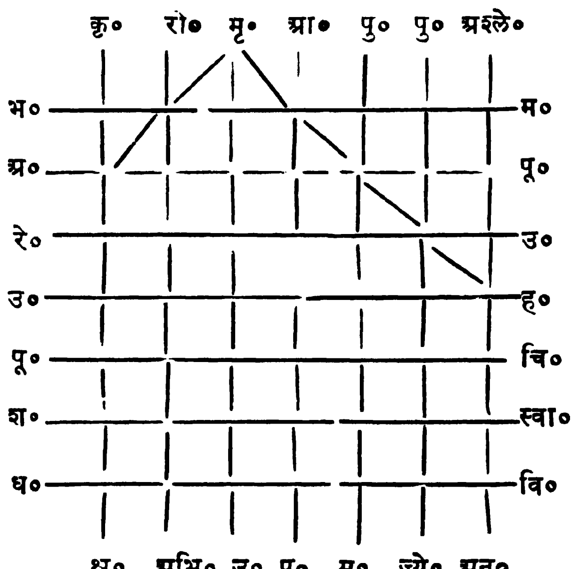
वामदेव कहते हैं—

बंगाल में और किसी के मत में सौराष्ट्र में तथा दक्षिण में कोई लत्ता दोष नहीं होता।

नक्षत्र वेध—

सत्त सिलाए कितिम्र-माई रिक्खे ठवित्तु जोएह ।
गहवेहमिट्ठरिक्खे, उवरि ग्रहो वा पयत्तेण ॥ १३७ ॥

सप्तशलाका चक्र में कृतिकादि नक्षत्र स्थापित कर ग्रहवेध देखना चाहिये । यदि ऊपर या नीचे इष्ट नक्षत्र का वेध हो तो उसका प्रयत्न पूर्वक त्याग करना चाहिये ।



सात खड़ो तथा सात आड़ी रेखाएं दुहरानी चाहिये और उसके ऊपर के किनारे से अनुक्रम से कृतिकादि २८ नक्षत्र स्थापित करना चाहिये. फिर जो-जो ग्रह जिस-जिस नक्षत्र में हो उन-उन ग्रहों को उन-उन नक्षत्रों के पास रखना चाहिये ।

सुधिश्रृङ्गार वार्तिक में कहा है—

सौम्य और क्रूर ग्रहों का वेध होता हो तो अनुक्रम से सुख और आयुष्य का नाश होता है।

नारचंद्र टिप्पणी में कहा है-

अनान्तरित मंगल आदि आठ ग्रहों से विधित नक्षत्र में परिणिता कन्या अनुक्रम से ३ कुल क्षयकारी ४ वन्ध्या ५ तपस्विनी पुत्र रहित दासी, वैश्या, स्वेच्छाचारिणी और विधवा होती है।

सम्मुखवेध दोष का अवश्य त्याग करना चाहिये।

पूर्णभद्राचार्य के मत में—

जैसे सर्प दंशित अंगुली का छेदन किया जाता है, वैसे ही मात्र वेधशाला पाद का त्याग करना चाहिये तथा द्वितीय पाद में निःशंकता से कार्य करना चाहिये।

लग्ने गुरुः सौम्ययुतेक्षितो वा, लग्नाधिपो लग्नगतस्तथा वा।
कालाख्यहोरा च यदा शुभा स्याद्, भ-वेधदोषस्य तदा हि भंगः॥

विवाह में गुरु सौम्य ग्रहयुक्त हो या सौम्य ग्रह की दृष्टि में हो या लग्नपति हो या लग्न में हो तथा काल होरा शुभ हो तो नक्षत्र वेध नाम के दोष का भङ्ग होता है।

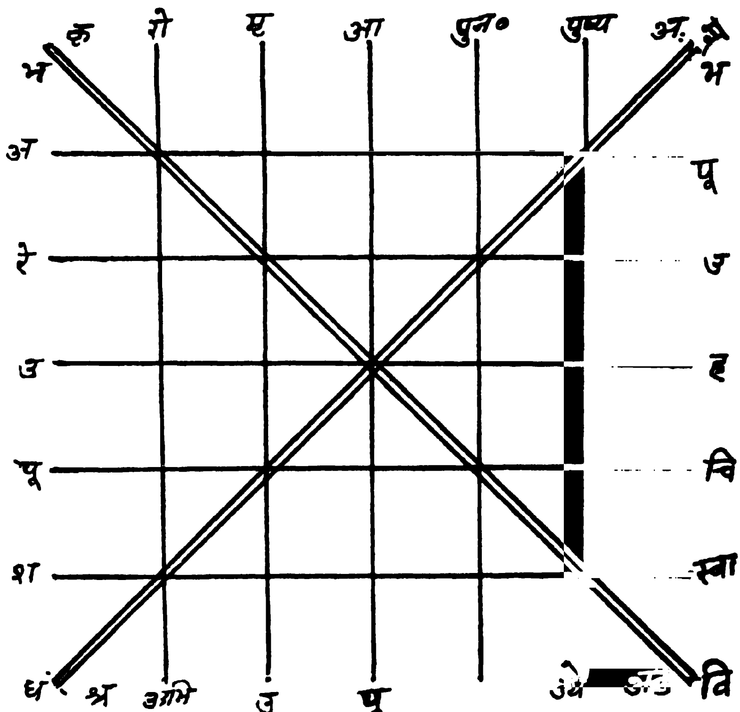
नरपति जय चर्या में कहा है—

ग्रह जिस नक्षत्र में रहा हो वहाँ से वाम भाग में, दक्षिण भाग में तथा सन्मुख इस प्रकार तीन दृष्टि से वेध करता है। वक्री ग्रहों को दक्षिण दृष्टि पड़ती है। मध्यगति वाले ग्रहों को सम्मुख दृष्टी पड़ती है और अतिचारी ग्रहों की वाम भाग में दृष्टि पड़ती है।

रवि आदि सात अतिचारी ग्रहों में से जो ग्रह रेवती में हो वह वाम दृष्टि से मृगशर को वेधित करता है। इस प्रकार मृगशर नक्षत्र दो तरफ ग्रहभिन्न होता है और मंगल आदि पांच मध्यम गतिवाले ग्रहों में जो ग्रह उत्तराषाढा में हो वह ग्रह सन्मुख दृष्टि से मृगशर को वेधित करता है।

पंचसिलाए दो दो, रेहा कोणेसु रोहिणीमुक्खा ।
दिसी धुरि रिक्खा उ कमा, वए विलोइज्ज वेहमिहं ॥१॥

पंचशलाका चक्रम् ।



पंचशलाका चक्र में कोण की दो-दो रेखा अर्थात् पांच रेखाएं खड़ी तथा पांच रेखाएं आड़ी खींचनी चाहिये फिर एक कोण से दूसरे कोण तक इस प्रकार दो-दो रेखाएं दुहरानी चाहिये तथा सप्त रेखा चक्र के प्रमाण से सम खड़ी रेखा के ऊपर के भाग से रोहिणी आदि २८ नक्षत्र स्थापित करने चाहिये तथा जो ग्रह जिस नक्षत्र में हो उस ग्रह को उस नक्षत्र के समीप स्थापित करना चाहिये । यहां भी सन्मुख रहे हुए ग्रह से इष्ट नक्षत्र का वेध होता है ।

इस प्रकार बिंधे हुए नक्षत्रों का त्याग दीक्षा में करना चाहिये ।

यह पंचशलाका वेध दीक्षा और विवाह में ही देखे जाते हैं।

पौर्णभद्र में कहा गया है—

आचार्यपद आदि में सप्तशलाका चक्र में और व्रतत्रिगेर में पंचशलाका चक्र में कृतिकादि नक्षत्रों की स्थापना करके चन्द्र का ग्रहवेध देखना चाहिये । इस चक्र में भी पादान्तरित बल, वेधफल वेधभंग आदि सप्तशलाका के द्वारा ही जानना चाहिये और केन्द्र में शुभ ग्रह हो तो सौम्यग्रह की लत्ता, पात तथा उपग्रह से दूषित हुए नक्षत्रों का पाद ही त्यागना चाहिये । किन्तु केन्द्र में शुभ ग्रह न हों तो वह सम्पूर्ण नक्षत्र त्यागने योग्य है ।

अब शीघ्र सिद्धि द्वार और उसमें प्रथम छाया लग्न के विषय में कह रहे हैं ।

सिद्धच्छायालग्गं,

रवि-कुज-बुह-जीव संकुपाय कमा ।

एगारस नव अड सग,

अद्धट्ठा (नव) सेसवारेसु ।। १३६ ।।

अनुक्रम से रवि, मंगल, बुध और गुरुवार को ग्यारह, नौ आठ और सात तथा शेष वारों में साढे आठ शंकु पाँव हो तब सिद्धच्छाया लग्न होता है ।

आरम्भसिद्धि में कहा गया है—

छाया लग्न मात्र ३० अक्षर प्रमाण का होता है । इसका प्रारम्भ पगलां की इष्ट छाया आवे तब से पूर्व १५ अक्षर से होतो है तथा पांवों को इष्ट छाया के पश्चात् १५ अक्षर तक रहती है। अतः कार्य का प्रारम्भ और पूर्णाहुति उस समयान्तर में ही करनी चाहिये जिससे सिद्धच्छाया सिद्ध की गई जान पड़े ।

नारचंद्र टिप्पणी के अनुसार—

जइ पुण तुरियं कज्जं, हविज्जलग्गं न लब्भए सुद्धं ।
ता छाया-धुवलग्गं, गहिअव्वं सयलकज्जेसु ।। १ ।।

न तिथिर्न च नक्षत्रं, न वारा न च चन्द्रमाः ।
ग्रहा नोपग्रहाश्चैव, छायालग्नं प्रशस्यते ।। २ ।।

न योगिनी न विष्टिश्च, न शूलं न च चन्द्रमाः ।
एषा वज्रमयी सिद्धि—रभेद्या त्रिदशैरपि ।। ३ ।।

यात्रा दीक्षा विवाहश्च, यदन्यदपि शोभनम् ।
निर्विशंकेन कर्तव्यं, सर्वज्ञवचनं यथा ।। ४ ।।

यदि कार्य शीघ्रता का हो और शुभ लग्न नहीं मिलता हो तो प्रत्येक कार्य में 'छायालग्न' और 'ध्रुवलग्न' लेना चाहिये। ऐसा हर्षप्रकाश में उल्लेख है।

तिथि, नक्षत्र, वार, चन्द्र, ग्रह या उपग्रह इन सबकी कोई आवश्यकता नहीं है। मात्र छायालग्न ही प्रशंसनीय है। यह छाया देवताओं से भी अभेद्य वज्रमयी है और वहां प्रतिकूल योगिनी, विष्टि, शूल और चन्द्रमा भी व्यर्थ है। छायालग्न में यात्रा, दीक्षा, विवाह और शेष शुभ कार्य सर्वज्ञ भगवान के वचनों से निःशंकता से करने चाहिये।

ध्रुवचक्र—

तिरिच्छगे धुवे दिक्खा-पइट्ठाइ सुहंकरे।
उड्ढट्ठिए धयारोव-खित्तगाई समायरे ॥ १४० ॥

ध्रुव तिरछा हो तब दीक्षा प्रतिष्ठादि शुभकर है तथा ध्रुव उर्ध्व हो तब ध्वजारोपण, क्षेत्र प्रवेश आदि कार्य करने चाहिये।

ध्रुवतारा के समीप एक तारा का झुण्ड है। उसका नाम ध्रुचक्र या ध्रुमांकडो है। वह चक्र ध्रुव की बाईं तरफ चलता एक अहोरात्र में दो बार खड़ा तथा दो बार आड़ा होता है तथा उसके किनारे के दो तारा सीधी कतार में बराबर उर्ध्व या तिर्यक् आवे तब ध्रुवलग्न होता है।

पूर्वाचार्यों के मत में—

१ ध्रुव मघा और धनिष्ठा के उदयकाल में उर्ध्व होता है तथा अनुराधा और कृतिका के उदयकाल में तिर्यक् होता है।

इसके अतिरिक्त ध्रुवयन्त्र और होकायंत्र से भी ध्रुव का स्पष्ट ज्ञान होता है ।

ध्रुवलग्न का समय उदित लग्न के नवांश जितना होता है । एक अन्य मत में नवांशक के मध्य के तीसरे भाग जितना माना जाता है । इस प्रकार आरम्भसिद्धि वार्तिक में कहा गया है । शीघ्रता का कार्य छायालग्न और ध्रुवलग्न में करने चाहिये ।

शंकुच्छाया—

वीसं सोलस पनरस चउदस तेरस य बार बारेव ।
रविमाइसु बारंगुल-संकुच्छायंगुला सिद्धा ।। १४१ ।।

बारह अंगुल के शंकु की छाया रवि आदि में अनुक्रम से २०, १६, १५ १४, १३, १२ और १२ अंगुल प्रमाण हो तो वह सिद्ध छाया कही जाती है। पादच्छाया में जैसे सात हाथ के शंकु का माप है वैसे ही यहाँ वीस अंगुल के शंकु से छाया का नाप लिया जाता है । यह छाया रवि आदि वारों को अनुक्रम से २०-१६-१५-१४-१३-१२ और १२ अंगुल प्रमाण जब हो तब सिद्धच्छाया होती है ऐसा जानना चाहिये ।

बे वार अभीयं दिणमहों,
मासा अभियाइं उ० सा० चउत्थपयं ।
सवणाइ घड़ी चारहों,
लहीयं करि कज्ज फल बहुयं ।। १ ।।

अभिच दिन में दो बार आता है और मास में उत्तराषाढा के चौथे पाद से श्रवण की चार घड़ी तक एक बार आता है । उसमें कार्य करने से बहुत फल मिलता है ।

मध्याह्न काल पूर्व की एक घड़ी और पश्चात् की एक घड़ी इस प्रकार दो घड़ी प्रत्येक कार्य में श्रेष्ठ है। जिस समय ८ वां अभिजित् क्षण हो उस विशेष काल का 'विजययोग' नाम है। अतः आठवें अभिजित् क्षण में दक्षिण दिशा में प्रयाण के अतिरिक्त दीक्षा, प्रतिष्ठा, प्रवेश, प्रयाण आदि कार्य सुखकर है ।

पूर्णभद्रानुसार—

विजय योग में किया गया कार्य युगांत में भी किसी प्रकार से नष्ट नहीं होता ।

लल्ल के मत में—

कृष्णचक्र लेकर मध्याह्न काल में अभिजित् नक्षत्र में सारे दोष हनित होते हैं ।

हर्षप्रकाश में भी कहागया है—

संध्या प्रारम्भ और तारा दर्शन के मध्यकाल में भी सर्व कार्यों में सिद्धि देने वाला 'विजय' नाम का योग है ।

संध्या काल का 'गोधुलिक लग्न' यह विवाह में प्रधान लग्न है ।

श्रीउदयप्रभसूरिजी के मत में—

संध्याकाल में उड़ती हुई गो रज के समय गोधुलिकाल है।

मुहूर्तचिंतामणी टीका में कहा है—

रवि का आधा या तीसरा भाग शेष रहे तब से दो घड़ी तक गो रज लग्न होता है ।

दैवज्ञराम के अनुसार— (मू० चि०)

मन्दाक्रान्ता —

नाऽस्यामृक्षं न तिथिकरणं नैव लग्नस्य चिन्ता,
नो वा वारो न च लवनिधि र्नो मुहूर्तस्य चिर्चा ।
नो वा योगो न मृतिभवनं नैव जामित्रदोषो,
गोधूलिः सा मुनिभिरुदिता सर्वकार्येषु शस्ता ॥१॥

मुनि लोगों ने सारे कार्य में गोधुलिक को प्रशस्त कहा है, इस लग्न में नक्षत्र, तिथि, करण, लग्न, वार, लव, समय, मुहूर्त, योग, आठवाँ भुवन या जामित्रादि कोई-कोई दुष्टता देखने की आवश्यकता नहीं है ।

सारङ्ग के मत में—

गोरज में छट्टा, आठवाँ चन्द्र के अतिरिक्त जामित्र, ग्रह, चंद्र, लग्न, होरा, नवांश और भाव आदि के दोषों का कोई विचार नहीं करना चाहिये ।

मुहूर्तचिंतामणिकार का मत—

ये श्लोक प्रशंसा परायण है अतः अमावस्या, भद्रा, भरणी आदि तथा अन्य प्रकार के शक्य दोषों का परिहार करके लग्न लेना चाहिये ।

'लल्ल' के मत में—

वीर्यवान् शुद्ध लग्न हो तो गोरज निकम्मा है । अतः शुभ लग्न नहीं हो तब गोधुलिक लेना चाहिये ।

गोधुलिक के दोष इस प्रकार हैं—

कुलिकं क्रान्तिसाम्यं च, मूर्तौ षष्ठोऽष्टमः शशी ।
पञ्च गोधुलिके त्याज्या, अन्ये दोषाः शुभावहाः ॥१॥

कुलिक, क्रान्तिसाम्य, लग्न का छट्ठा और आठवां चंद्र ये पांच दोष गोधुलिक में त्याज्य हैं और शेष दोष शुभ हैं ।

आरम्भसिद्धि में—

भद्रा तथा अर्धयाम भी वर्ज्य लिखा है । इसमे गुरुवार तथा शनिवार को गोधुलि का निषेध होता है ।

नारचंद्रानुसार—

लग्नाष्टमे चन्द्रज-चन्द्र-जीवे,
भौमे तथा भार्गवजाष्टमे च ।
मूर्तौ च चन्द्रो नियमाच्च मृत्युः,
गोधूलिकं स्यात्परिवर्जनीयम् ॥ १ ॥

तात्कालिक कुण्डली में आठवें भुवन में बुध, चंद्र, गुरु, मंगल या शुक्र हो और लग्न में चन्द्र हो तो निश्चय ही मृत्यु होती है । अतः यह गोधूलिक वर्ज्य है ।

संहितासार में उल्लेख है कि—

यत्रैकादशगश्चन्द्रो, द्वितीयो वा तृतीयगः ।
गोधूलिका तु विज्ञेया, शेषा धूलिरिति स्मृता ॥१॥

जिस लग्न में ग्यारहवाँ, दूसरा और तीसरा चन्द्र हो उसे गोधूलिक लग्न जानना चाहिये। शेष तो धूल ही जानना चाहिये। अर्थात् २-३-११ चन्द्र शुभ है।

गोधूलिक लग्न गोपाल, हीनवर्ण और पूर्वदेश के मनुष्यों के लिये श्रेष्ठ है।

मनोहर के मत में—

घटी लग्न के अभाव में ब्राह्मण के अतिरिक्त और गदाधर के मत में ब्राह्मण को भी श्रेष्ठ है।

शिवालिखी में कहा है—

व्यतिपाते च संक्रान्तौ, भद्रायामशुभे दिने।
शिवालिखितमालोक्य, सर्वकार्याणि साधयेत् ॥१॥

व्यतिपात, संक्रान्ति, विष्टि और अशुभ दिन शिवलिखि देख कर सारे कार्य करने चाहिये।

प्रत्येक शुभ कार्य में शकुन की भी महत्ता दर्शाई गई है-

नक्षत्रस्य मुहूर्तस्य, तिथेश्च करणस्य च।
चतुर्णामपि चैतेषां, शकुनो दण्डनायकः ॥१॥

नक्षत्र, मुहूर्त, तिथि और करण इन चारों का दण्डनायक शकुन है।

लल्ल के मत में—

शकुन रहित सर्वगुणोपेत लग्न भी ग्रहण नहीं करना चाहिये।

क्योंकि निमित्त का दण्डनायक शकुन है ।

श्रीहरिभद्रसूरिजी का मत—

सुन्दर लग्न में भी शुभ शकुन या शुभ निमित्त के बल से कार्य करना चाहिये ।

यहाँ शकुन से अंगस्फुरण, शकुन, स्वर सामुद्रिक, अष्टांग निमित्त और प्रसन्न चित्तता आदि से है ।

चित्तोल्लास के लिये श्रीउदयप्रभसूरि का मत—

सकलेष्वपि कार्येषु, यात्रायां च विशेषतः ।
निमित्तान्यप्यतिक्रम्य, चित्तोत्साहः प्रगल्भते ।। १ ।।

सारे कार्यों में विशेष करके यात्रा में निमित्त से भी चित्तोत्साह अधिक बलवान् है । अंगस्फुरण आदि निमित्त, अंगस्पर्शादि इंगित, दुर्गादि शकुन और लग्नादि ज्योतिष से भी चित्तोत्साह का बल विशेष है ।

नंदी आदि का मुहूर्त—

तिक्खु-ग्ग-मिस्सरिक्खाणि, चिच्चा भोम-सणिच्छरं ।
पढमं गोअरं नंदी-पमुहं सुहमायरे ।। १४२ ।।

तीक्ष्ण, उग्र और मिश्र नक्षत्र तथा मंगल और शनिवार को छोड़कर शेष दिनों में प्रथम गोचरी तथा नन्दी प्रमुख शुभ कार्य करने चाहिये ।

नवीन साधु को प्रथम गोचरी करानी हो या व्रत, प्रायश्चित,

उपधान और तप के लिये नाण मंडाने का कार्य करना हो तो रवि, सोम, बुध, गुरु और शुक्र तथा अश्विनी, रोहिणी, मृगशर, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, उत्तराषाढा, अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराभाद्रपद या रेवती नक्षत्र शुभ है ।

इसके विशेष विवरण के लिये 'कार्यद्वार' में शांतिकार्यों का विवरण देखना चाहिये ।

इस ग्रंथ का फल—

इग्र जोगपईवाग्रो, पवडत्थपर्एहि विहिग्रउज्जोग्रा ।
मुणिमणभवणपयासं, दिणसुद्धिपईविग्रा कुणउ ।।१४३।।

इस योग प्रदोप से प्रकटित अर्थों के द्वारा उद्योत करने वाली दिन-शुद्धि-प्रदीपिका मुनियों के मनोभवन में प्रकाश करो तथा ज्ञान की ज्योति अविरत ज्योतिर्मान होती रहे ।

यहां मुनियों को उद्दिष्ट करके ही इस ग्रंथ की रचना की गई है, ऐसा स्पष्ट विधान है क्योंकि अष्टांग निमित्त का ज्ञान साधुओं के लिये आवश्यक है, मात्र वे उसका आरंभ समारम्भ में उपयोग नहीं कर सकते हैं । जब वह गृहस्थों के लिये भी जरूरी है किन्तु गृहस्थ उसका आरम्भ समारम्भ में उपयोग करे ऐसी अपेक्षा रहती है । अतः यह ग्रंथ मुनियों के करकमलों में जाय व उनके हृदय में अनवद्य मार्ग को प्रशस्त करे ऐसी ग्रंथकार की भावना है ।

ग्रंथ को परिसमाप्ति करते हुए—

सिरिवयरसेणगुरुपट्ट-नाहसिरिहेमतिलयसूरीणं ।
पायपसाया एसा, रयणसिहसूरिणा विहिया ॥ १४४ ॥

श्रीरत्नशेखरसूरि ने यह 'दिन शुद्धि दीपिका' प्रकरण श्री वज्रसेन गुरु के पट्टधर श्रीहेमतिलकसूरि के पाद प्रसाद से विरचित किया है । श्रीरत्नशेखरसूरिजी महाराज ने इस गाथा से स्वयं के गुरु की परम्परा और गुरु कृपा का फल निर्दिष्ट किया है, अर्थात् बृहद्गच्छाधिपति श्रीवज्रसेनसूरि गुरु हुए थे जिन्होंने 'गुरुगुणषड्त्रिंशिका' आदि ग्रंथों की रचना की थी । उनकी परम्परा में श्रीहेमतिलक सूरिजी हुए जिनकी कृपा का फल यह दिन-शुद्धि-दीपिका की रचना है ।

॥ इति रयणसेहरसूरिविरइआ ।
दिणसुद्धिपईविआ समत्ता ॥

इस प्रकार रत्नशेखरसूरि विरचित दिन शुद्धि दीपिका नाम का ग्रंथ सम्पूर्ण हुआ ।

श्रीयतीन्द्र–हिन्दी-टीका-प्रशस्ति—

ज्ञान प्रभाभासुर दिव्य भावः ।
कारुण्य पूर्णार्द्र विशुद्ध विज्ञः ।।
आचार्यवर्य्यो वर दायक श्री ।
राजेन्द्रसूरि प्रथितः पृथिव्याम् ।। १ ।।

अपने उत्कृष्ट ज्ञान की दिव्य छटा से देदीप्यमान सद्भाव-शील करुणा से परिपूर्ण शुद्ध चारित्र्यनिष्ठ परम विद्वान आचार्यवर्य श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरिजी महाराज इस पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुए ।

तत्पट्टे धनचन्द्र सद्गुरुवरः ख्यातो यशस्वी महान् ।
पश्चात् शातिमयः स्वभाव सरलो भूपेन्द्रसूरिः श्रुतः ।।
संजात स्तदनन्तरं गुरुपदे संभूषितः सर्वशः ।
आचार्यो विजयादिवन्द्य चरणः श्रीमद्यतीन्द्राभिधः ।।२।।

उनके पट्ट पर महान् यशस्वी आचार्य श्रीमद् धनचन्द्रसूरिजी हुए तथा पश्चात् शान्त स्वभावी श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी ने इस पद को अलंकृत किया, तदनन्तर आचार्य श्रीमद् यतीन्द्रसूरिजी हुए ।

तदासने सभासीनो विनम्रो विद्वद्वरो विभुः ।
आचार्यवर्यं श्रीसूरिर्विद्याचन्द्रो विराजते ।। ३ ।।

एतेषां सूरिवर्य्याणां शासने विधिशोभिते ।
श्रीमद् यतीन्द्र शिष्येण मुनिना 'श्रमणेन' च ।। ४ ।।
जयप्रभेण रचिता श्री यतीन्द्राभिधा मु दा ।
दिन शुद्धि दीपिका ग्रन्थ टीकेयं सरलार्थिका ।। ५ ।।

श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरिजी महाराज के पट पर विद्वद्वरेण्य वर्तमानाचार्य श्रीमद् विद्याचन्द्रसूरिजी सुशोभित हैं, जिनके शासनकाल में परम पूज्य गुरुदेव श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरिजी शिष्य मुनिश्री जयप्रभविजय 'श्रमण' ने पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् रत्नशेखरसूरिजी म० रचित इस दिन शुद्धि दीपिका ग्रंथ की सरलार्थमय यह श्री यतीन्द्र हिन्दी टीका लिखी ।। ३ । ४ । ५ ।।

सप्त द्विशुन्य नयने वैक्रमें कार्तिके सिते ।
पञ्चम्यां विहिता पूर्णा, जालोर नगरे मरौ ।। ६ ।।

विक्रम सम्वत् २०२७ कार्तिक मास शुक्ल पक्ष को पंचमी तिथि को जालोर (राजस्थान) नगर के चातुर्मास में यह टीका पूर्ण की ।

जयप्रभ कृते यं वै टीका स्यान्मंगल प्रदा ।।
सर्वेषा सुख सौभाग्यदायिनी भुवि सर्वदा ।। ७ ।।

मुनि श्रीजयप्रभविजय 'श्रमण' द्वारा की गई यह श्रीयतीन्द्र हिन्दी टीका सबके लिये सर्वदा सुख सौभाग्यदायिनी एवं मङ्गल प्रदान करने वाली हो ।

समाप्त